भूमिका

हिंदी साहित्य के विद्यार्थी के लिये यह जानना आवश्यक है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण महाकाव्य की कथा का वास्तविक रूप क्या है। केवल तुलसीकृत मानस की कथा से यह स्पष्ट नहीं होता कि महाकवि की मानसिक परिस्थिति क्या थी। उनके सामने अनेकों रामायणों की कथाएं थीं। किस पर तुलसीदास ने अपनी कथा का चयन किया और अपने चरित्रों का विकास किया, यह लेखक ने यहां अत्यंत परिश्रम से दिखाया है। उसने अन्य रामायणों से मानस कथा का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक काफी महत्व रखती है। धर्म, अध्यात्म दर्शन और काव्य की परम्परा की बहुत लम्बी शृंखला को यहां उपस्थित किया गया है। और मानस की कथा, चरित्रों के रूप यहां बहुत ही स्पष्ट बनकर उतर आते हैं। महाकवि तुलसीदास का वास्तविक कार्य समझने के लिये इस पुस्तक को पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

यज्ञदत्त शर्मा

दो शब्द

'रामचरित मानस' को टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार ने धार्मिक दृष्टिकोण से एक 'आशीर्वादात्मक ग्रंथ' कहा है। एक ओर जहाँ साहित्य में हम उसकी विशेषताओं पर मनन करते हैं, वहाँ धार्मिक दृष्टिकोण से ही इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करने और इसमें आये हुए उपदेशों का विचारपूर्वक मनन करने और उनके अनुसार आचरण करने तथा इसमें वर्णित भगवान् की मधुर लीलाओं का चिंतन एवं कीर्तन करने से मोक्ष-रूप परम पुरुषार्थ और उससे भी बढ़कर भगवत्-प्रेम की प्राप्ति आसानी से की जा सकती है।

इस कारण कहा जा सकता है कि 'रामचरित मानस' का महत्व केवल साहित्यिक नहीं है, वह धार्मिक भी है, परन्तु राम की कई कथाएँ लिखी गई थीं; संस्कृत में भी और हिन्दी में भी। संस्कृत में वाल्मीकि और हिन्दी में 'मानस' को ही जो इतना महत्व मिला, उसका कारण यही है कि ये दोनों ग्रंथ साहित्यिक दृष्टिकोण से भी बहुत अच्छे हैं। दक्षिण भारत में वाल्मीकि की रामायण बहुत प्रसिद्ध है, किन्तु फिर भी उसे धर्म-ग्रंथ नहीं माना जाता। उसे साहित्य की ही कोटि में रखा गया है। इसके कारण दो हैं। एक तो यह कि दक्षिण भारत में संस्कृत का प्रचार काफी था और इसीलिए वह धर्मग्रंथ का स्थान नहीं ले सकी। दूसरा यह भी था कि उसका 'रूप' तमिल काव्य की परम्परा को प्रस्तुत करता है, और एक प्रबन्ध-काव्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके विपरीत उत्तर भारत में परिस्थिति दूसरी थी। यहाँ संस्कृत का पठन-पाठन बहुत कम हो गया था और पंडितों का जोर भी कम हो गया था। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि दक्षिण भारत में वैष्णव-आंदोलनों में ब्राह्मणों का काफी हाथ था और वहाँ ईरानी प्रभाव भी कम पड़ा था, जिसने तुर्की द्वारा अपना रास्ता भारत में बनाया था। किन्तु उत्तर भारत में वैष्णव-भक्ति के आंदोलनों का नेतृत्व तुलसीदास जी के पहले निम्न वर्णों के नेताओं के हाथ में था और यहाँ मुस्लिम जातियों का सीधा दबाव भी पड़ रहा था। यद्यपि खिलजी शासकों ने दक्षिण को भी लूटा था, परन्तु उत्तर भारत में उनका लोहा गड़ गया था। दूसरे दक्षिण भारत में बौद्ध लोग प्रायः ही वैष्णव और शैव सम्प्रदायों में अंतरभुंक्त हो गये थे, जबकि वेद-विरोधी तथा बौद्ध लोग उत्तर भारत में इस्लाम की क्रोड में चले

गये थे। इसीलिए उत्तर भारत में परिस्थिति कुछ दूसरी ही हो गई थी। उस परिस्थिति में 'मानस' ने संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध 'वाल्मीकि रामायण' का स्थान ले-लिया और राजनीतिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं ने इसको धर्म का ही प्रतिनिधि-ग्रंथ मान लिया। तुलसीदास जी का मानस एक पुराण-ग्रंथ के रूप में लिखा गया है और उसमें कथा-विलास या कवि-कौशल दिखाने का दृष्टिकोण नहीं है, क्योंकि राम की महत्ता को कवि ने इतनी बार पुनरुक्ति-दोष से लादा है कि संभवत: यदि तुलसी-जैसे महाकवि ने अन्यत्र रससिद्ध-शक्ति से इसे संभाल न लिया होता, या कहीं इसके पीछे धर्म-भावना न रही होती, तो इसे पढ़कर पाठक ऊब सकता था।

मानस का अध्ययन हिन्दी में अभी बहुत कम हुआ है। प्राय: मुझ पर यह दोष लगाया जाता है कि मैं तुलसीदास जी की रचनाओं का विरोधी हूँ। यह बिल्कुल गलत है। मेरे सामने यह प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु हमें निष्पक्ष दृष्टि रखनी चाहिए।

अंगरेजी-साहित्य में महाकवि मिल्टन हुआ है, जिसने 'स्वर्ग से निर्वासन' नामक अमर काव्य लिखा है। वैसे वह साहित्यिक रचना के रूपों में कट्टर न होते हुए भी धार्मिक क्षेत्र और दृष्टिकोण में कट्टर विशुद्धतावादी (Puritan) था। विशुद्धतावादी आंदोलन ने तो एक ऐसा धक्का लगाया था कि शेक्सपियर-जैसे महान् नाटककार और कवि की रचनाओं को भी अश्लील करार दे दिया गया था। जब यह आंदोलन अपनी कट्टरता के ज्वार से उतरा, तब उसकी महत्ता को स्वीकार किया गया। मिल्टन स्वयं विशुद्धतावादी होते हुए भी शेक्सपियर की रचनाओं का सम्मान करता था। दूसरी ओर उसका दृष्टिकोण स्वयं धार्मिक क्षेत्र में काफी कट्टर था। किन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण मिल्टन की साहित्यिक कृति से कोई पक्षपात करके उसे नीचे नहीं गिराता।

इसी प्रकार तुलसीदास जी भी एक ओर धार्मिक क्षेत्र में कट्टर वर्णाश्रमवादी थे और दूसरी ओर उनमें भक्ति-आंदोलन के प्रभाव के कारण एक नर्मी भी थी। तुलसीदास जी का समन्वयवाद बहुत सीमित था, वह केवल वेदसम्मत संप्रदायों का ही समन्वय स्वीकार करते थे। किन्तु उनका महाकवित्व इन सब तथ्यों से ऊपर है। किसी भी महाकवि के अध्ययन के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए कि उसका सांगोपांग अध्ययन करें। ऐसा ही प्रयत्न हमने यहाँ किया है।

प्राय: पचकचरे आलोचक निषाद, गुह, शबरी आदि का उल्लेख करके तुलसीदास जी की भक्ति पर ज़ोर देकर कहते हैं कि वे वर्णाश्रम के विरोधी थे। वे नहीं जानते कि तुलसीदास जी की पृष्ठभूमि क्या थी। अत: ऐसा कह देना उनके लिए सरल हो जाता है।

महापंडित तुलसीदास ने स्वयं कहा है—

नाना पुराणं निगमागम सम्मतं यद्,
- रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा,
भाषा निबंध मति मंजुलमातनोति।

(१) तुलसी ने अनेक पुराण, वेद और आगम से सम्मत रचना लिखीं।

(२) रामायण के अतिरिक्त अन्य स्थलों से भी कथा-विषय को चुना।

(३) वह किसी राजा के आश्रित नहीं थे। वह ब्राह्मणवादी परम्परा में थे। उन्होंने अपना ग्रंथ वैसे ही रचा था, जैसे प्राचीन काल के ब्राह्मण पुराणों की रचना करते थे। उनका ग्रंथ पुराण का रूप लिये है।

(४) तुलसीदास जी ने भाषा में लिखा परन्तु जिस प्रकार पश्चिम के पादरी लैटिन के प्रभाव में रहते हुए योरोपीय भाषाओं में रचना करते थे, वैसे ही उन्होंने भी की। तुलसीदास जी ने अपनी सारी देव-स्तुतियाँ संस्कृत या संस्कृत-गर्भित हिन्दी में लिखी हैं। तुलसीदास जी की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उनके पहले कबीर आदि ने तद्भव-प्रधान हिन्दी को प्रधानता दी थी।

एक विद्वान् का विचार यह भी है कि संभवतः उन्होंने स्वयंभू कवि की रामायण भी पढ़ी थी, जिसे उन्होंने शंभु कहा है :

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्री शम्भुना दुर्गमं।
श्रीमत् राम पदाब्जभक्ति मनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥

किन्तु हमें यह ठीक नहीं लगता। स्वयंभू को संस्कृत के श्लोक में तुलसीदास जी शंभु क्यों लिखते? फिर स्वयंभू जैन था, वेदमार्ग-विरोधी, उसका भक्ति से विशेष सम्बन्ध नहीं था, तीसरे उसे प्रभु यानी मालिक या भगवान् कहने की भी बात कुछ जचती नहीं। यहाँ शंभु का प्रयोग शंकर भगवान् के लिए ही हुआ है। शंकर भी तो मानस-कथा सुनाने वाले हैं। बस, इसीलिए उन्हें सुकवि कहा गया लगता है, क्योंकि धार्मिक पक्ष में अपनी रचना को देव-प्रामाण्य देना ब्राह्मण-धर्मी साहित्य में पुरानी परम्परा है।

इसलिए हमारे सामने यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया कि तुलसी का सांगोपांग अध्ययन फिर से प्रारंभ किया जाये। हमें ऐसा लगता है, और इसीलिए सतही चीज देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी लगा था कि भक्ति-आंदोलन इस्लाम के विरुद्ध उठने वाली प्रतिक्रिया थी। परंतु यदि हम गहराई में जाकर देखें तो पता चलता है कि भारत में भक्ति आंदोलन इस्लाम के आने के पहले ही दक्षिण भारत में चल रहा था, बल्कि 'श्रीमद्भागवत' में वह और भी पहले मिलता है। मिलता तो वह पुराणों में

भी है, और 'महाभारत' तक में भक्ति के क्षेत्र में सबको समान माना गया है। यह ठीक है, भारत का पुराना इतिहास बड़ा अंधकारमय है, पर जो-कुछ प्राप्त है, उस पर तो हमें विवेचना करनी ही चाहिए। अतः इस दृष्टि से देखने पर लगता है, तुलसीदासजी से पहले भी कुछ मानववादी परम्पराएँ थीं, और उनका हमारी संस्कृति में स्थान है। हमने उन्हें एकत्र करने की चेष्टा की है। विद्वानों को चाहिए, वे इस कार्य को आगे बढ़ायें। अब दर्शन-पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन करें। हमने वस्तु-विषय को ही प्रधानता दी है, क्योंकि पहले हमें आधार-भूमि प्रस्तुत करनी थी।

मेरा उद्देश्य यह था कि तुलसीदास जी के दोनों पक्ष दिखाये जा सकें।

१. वह वर्णाश्रम-धर्म के प्रतिपादक थे, और इसीलिए उन्होंने मानस की रचना की। भक्ति ने उन्हें व्यापक दृष्टि दी और सामाजिक आवश्यकता ने उन्हें राम का चरित्र उजागर करने की प्रेरणा दी।

२. कवि ने राम-कथा कई बार कही है और उनके अन्य कथा-वर्णनों से मानस का समाज-पक्ष सबसे अधिक प्रबल है। इसके बाद की रचना है 'विनय पत्रिका' जिसमें यही धारा आगे विकास कर गई है। दरबारी वैभव और मुगल-शोषण का विरोध करके तुलसीदास जी ने भारत पर गहरा प्रभाव डाला था।

तुलसीदास जी के ये दो रूप बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन दोनों को जो अलग-अलग करके नहीं देखते, उनकी दृष्टि में गोरख और कबीर आदि तथा तुलसीदास जी में कोई भेद ही नहीं है। वे न साहित्य जानते हैं न, इतिहास। वे तुलसीदास जी की भक्ति-परम्परा के मानववादी प्रभावों के उदाहरण देकर उनके मूल प्रतिपादित वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा के स्वप्न को ही झुठला देना चाहते हैं। पर उनका दोष भी नहीं है। सत्य के लिए परिश्रम की आवश्यकता है।

हमने 'वाल्मीकि रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'अद्भुत रामायण', 'पद्म-पुराण' की रामकथा, 'विष्णुपुराण' की रामकथा, 'सूरसागर' की रामकथा, 'श्रीमद्-भागवत' की रामकथा, 'महाभारत' की रामकथा, जैन-पुराणों की रामकथा तथा अन्य ग्रंथों का अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो तुलनात्मक है। इस प्रकार हमें एक ही कथा के विभिन्न रूप दीखते हैं, जो हमें विभिन्न युगों में प्राप्त होते हैं। उन भेदों के अपने कारण थे, और अभिव्यक्ति ने उन कारणों को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत भी किया है। हमने तुलसीदास जी के 'रामचरित मानस' को इन ग्रंथों से तुलनीय रखा है, और मानस के निर्माण-कर्ता के मस्तिष्क को देखने की यथासंभव चेष्टा की है।

'रामचरित मानस' एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व रखने वाला ग्रंथ है। संस्कृत की विशाल परम्परा को यह ग्रंथ अकेला ही समेट लाया है, और इसने भारतीय सामंतीय युग के सर्वश्रेष्ठ गुणों को ऐसा प्रतिपादित किया है कि पृथ्वीराज चौहान से लेकर अकबर तक के ५०० वर्षों से दलित-दमित भारत में फिर से अत्याचारी से

लोहा लेने की शक्ति आगई। यह सच है कि इस विद्रोह का बाह्य रूप धार्मिक ही था, किन्तु वह मध्यकालीन सीमा थी, परंतु इसने कुचली हुई जनता में नये प्राण फूंक दिये। एक विदेशी संस्कृति का दमन केवल उच्च और निम्न वर्णों के पारस्परिक झगड़े के कारण ही पनप रहा था। यहाँ के उच्च वर्णों का दर्शन सदा से सहिष्णु रहा था और भक्ति-आंदोलन उसी का प्रतीक था।

'रामचरित मानस' के उत्तर-कांड में राम-राज्य का युटोपिया मिलता है, जिसका विकास 'विनय पत्रिका' में हुआ।

हमने प्रस्तुत ग्रंथ में मूल ध्यान तुलनात्मक अध्ययन में भी इसी ऐतिहासिक पक्ष पर रखा है, क्योंकि उसी से तुलसीदास जी की इस अमर कृति का वास्तविक रूप प्रकट होता है।

यदि विद्वानों और पाठकों को मेरा यह प्रयत्न पसंद आया, तो मैं आभारी होऊँगा। अपने विवेचन में मैंने निष्पक्ष दृष्टि को अपनाने की चेष्टा की है। जो भूलें मुझसे रह गई हैं, उन्हें अवश्य ही क्षम्य कहूँगा, क्योंकि हिन्दी में यह पहला ही प्रयत्न है।

रांगेयराघव

तुलसीदास का कथा-शिल्प

कथा का विभाजन

भारतीय साहित्य में महर्षि वाल्मीकि-रचित 'रामायण' को आदि-काव्य माना गया है। यह हम पहले ही स्पष्ट * कर चुके हैं कि 'वाल्मीकीय रामायण' का जो वर्तमान रूप हमें मिलता है, वह परवर्ती है, मूलकथा की रचना के पश्चात् उसमें बहुत कुछ बाद में मिलता गया, और विद्वानों का मत है कि इस रामायण का संपादित रूप ईसा की दूसरी शताब्दी पूर्व शुंग-काल में स्थिर हो गया। हम यह निश्चय से नहीं कह सकते कि रामायण की मूलकथा क्या रही होगी, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मूलकथा में राम-रावण युद्ध ही प्रमुख रहा होगा, क्योंकि आदि-कांड, चौथे सर्ग में रामायण का नाम 'पौलस्त्य-वध' मिलता है। पुलस्त्य ऋषि के वंशज रावण का राम के साथ युद्ध हुआ, रावण अपने सारे परिवार के साथ युद्ध में मारा गया, राम विभीषण को लंका का राज्य देकर अयोध्या चले आये। सीता भी साथ आ गई। राम का राज्याभिषेक हुआ, लेकिन कुछ दिन बाद ही जनता में फैले एक अपवाद के कारण राम को सीता का परित्याग करना पड़ा। सीता वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहीं। वह गर्भवती थीं। वहाँ उनके लव और कुश नामक दो लड़के पैदा हुए। महर्षि वाल्मीकि ने उन दोनों कुमारों को अपनी बनाई राम-कथा याद कराई, जिसे उन्होंने राम के दरबार में मधुर स्वर से गाया। वह राम-कथा कितनी बड़ी थी, इसे तो कोई नहीं जानता, लेकिन यह निश्चय है कि वह इतने बड़े ग्रंथ के आकार की नहीं रही होगी, जैसा कि आदि कांड में चौथे सर्ग में मिलता है कि :

> प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकि र्भगवान ऋषिः ।
> चकार चरितं कृत्स्नं विचित्र पदमात्मवान् ॥
> चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः ।
> तथा सर्ग शतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥

जब रामचन्द्र राज्य-सिंहासन पर बैठ चुके, तब भगवान् ऋषि वाल्मीकि ने उनका चरित्र बनाया, जिसमें २४००० श्लोक, ५०० सर्ग तथा ६ कांड और उत्तर-

---

* देखिये संगम और संघर्ष तथा 'प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड'।

कांड मिलकर ७ कांड हैं। परन्तु साथ ही हमें यह याद रखना चाहिये कि पूरे भारतवर्ष में 'वाल्मीकीय रामायण' का एक तरह का संस्करण ही प्रचलित नहीं है। जो संस्करण आजकल प्रचलित है, वह तीन तरह का है, उदीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ीय। इन तीनों में हमें परस्पर-भेद मिलता है। किसी में भी ठीक से न तो २४,००० श्लोक ही मिलते हैं और न ५०० सर्ग ही, कांड अवश्य सभी संस्करणों में ७ ही हैं। श्रीरामदास गौड़ ने इनकी संख्याओं में परस्पर भेद बताया है :

कांड	उदीच्य संस्करण	दाक्षिणात्य संस्करण	गौड़ीय संस्करण
१. आदिकांड	७७ सर्ग	७७ सर्ग	८० सर्ग
२. अयोध्याकांड	११६ ,,	११३ ,,	१२७ ,,
३. अरण्यकांड	,,	८० ,,	७१ ,,
४. किष्किन्धाकांड	६७ ,,	६४ ,,	६७ ,,
५. सुन्दरकांड	६८ ,,	६८ ,,	९५ ,,
६. युद्धकांड	१३० ,,	१११ ,,	११५ ,,
७. उत्तरकांड	१२४ ,,	१३० ,,	११३ ,,
	५८५	६४३ सर्ग	६७६ सर्ग

इतना ही नहीं 'अद्‌भुत रामायण' में तो प्रारम्भ में ही मिलता है—तमसा-तीर-निवासी गुरु-वाणी के प्रथम स्थान वाल्मीकि मुनि-श्रेष्ठ से विनय से नम्र हो भरद्वाज महामुनि-सम्मत शिष्य जितेन्द्रिय हाथ जोड़कर कहने लगे कि जो सौ करोड़ श्लोकों में रामायण का विस्तार कहा है, और जो आपकी बनाई ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित है, जिसे ब्राह्मण, पितर, देवता नित्य श्रवण करते हैं, जिसमें से पृथ्वी पर २५,००० रामायण हैं, हे मुनिराज ! वह हमने सुनी है, परन्तु रामायण के सौ करोड़ विस्तार में वह क्या कथा गुप्त है हे सुव्रत, हमसे आप वर्णन कीजिये।

इसी प्रकार 'ब्रह्मपुराण' के पाताल-खंड में अयोध्या-माहात्म्य के वर्णन में भी आता है :

> शापोक्त्या हृदि संतप्तं प्रोचतंसयकल्मषम् ।
> प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः ॥
> न निषादः स वै रामो मृगयाम जन्तुमागतः ।
> तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वभविष्यति ॥

इत्युक्त्वा तम् जगामाशु ब्रह्मलोके सनातनः।
ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थ कोटिभिः॥

रामायण के टीकाकार नागेश भट्ट ने 'कोटिभिः' का अर्थ शतकोटिभिः लगाया है, जिसके अनुसार 'वाल्मीकि रामायण' सौ करोड़ श्लोकों की रचना थी, वह सब तो ब्रह्म-लोक चला गया। कुश-लव के उपदेश किये हुए २४,००० श्लोक यहीं रह गए।

कुछ भी हो, इससे यह स्पष्ट होता है कि 'वाल्मीकीय रामायण' का वर्तमान संस्करण महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित मूल-कथा से अनेक क्षेपकों के साथ परिवर्ती रूप है।

कथानक ७ कांडों में विभाजित है। ऊपर हमने उनके नाम गिनाये हैं, लेकिन 'अध्यात्म रामायण' में आदिकांड को बालकाड और युद्धकांड को लकाकांड कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित-मानस' में भी ७ काड हैं, और नाम वे ही हैं, जो 'अध्यात्म रामायण' में हैं। 'पद्म-पुराण' में भी राम-कथा मिलती है, लेकिन उस कथा का विभाजन काडों में नहीं है। स्वयं 'पद्म-पुराण' ५ खंडों में विभाजित है, जिसके सृष्टिखंड, पाताल-खंड और उत्तरखड में राम-चरित का वर्णन है। कथा का विभाजन विषयानुगत हुआ है, जैसे सूत-शौनक-संवाद, शेष के प्रति वात्स्यायन का राम-चरित-विषयक प्रश्न, रावण को मारकर राम का अयोध्या की ओर जाना, सीता-सहित नंदिग्राम दर्शन इत्यादि। 'पद्म-पुराण' में रामायण की मूलकथा का वर्णन नहीं के बराबर है। इसमें तो उस समय का वर्णन है, जब राम रावण को मारकर अयोध्या लौट आते हैं, उनका राज्याभिषेक होता है, राम गर्भवती सीता का परित्याग करते हैं, वाल्मीकि के आश्रम में सीता के दो पुत्र पैदा होते हैं, लव और कुश। इधर अयोध्या में अश्वमेध-यज्ञ होता है, अश्व छोड़ा जाता है, अश्व के साथ शत्रुघ्न और भरत का पुत्र पुष्कल जाते हैं, उनके साथ विशाल चतुरंगिणी सेना है, विभिन्न देशों के राजाओं को वे परास्त करते जाते हैं, अन्त में कुश अश्व को पकड़ लेता है, युद्ध होता है, लव और कुश सारी वाहिनी को परास्त कर देते हैं। अन्त में वाल्मीकि उन्हें राम के दरबार में ले जाते हैं, इधर लक्ष्मण सीता को भी ले जाते हैं, सभी वहाँ मिलते हैं। शम्बूक-वध का भी वर्णन सृष्टि-खड में आता है।

'महाभारत' के वन-पर्व में भी रामोपाख्यान है जो २० अध्यायों में विभाजित है :

१. मार्कण्डेय से युधिष्ठिर का प्रश्न।
२. रामचन्द्र के उपाख्यान का आरम्भ।
३. रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण की उत्पत्ति।
४. ब्रह्मा की आज्ञा से सब देवताओं का वानर-योनि में होना।

५. राम-लक्ष्मण के वनवास की कथा।

६. सीता-हरण की कथा।

७. कबन्ध-वध।

८. बाली का वध और सुग्रीव से रामचन्द्र की मित्रता।

९. रावण और सीता-संवाद।

१०. हनुमान का सीता की खबर लेकर रामचन्द्र के पास आना।

११. रामचन्द्र का समुद्र पर पुल बाँधना और पार जाकर लंकापुरी को घेरना।

१२. अंगद का दूतकर्म।

१३. रावण आदि का द्वन्द्व-युद्ध।

१४. रावण का कुम्भकर्ण को जगाकर युद्ध के लिए भेजना।

१५. कुम्भकर्ण वध।

१६. इन्द्रजित् युद्ध।

१७. इन्द्रजित् का वध।

१८. रावण का मारा जाना।

१९. रामचन्द्र का अयोध्या में लौटकर आना और राजगद्दी पर बैठना।

२०. मार्कण्डेय का युधिष्ठिर को धीरज बँधाना।

'महाभारत' के रामोपाख्यान में राम के राज्याभिषेक के बाद की कथा पर प्रकाश नहीं डाला गया है। इसका कारण यही है कि महाभारत में रामकथा प्रसंगवश आई है। इसके द्वारा ऋषि मार्कण्डेय राजा युधिष्ठिर के उद्विग्न हृदय को सान्त्वना देते हैं। वे कहते हैं—हे महाबाहु धर्मराज, तुम्हारी स्त्री ही अपमानित नहीं हुई बल्कि त्रेता में राम की स्त्री सीता को भी रावण हर ले गया था, उन, राम-लक्ष्मण ने भी तुम्हारी ही तरह वन में अनेकों कष्ट झेले थे लेकिन अन्त में उन्होंने शत्रु पर विजय पाई. इससे हे कुरुश्रेष्ठ, तुम शोक न करो।

'अद्भुत रामायण' में किसी प्रकार का कांड-विभाजन नहीं है। यह कथा ही रामायण की मूल कथा से भिन्न है। उसमें राम के जीवन का कुछ श्लोकों में संक्षिप्त वर्णन है। इसके बाद सीता के चरित्र पर अधिक प्रकाश डाला गया है। यह रामायण इसी उद्देश्य से लिखी मालूम होती है। इसमें महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—हे भरद्वाज! इक्ष्वाकु-कुल-सागर में जिस प्रकार रामचन्द्र का जन्म हुआ सो आप सुनो और महादेवी सीता का भी पृथ्वी पर जन्म लेने का कारण सुनो। इसमें राम का सहस्र-मुख रावण से युद्ध का वर्णन है जिसमें राम मूर्छित होकर गिर जाते हैं। सीताजी साक्षात् महादेवी का रूप धरकर एक हाथ में खप्पर और दूसरे में खड्ग लेकर आगे बढ़ती हैं और रावण के हज़ारों सिरों को काट डालती हैं। इसके बाद राम की मूर्च्छा

समाप्त होती है और वे महाकाली रूप सीता की स्तुति करने लगते हैं। उस स्तुति को 'सीता सहस्रनाम' कहा गया है।

'श्रीमद्‌भागवत' में भी नवम स्कंध के दशम अध्याय में भगवान् श्रीराम की लीलाओं का वर्णन है। इसमें शुकदेव जी राजा परीक्षित से कथा कहते हैं; किसी प्रकार के कांडों का विभाजन यहाँ भी नहीं है। महाभारत की तरह यहाँ भी प्रसगवश ही कथा आई है। इसमे संक्षेप में राम-जन्म से राज्याभिषेक तक की कथा है। पूरा कथानक तो इसमें नहीं आ पाया है परन्तु फिर भी राम के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनायें आगयी हैं।

महात्मा सूरदास ने भी रामकथा को लिया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' में पहिले खण्ड में यह कथा वर्णित है। महात्मा सूरदास कृष्ण के भक्त थे और पाठकों को आश्चर्य होगा कि उन्होने रामकथा को अपने काव्य में स्थान दिया। सूरदास कृष्ण को भगवान् का अवतार समझते थे। इसी प्रकार भगवान् के अन्य अवतार भी हुए हैं। कुल अवतार २२ माने जाते हैं। सूरदास भगवान् के सभी अवतारों पर श्रद्धा रखते थे। उन्होंने पहले खण्ड मे ही सब अवतारों की संक्षिप्त कथाओं को काव्य का रूप दिया है। उन्हीं में नवम स्कंध में वर्णित रामावतार की कथा है। चूँकि सूरदास गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे इसलिये उन्होने भी अपनी इस छोटी सी कथा को ६ काण्डों में विभाजित किया है। उत्तरकाण्ड को इसमें नही लिया गया है। कथा राम-जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक है। इसके अलावा लंकाकाण्ड में कच-देवयानी कथा और देवयानी-ययाति विवाह-कथा और सम्मिलित है। यह कथा भी यद्यपि संक्षिप्त है फिर भी रामायण की मुख्य-मुख्य घटनाओं पर पूरा प्रकाश डालती है। इसमें राज्याभिषेक तक १५७ पद हैं। इसके बाद कच-देवयानी कथा और देवयानी-ययाति विवाह चौपाइयों मे वर्णित है।

'विष्णु पुराण' चतुर्थ अंश में सगर और खट्वाङ्ग के साथ राम के चरित्र का वर्णन मिलता है। इसमें तो कथा अत्यंत संक्षिप्त है जिसे पाराशर जी कहते हैं। इसमें तो किसी प्रकार का विभाजन हो ही नही सकता क्योंकि यहाँ पुराणकार ने राम के जीवन के विभिन्न अंगों को नही लिया है बल्कि ऐसा लगता है मानो भूले हुए को याद दिलाने के लिये रामकथा पर सरसरी नजर दौड़ाई हो। लेकिन इसमें राम के राज्याभिषेक के बाद भी कथा का सूत्र हमें मिल जाता है, ठीक यह ही नही मिलता जो 'पद्मपुराण' में विस्तार के साथ मिलता है बल्कि इसमे तो भरत का गंधर्व-लोक मे जाकर तीन करोड़ गंधर्वों का वध करके विजय पाना तथा शत्रुघ्न का महापराक्रमी मधुपुत्र लवणासुर का संहार कर मधुपुरी को जीतने की सूचनामात्र है। इसके बाद राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न के पुत्र और पौत्रों के नाम गिनाये हैं।

इसके अलावा प्राय: प्रत्येक पुराण में कहीं-न-कहीं राम-कथा का सूत्र हमें मिल

जाता है, जहाँ तक हमारी पहुँच हो पाई है हमने पहले अध्याय में सबको एकत्रित किया है। कथा-विभाजन की दृष्टि से उनमें अवश्य कुछ-न-कुछ अन्तर होगा। जैसा हम पहले कह आये हैं कि *जैन-पुराणों में रामकथा कुछ विस्तार के साथ मिलती है* लेकिन उसका दृष्टिकोण अलग होते हुए भी उसमें कथा-विभाजन न तो सर्गों के रूप में है न काण्डों के रूप में, बल्कि पद्मपुराण (जैन) में जहाँ भी रामकथा है वहाँ कथाओं की क्रमसंख्या के रूप में यह विभाजित है जैसे पद्म (राम), लक्ष्मण, शत्रुघ्न, और भरत का जन्म-विवरण; सीता की उत्पत्ति, म्लेच्छ-पराजय वर्णन, लक्ष्मण का रत्न-लाभ, प्रभावक्र हरण, तन्माता का शोक, नारदाङ्किता सीता को देखकर उनकी माता का मोह, सीतास्वयंवर वृतान्त, महाधनु की उत्पत्ति, सर्वभूत-शरण्य का दशरथ को दीक्षा देना इत्यादि। इस तरह 'पद्मपुराण' में १२० अध्याय तथा १८८२३ श्लोक हैं[1] जिनमें अधिकतर राम तथा उनके जीवन से सम्बन्धित पात्रों की ही कथा है।

राम-कथा का विभिन्न काव्यों तथा पुराणों में उपर्युक्त विभाजन अत्यंत सरल है और प्रत्येक भाग का शीर्षक उसके अंतर्गत आई कथा को स्पष्ट कर देता है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' के आदि काण्ड तथा उत्तर काण्ड के अधिकांश भाग का काव्यकार मूलकथा से दूर भटका है जिनमें उसने अनेकों अन्तर्कथाओं का जाल-सा बिछा कर राम के अलौकिक रूप पर अधिक जोर दिया है। इनमें कथा की गति नहीं है बल्कि सम्प्रदाय विशेष के विचारों की पुष्टि के हेतु राम को विष्णु का अवतार सिद्ध करने का प्रयत्न है। श्रेष्ठ रचना की दृष्टि से यह अच्छा होता अगर आदिकाण्ड और उत्तरकाण्ड के दो भाग कर दिये जाते जिनमें एक भाग में मूलकथा से सम्बंधित विषय-वस्तु होती और दूसरे भाग में अन्य बातें। सोवियत रूस के आलोचक ए० पी० वारान्निकोव ने भी रामायण के इन दो काण्डों को रचना की दृष्टि से असफल कहा है। इसी परम्परा का अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' में किया है। उनके बालकाण्ड मे भी राम-जन्म से पहले अनेक कथायें है जैसे सती का दक्ष-यज्ञ में जाकर जल जाना, शिव-पार्वती विवाह, आदि। इनके अलावा तुलसीदास जी ने अनेक देवी-देवताओं, संत-असंत आदि की बड़े विस्तार से वन्दना की है, उनके पक्ष में वह ठीक भी है क्योंकि गोस्वामी जी सन्त थे और राम के अनन्य भक्त थे और उन्होंने इस सबके द्वारा मूल राम-कथा की पृष्ठभूमि तैयार की है परन्तु कथा की रचना की दृष्टि से यह श्रेष्ठ नहीं। इसी प्रकार उत्तरकाण्ड का विभाजन भी मूलकथा से थोड़े से अंश तक सम्बन्ध रखता है। उसमें तो राम के राज्याभिषेक के बाद ही गोस्वामीजी ने अपने युग की विभिन्न समस्याओं को लिया है और उन सबका समाधान निगमागम-सम्मत मार्ग पर ढूँढ़ा है। उत्तरकाण्ड का यह भाग कथा का कम अंश तथा उपदेश

---

१. हिन्दुत्व, पृष्ठ ४२६।

अधिक संक्षिप्त हुए हैं। इस तरह कथा-विभाजन की दृष्टि से 'मानस' के बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड श्रेष्ठ नहीं हैं।

'अध्यात्म रामायण' में कथा का विभाजन तो उन्हीं सात काण्डों में है लेकिन कथा की गति किसी काण्ड में नहीं है, उसमें अधिकतर दर्शन और धर्म की बातें हैं जिसकी पूर्ण विवेचना हम आगे करेंगे। कथा नाम मात्र के लिये या यों कहें कि वाल्मीकीय रामायण का अनुकरण करके ही विभाजित की गयी है। बालकाण्ड कथावस्तु से सम्बन्धित है लेकिन उत्तरकाण्ड में वाल्मीकीय रामायण की कड़ी हमें फिर मिल जाती है लेकिन इसमें अन्तर्कथायें कम हैं।

'सूरसागर' का विभाजन संयत है, केवल परम्परा को निभाने के लिये उत्तरकाण्ड में कच-देवयानी कथा तथा देवयानी-ययाति विवाह की कथा और जोड़ दी गई है।

इसके अलावा 'अद्भुत रामायण' में तो कथा का स्वरूप ही भिन्न है और उसमें किसी तरह का विभाजन है ही नहीं। 'महाभारत' (रामोपाख्यान), 'पद्मपुराण', 'श्रीमद्भागवत' आदि में कथा का संक्षिप्त रूप होने के कारण जहाँ भी विभाजन है वह संयत है।

'जैन पद्मपुराण' में भी रामकथा विस्तारपूर्वक कही गई है इसमें कथा यत्र-तत्र, बिखरी हुई मिलती है। कथा का विभाजन पर्वों में है। पद्मपुराण में कुल १२३ पर्व हैं। गौतम स्वामी श्रेणिक से कथा कहते हैं। मंगलाचरण के पश्चात् द्वितीय पर्व में ही श्रेणिक राजा गौतम स्वामी से रामचन्द्र और रावण के चरित्र सुनने के लिये प्रश्न करता है इसके बाद राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के चरित्रों के वर्णन के साथ उनसे सम्बन्धी पात्रों का भी विस्तार से वर्णन मिलता है। १२३वें पर्व में राम की मोक्ष-प्राप्ति के वर्णन के पश्चात् रामकथा समाप्त हो जाती है।

राम-जन्म की कथा

'काश्मीरी रामायण' के अनुसार राम जन्म की कथा निम्न प्रकार से है :

अयोध्या के महाप्रतापी राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं, कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी लेकिन उनके एक भी पुत्र नहीं था। राजा को इसकी बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने गुरु और पुरोहितों को बुलाया। सबकी सलाह से यज्ञ की तय्यारी होने लगी। इसी बीच राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने उनसे कहा कि वह कश्यप ऋषि के पौत्र, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृंग को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलावें। ऋष्यशृंग ने आकर यज्ञ का प्रारम्भ कराया। सरयू के उत्तर तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ हुआ, अश्व छोड़ा गया। विभिन्न देशों के राजा तथा ब्राह्मण यज्ञ में भाग लेने आये। वेद के जानने वाले ब्राह्मण ऋष्यशृंग की आज्ञा ले-लेकर यज्ञ क्रियायें करने लगे। ऋष्यशृंग कुछ देर तक ध्यान करके राजा से बोले कि तेरे पुत्र होने के लिए मैं अथर्ववेद * के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा। जब मुनि ने वेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि का प्रारम्भ किया और जब वे विधि से अग्नि में आहुति देने लगे तब देवता गंधर्व, सिद्ध और महर्षि उस यज्ञ सभा में यज्ञ भाग लेने आये। देवता लोग ब्रह्मा से बोले—हे भगवान् ! आपके वरदान से रावण हम सबको पीड़ा देता है। हम

---

* बुद्ध के समय तक त्रिवेदी ही मान्य थे—ऋक्, साम, यजुस्। 'पुरुष-सूक्त' में भी इन तीन का ही नाम आया है। विद्वानों का मत है, कि अथर्ववेद पर-वर्ती है जिसे बाद में मान्यता मिली है, किन्तु 'पुरुषसूक्त' में ही छन्दस् का प्रयोग हुआ है जो सम्भवतः अथर्ववेद के बनते हुए मन्त्रों के लिये ही कहा गया है। यह बात कि वाल्मीकीय रामायण अपने सम्पादित शुंगकालीन रूप में अथर्व को ही विशेषता दे प्रकट करती है कि यह पुरानी रामकथा का ही अवशेष है। सम्भवतः उस समय अनार्य-प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि व्रात्य, जैन तीर्थंकर तथा बुद्ध ये सब ब्राह्मणेतर विचारक पूर्व भारत के आर्य प्रदेशों में ही उल्लिखित हुए हैं। पाञ्चरात्र के व्यूहवाद और अवतारवाद ने जिन अनेक जातियों के टॉटेमों और विश्वासों को [illegible] के रूप में अन्तर्भुक्त कर लिया था वह भी ईसा से पाँच या छः शताब्दियों से [illegible] बात थी। कालान्तर में ही वह [illegible] से जोड़ सकी।

लोग पराक्रम द्वारा उसका कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आपके दिये वरदान के घमण्ड में वह ऋषि, यक्ष, गंधर्व, ब्राह्मण और असुर किसी को कुछ समझता ही नहीं। भगवान्! उस भयंकर राक्षस से हम लोगों की रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा जी ने कुछ विचार कर कहा—देवताओ, वर देने के समय रावण ने यह वर माँगा था कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देव और राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। उसने मनुष्यों का नाम नहीं लिया था, इसलिये यह केवल मनुष्य द्वारा ही मर सकता है। उसी समय महाप्रकाशरूप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये विष्णु भगवान् वहाँ आये। देवता लोग विनयपूर्वक स्तुति करके विष्णु भगवान् से बोले—हे महाप्रभु, हम लोग सारे संसार की भलाई के लिये आपसे एक प्रार्थना करते हैं। वह यह कि महादानी और धर्मात्मा अयोध्यापति महाराज दशरथ की ह्री, श्री और कीर्ति के समान जो तीन रानियाँ हैं उनमें आप अपने चार भाग करके पुत्र भाव स्वीकार कीजिये। आप वहाँ मनुष्य होकर महाघमण्डी और दुराचारी रावण को मारिये। वह देवताओं से भी नहीं मारा जा सकता, क्योंकि वह मूर्ख अपने बल से देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोगों को पीड़ा देता है। उस दुष्ट ने नन्दन वन में क्रीड़ा करते हुए अनेक ऋषियों, गन्धर्वों और अप्सराओं को मार डाला है। हम सब आपकी शरण आये हैं। हे कृपानिधि, आप दुष्टों को मारने की कृपा कीजिये।

इस तरह देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे देवताओ, तुम भय मत करो। मैं उस दुष्ट को कुटुम्ब सहित मारकर तुम्हारे लिये ११००० वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वैकुण्ठ धाम को चले गये और सब ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सरायें भगवान् की स्तुति करते रहे। ब्रह्मा जी द्वारा रावण को दिये वरदान को ध्यान में रखकर विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में अवतार लेने का निश्चय किया।

इधर राजा दशरथ के अग्निकुंड में से एक महा बलवान् कृष्णवर्ण का पुरुष निकला। वह लाल कपड़े पहने था, मुँह उसका लाल था, वह दुंदुभि का-सा शब्द करते हुए खड़ा हुआ। सिंह के रोम के से उसके रोम और वैसी ही मूँछें थी, लक्षण उसके शुभ थे, वह सुन्दर गहना पहने था, वह पर्वत के शिखर के समान ऊँचा और सूर्य के बराबर तेजस्वी था, सिंह की-सी उसकी चाल थी और जलती हुए अग्नि के समान उसका रूप था। वह दोनों हाथों में सोने के पात्र में चाँदी के ढकने से ढकी हुई खीर लिये हुए था। वह निकलते ही राजा दशरथ की ओर देखकर बोला—हे राजन्, मुझे भगवान् विष्णु ने तुम्हारे पास भेजा है, मैं अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से बनाई हुई, सन्तान देने वाली, धन और ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाली यह खीर तुम्हारे लिये लाया हूँ। इसे लीजिये और अपनी रानियों को खिला दीजिये। इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे जिसके लिये तुमने यज्ञ किया है। राजा ने रनिवास में जाकर रानियों को वह

राम-जन्म की कथा

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार राम-जन्म की कथा निम्न प्रकार से है :

अयोध्या के महाप्रतापी राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं, कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी लेकिन उसके एक भी पुत्र नहीं था। राजा को इसकी बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने गुरु और पुरोहितों को बुलाया। सबकी सलाह से यज्ञ की तय्यारी होने लगी। इसी बीच राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने उससे कहा कि वह कश्यप ऋषि के पौत्र, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृंग को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलाये। ऋष्यशृंग ने आकर यज्ञ का प्रारम्भ कराया। सरयू के उत्तर तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ हुआ, अश्व छोड़ा गया। विभिन्न देशों के राजा तथा ब्राह्मण यज्ञ में भाग लेने आये। वेद के जानने वाले ब्राह्मण ऋष्यशृंग की आज्ञा ले-ले कर यज्ञ क्रियायें करने लगे। ऋष्यशृंग कुछ देर तक ध्यान करके राजा से बोले *कि तेरे पुत्र होने के लिए मैं अथर्ववेद* ● *के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा।* जब मुनि ने वेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि का प्रारम्भ किया और जब वे विधि से अग्नि में आहुति देने लगे तब देवता गंधर्व, सिद्ध और महर्षि उस यज्ञ सभा में यज्ञ भाग लेने आये। देवता लोग ब्रह्मा से बोले—हे भगवान्! आपके वरदान से रावण हम सबको पीड़ा देता है। हम

● बुद्ध के समय तक त्रिवेदी ही मान्य थे—ऋक्, साम, यजुस्। 'पुरुष-सूक्त' में भी इन तीन का ही नाम आया है। विद्वानों का मत है, कि अथर्ववेद परवर्ती है जिसे बाद में मान्यता मिली है, किन्तु 'पुरुषसूक्त' में ही छन्दस् का प्रयोग हुआ है जो सम्भवतः अथर्ववेद के बनते हुए मन्त्रों के लिये ही कहा गया है। यह बात कि वाल्मीकीय रामायण अपने सम्पादित शुंगकालीन रूप में अथर्व को ही विशेषता से प्रकट करती है कि यह पुरानी रामकथा का ही अवशेष है। सम्भवतः उस समय अनार्य-प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि शाक्य, जैन तीर्थंकर तथा बुद्ध ये सब ब्राह्मणेतर विचारक पूर्व भारत के आर्य प्रदेशों में ही उल्लिखित हुए हैं। पाञ्चरात्र के व्यूहवाद और अवतारवाद ने जिन अनेक जातियों के टोटेमों और विश्वासों को विष्णु के रूप में अन्तर्भुक्त कर लिया [illegible]। ईसा से पाँच या छः शताब्दियों से पुरानी बात थी। कालान्तर में ही [illegible], ये जोड़ गये।

लोग पराक्रम द्वारा उसका कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आपके दिये वरदान के घमण्ड में वह ऋषि, यक्ष, गंधर्व, ब्राह्मण और असुर किसी को कुछ समझता ही नहीं। भगवान् ! उस भयंकर राक्षस से हम लोगों की रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा जी ने कुछ विचार कर कहा—देवताओ, वर देने के समय रावण ने यह वर माँगा था कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देव और राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। उसने मनुष्यों का नाम नहीं लिया था, इसलिये यह केवल मनुष्य द्वारा ही मर सकता है। उसी समय महाप्रकाशरूप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये विष्णु भगवान् वहाँ आये। देवता लोग विनयपूर्वक स्तुति करके विष्णु भगवान् से बोले—हे महाप्रभु, हम लोग सारे संसार की भलाई के लिये आपसे एक प्रार्थना करते हैं। वह यह कि महादानी और धर्मात्मा अयोध्यापति महाराज दशरथ की ह्री, श्री और कीर्ति के समान जो तीन रानियाँ हैं उनमें आप अपने चार भाग करके पुत्र भाव स्वीकार कीजिये। आप वहाँ मनुष्य होकर महाघमण्डी और दुराचारी रावण को मारिये। वह देवताओं से भी नहीं मारा जा सकता, क्योंकि वह मूर्ख अपने बल से देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोगों को पीड़ा देता है। उस दुष्ट ने नन्दन वन में क्रीड़ा करते हुए अनेक ऋषियों, गन्धर्वों और अप्सराओं को मार डाला है। हम सब आपकी शरण आये हैं। हे कृपानिधि, आप दुष्टों को मारने की कृपा कीजिये।

इस तरह देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे देवताओ, तुम भय मत करो। मैं उस दुष्ट को कुटुम्ब सहित मारकर तुम्हारे लिये ११००० वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वैकुण्ठ धाम को चले गये और सब ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सरायें भगवान् की स्तुति करते रहे। ब्रह्मा जी द्वारा रावण को दिये वरदान को ध्यान में रखकर विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में अवतार लेने का निश्चय किया।

इधर राजा दशरथ के अग्निकुंड में से एक महा बलवान् कृष्णवर्ण का पुरुष निकला। वह लाल कपड़े पहने था, मुँह उसका लाल था, वह दुंदुभि का-सा शब्द करते हुए खड़ा हुआ। सिंह के रोम के से उसके रोम और वैसी ही मूँछें थी, लक्षण उसके शुभ थे, वह सुन्दर गहना पहने था, वह पर्वत के शिखर के समान ऊँचा और सूर्य के बराबर तेजस्वी था, सिंह की-सी उसकी चाल थी और जलती हुए अग्नि के समान उसका रूप था। वह दोनों हाथों मे सोने के पात्र मे चाँदी के ढकने से ढकी हुई खीर लिये हुए था। वह निकलते ही राजा दशरथ की ओर देखकर बोला—हे राजन्, मुझे भगवान् विष्णु ने तुम्हारे पास भेजा है, मैं अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से बनाई हुई, सन्तान देने वाली, धन और ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाली यह खीर तुम्हारे लिये लाया हूँ। इसे लीजिये और अपनी रानियों को खिला दीजिये। इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे जिसके लिये तुमने यज्ञ किया है। राजा ने रनिवास मे जाकर रानियों को वह

राम-जन्म की कथा

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार राम जन्म की कथा निम्न प्रकार से है :

अयोध्या के महाप्रतापी राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं, कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी लेकिन उनके एक भी पुत्र नहीं था। राजा को इसकी बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने गुरु और पुरोहितों को बुलाया। सबकी सलाह से यज्ञ की तय्यारी होने लगी। इसी बीच राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने उनसे कहा कि वह कश्यप ऋषि के पौत्र, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यश्रृंग को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलावें। ऋष्यश्रृंग ने आकर यज्ञ का प्रारम्भ कराया। सरयू के उत्तर तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ हुआ, अश्व छोड़ा गया। विभिन्न देशों के राजा तथा ब्राह्मण यज्ञ में भाग लेने आये। वेद के जानने वाले ब्राह्मण ऋष्यश्रृंग की आज्ञा ले-लेकर यज्ञ क्रियायें करने लगे। ऋष्यश्रृंग कुछ देर तक ध्यान करके राजा से बोले कि तेरे पुत्र होने के लिए मैं अथर्ववेद * के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा। जब मुनि ने वेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि का प्रारम्भ किया और जब वे विधि से अग्नि में आहुति देने लगे तब देवता गंधर्व, सिद्ध और महर्षि उस यज्ञ सभा में यज्ञ भाग लेने आये। देवता लोग ब्रह्मा से बोले—हे भगवान्! आपके वरदान से रावण हम सबको पीड़ा देता है। हम

---

* बुद्ध के समय तक त्रिवेदी ही मान्य थे—ऋक्, साम, यजुस्। 'पुरुषसूक्त' में भी इन तीन का ही नाम आया है। विद्वानों का मत है, कि अथर्ववेद परवर्ती है जिसे बाद में मान्यता मिली है, किन्तु 'पुरुषसूक्त' में ही छन्दस् का प्रयोग हुआ है जो सम्भवतः अथर्ववेद के बनते हुए मन्त्रों के लिये ही कहा गया है। यह बात कि वाल्मीकीय रामायण अपने सम्पादित युगकालीन रूप में अथर्व को ही विशेषता से प्रकट करती है कि यह पुरानी रामकथा का ही अवशेष है। सम्भवतः उस समय अनार्य-प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि व्रात्य, जैन तीर्थंकर तथा बुद्ध ये सब ब्राह्मणेतर विचारक पूर्व भारत के आर्य प्रदेशों में ही उल्लिखित हुए हैं। पाञ्चरात्र के व्यूहवाद और अवतारवाद ने, जिन अनेक जातियों के टोटेमों और विश्वासों को विष्णु के रूप में अन्तर्भुक्त कर लिया [illegible] ी ईसा से पाँच या छः शताब्दियों से पुरानी बात थी। कालान्तर में ही व[illegible] से जोड़ सकी।

लोग पराक्रम द्वारा उसका कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आपके दिये वरदान के घमण्ड में वह ऋषि, यक्ष, गंधर्व, ब्राह्मण और असुर किसी को कुछ समझता ही नहीं। भगवान्! उस भयंकर राक्षस से हम लोगों की रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा जी ने कुछ विचार कर कहा—देवताओ, वर देने के समय रावण ने यह वर माँगा था कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देव और राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। उसने मनुष्यों का नाम नहीं लिया था, इसलिये यह केवल मनुष्य द्वारा ही मर सकता है। उसी समय महाप्रकाशवान् शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये विष्णु भगवान् वहाँ आये। देवता लोग विनयपूर्वक स्तुति करके विष्णु भगवान् से बोले—हे महाप्रभु, हम लोग सारे संसार की भलाई के लिये आपसे एक प्रार्थना करते हैं। वह यह कि महादानी और धर्मात्मा अयोध्यापति महाराज दशरथ की ह्री, श्री और कीर्ति के समान जो तीन रानियाँ हैं उनमे आप अपने चार भाग करके पुत्र भाव स्वीकार कीजिये। आप वहाँ मनुष्य होकर महाघमण्डी और दुराचारी रावण को मारिये। वह देवताओं से भी नहीं मारा जा सकता, क्योंकि वह मूर्ख अपने बल से देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोगों को पीड़ा देता है। उस दुष्ट ने नन्दन वन में क्रीड़ा करते हुए अनेक ऋषियों, गन्धर्वों और अप्सराओं को मार डाला है। हम सब आपकी शरण आये हैं। हे कृपानिधि, आप दुष्टों को मारने की कृपा कीजिये।

इस तरह देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे देवताओ, तुम भय मत करो। मैं उस दुष्ट को कुटुम्ब सहित मारकर तुम्हारे लिये ११००० वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वैकुण्ठ धाम को चले गये और सब ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सरायें भगवान् की स्तुति करते रहे। ब्रह्मा जी द्वारा रावण को दिये वरदान को ध्यान में रखकर विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में अवतार लेने का निश्चय किया।

इधर राजा दशरथ के अग्निकुंड में से एक महा बलवान् कृष्णवर्ण का पुरुष निकला। वह लाल कपड़े पहने था, मुँह उसका लाल था, वह दुंदुभि का-सा शब्द करते हुए खड़ा हुआ। सिंह के रोम के से उसके रोम और वैसी ही मूँछें थी, लक्षण उसके शुभ थे, वह सुन्दर गहना पहने था, वह पर्वत के शिखर के समान ऊँचा और सूर्य के बराबर तेजस्वी था, सिंह की-सी उसकी चाल थी और जलती हुए अग्नि के समान उसका रूप था। वह दोनों हाथों में सोने के पात्र में चाँदी के ढकने से ढकी हुई खीर लिये हुए था। वह निकलते ही राजा दशरथ की ओर देखकर बोला—हे राजन्, मुझे भगवान् विष्णु ने तुम्हारे पास भेजा है, मैं अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से बनाई हुई, सन्तान देने वाली, धन और ऐश्वर्य्य बढ़ाने वाली यह खीर तुम्हारे लिये लाया हूँ। इसे लीजिये और अपनी रानियों को खिला दीजिये। इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे जिसके लिये तुमने यज्ञ किया है। राजा ने रनिवास में . . . रानियों को वह

राम-जन्म की कथा

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार राम जन्म की कथा निम्न प्रकार से है :

अयोध्या के महाप्रतापी राजा दशरथ के तीन रानियां थीं, कौशल्या, सुमित्रा और कैकयी लेकिन उसके एक भी पुत्र नहीं था। राजा को इसकी बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। ऐसा विचार कर राजा ने अपने गुरु और पुरोहितों को बुलाया। सबकी सलाह से यज्ञ की तय्यारी होने लगी। इसी बीच राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने उससे कहा कि वह कश्यप ऋषि के पौत्र, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृंग को पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए बुलावें। ऋष्यशृंग ने आकर यज्ञ का प्रारम्भ कराया। सरयू के उत्तर तीर पर विधिपूर्वक यज्ञ हुआ, अश्व छोड़ा गया। विभिन्न देशों के राजा तथा ब्राह्मण यज्ञ में भाग लेने आये। वेद के जानने वाले ब्राह्मण ऋष्यशृंग की आज्ञा ले-ले कर यज्ञ क्रियायें करने लगे। ऋष्यशृंग कुछ देर तक ध्यान करके राजा से बोले कि तेरे पुत्र होने के लिए मैं अथर्ववेद * के मन्त्रों से पुत्रेष्टि यज्ञ करूँगा। जब मुनि ने वेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि का प्रारम्भ किया और जब वे विधि से अग्नि में आहुति देने लगे तब देवता गंधर्व, सिद्ध और महर्षि उस यज्ञ सभा में यज्ञ भाग लेने आये। देवता लोग ब्रह्मा से बोले—हे भगवान् ! आपके वरदान से रावण हम सबको पीड़ा देता है। हम

* बुद्ध के समय तक त्रिवेदी ही मान्य थे—ऋक्, साम, यजुस्। 'पुरुष-सूक्त' में भी इन तीन का ही नाम आया है। विद्वानों का मत है, कि अथर्ववेद परवर्ती है जिसे बाद में मान्यता मिली है, किन्तु 'पुरुषसूक्त' में ही छन्दस् का प्रयोग हुआ है जो सम्भवतः अथर्ववेद के बनते हुए मन्त्रों के लिये ही कहा गया है। यह बात कि वाल्मीकीय रामायण अपने सम्पादित गुप्तकालीन रूप में अथर्व को ही विशेषता दे प्रकट करती है कि यह पुरानी रामकथा का ही अवशेष है। सम्भवतः उस समय अनार्य-प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि व्रात्य, जैन तीर्थंकर तथा बुद्ध ये सब ब्राह्मणेतर विचारक पूर्व भारत के आर्य प्रदेशों में ही उल्लिखित हुए हैं। पाञ्चरात्र के व्यूहवाद और अवतारवाद ने जिन अनेक जातियों के टोटेमों और विश्वासों को विष्णु के रूप में अन्तर्भुक्त कर लिया था वह भी ईसा से पाँच या छः शताब्दियों से पुरानी बात थी। कालान्तर में ही वह अपना सम्बन्ध पुरानी परम्परा से जोड़ सकी।

लोग पराक्रम द्वारा उसका कुछ भी नहीं कर सकते क्योंकि आपके दिये वरदान के घमण्ड में वह ऋषि, यक्ष, गंधर्व, ब्राह्मण और असुर किसी को कुछ समझता ही नहीं। भगवान्! उस भयंकर राक्षस से हम लोगों की रक्षा कीजिये।

ब्रह्मा जी ने कुछ विचार कर कहा—देवताओ, वर देने के समय रावण ने यह वर माँगा था कि मैं गन्धर्व, यक्ष, देव और राक्षसों के हाथ से न मारा जाऊँ। उसने मनुष्यों का नाम नहीं लिया था, इसलिये यह केवल मनुष्य द्वारा ही मर सकता है। उसी समय महाप्रकाशरूप शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को धारण किये विष्णु भगवान् वहाँ आये। देवता लोग विनयपूर्वक स्तुति करके विष्णु भगवान् से बोले—हे महाप्रभु, हम लोग सारे संसार की भलाई के लिये आपसे एक प्रार्थना करते हैं। वह यह कि महादानी और धर्मात्मा अयोध्यापति महाराज दशरथ की ह्री, श्री और कीर्ति के समान जो तीन रानियाँ हैं उनमें आप अपने चार भाग करके पुत्र भाव स्वीकार कीजिये। आप वहाँ मनुष्य होकर महाघमण्डी और दुराचारी रावण को मारिये। वह देवताओं से भी नहीं मारा जा सकता, क्योंकि वह मूर्ख अपने बल से देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि लोगों को पीड़ा देता है। उस दुष्ट ने नन्दन वन में क्रीड़ा करते हुए अनेक ऋषियों, गन्धर्वों और अप्सराओं को मार डाला है। हम सब आपकी शरण आये हैं। हे कृपानिधि, आप दुष्टों को मारने की कृपा कीजिये।

इस तरह देवताओं की स्तुति और प्रार्थना सुनकर भगवान् विष्णु बोले—हे देवताओ, तुम भय मत करो। मैं उस दुष्ट को कुटुम्ब सहित मारकर तुम्हारे लिये ११००० वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वैकुण्ठ धाम को चले गये और सब ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सरायें भगवान् की स्तुति करते रहे। ब्रह्मा जी द्वारा रावण को दिये वरदान को ध्यान में रखकर विष्णु भगवान् ने राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में अवतार लेने का निश्चय किया।

इधर राजा दशरथ के अग्निकुंड में से एक महा बलवान् कृष्णवर्ण का पुरुष निकला। वह लाल कपड़े पहने था, मुँह उसका लाल था, वह दुंदुभि का-सा शब्द करते हुए खड़ा हुआ। सिंह के रोम के से उसके रोम और वैसी ही मूँछें थी, लक्षण उसके शुभ थे, वह सुन्दर गहना पहने था, वह पर्वत के शिखर के समान ऊँचा और सूर्य के बराबर तेजस्वी था, सिंह की-सी उसकी चाल थी और जलती हुई अग्नि के समान उसका रूप था। वह दोनों हाथों में सोने के पात्र में चाँदी के ढकने से ढकी हुई खीर लिये हुए था। वह निकलते ही राजा दशरथ की ओर देखकर बोला—हे राजन्, मुझे भगवान् विष्णु ने तुम्हारे पास भेजा है, मैं अश्वमेध यज्ञ के प्रभाव से बनाई हुई, सन्तान देने वाली, धन और ऐश्वर्य बढ़ाने वाली यह खीर तुम्हारे लिये लाया हूँ। इसे लीजिये और अपनी रानियों को खिला दीजिये। इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र पैदा होंगे जिसके लिये तुमने यज्ञ किया है। राजा ने रनिवास में जाकर रानियों को वह

खीर देकर कहा कि यह पुत्र पैदा करने के लिए मुझे देवता ने दी है। तुम लोग इसको खाओ। उन्होंने खीर का आधा हिस्सा कौशल्या को, चौथा सुमित्रा को और आठवाँ हिस्सा कैकेयी को दिया, फिर कुछ विचार कर बाकी जो अष्टमांश बचा था वह सुमित्रा को दे दिया। इस तरह उन रानियों ने खीर खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी गर्भ धारण किये। कौशल्या के राम, सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न और कैकेयी के भरत नाम के पुत्र पैदा हुए।

इस तरह आदि काण्ड में वर्णित कथा के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भगवान् विष्णु के अंशावतार थे। इस प्रकार जो भी राम के जीवन की कथा रामायण में वर्णित है वह भगवान् की लीला मात्र है लेकिन राम-जन्म का यह अलौकिक दृष्टिकोण रामायण के मूल रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अपना है या परवर्ती है यह एक विवादास्पद विषय है। रामायण के कुछ अंशों को छोड़कर राम का चरित्र जहाँ तक काव्यकार की लेखनी से विकास कर पाया है वह पूर्णरूपेण मानव-तुल्य है, यद्यपि उसमें भी कहीं-कहीं चमत्कार है लेकिन साथ-साथ राम में मानव-तुल्य कमजोरियाँ भी हैं। हमारा अनुमान है कि 'वाल्मीकीय रामायण' में राम-जन्म की कथा बाद में ही अलौकिक रूप धारण कर गई और ऐसा क्यों हुआ? इसको हम आगे स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

'वाल्मीकीय रामायण' में राम की कथा पहले-पहल नारद जी महर्षि वाल्मीकीय से कहते हैं, फिर महर्षि स्वयं अपनी दिव्य दृष्टि से राम के चरित्र जान लेते हैं और उनका वर्णन करते हैं परन्तु 'अध्यात्म रामायण' में पार्वती के राम के अलौकिक रूप पर शंका करने पर शिवजी उनकी शंका-निवारणार्थ राम-कथा सुनाते हैं। शिव राम के अनन्य भक्त माने गये हैं। पहले वे पार्वती को संक्षेप में सारी कथा सुना जाते हैं लेकिन पार्वती को इससे सन्तोष नहीं होता है और वे कहती हैं—हे देव, आपके मुखारविन्द से चुआ हुआ जो संसार-रोग के नाश करने वाला श्रीराम तत्व रसायन है उसका मैंने पान किया है लेकिन मेरा मन तृप्त नहीं हुआ है इसलिये इस समय मैं श्रीरामचन्द्र जी की कथा आपसे विस्तारपूर्वक सुनना चाहती हूँ। यह सुनकर श्री महादेव जी बोले—हे देवि, मैंने गुप्त से भी गुप्त परमश्रेष्ठ अध्यात्म-रामचरित्र राम ही के मुख से कहा हुआ सुना है, वह चरित्र तीनों तापों के शांत करने वाला है, वही मैं तुम्हें सुनाता हूँ।

एक समय मैं रावण आदि राक्षसों के भार से पीड़ित गौरूप धारण की हुई पृथ्वी को, सम्पूर्ण देवताओं और मुनीश्वरों को संग लेकर ब्रह्मलोक में गया। पृथ्वी ब्रह्मा जी के सामने रोने लगी, उसने अपना दुःख कहा, तब ब्रह्मा जी ने एक मुहूर्त्त-भर ध्यान किया और उसके सब क्लेशों को जान लिया। इसके पश्चात् वे सब को लेकर क्षीर समुद्र के तीर पहुँचे। वहाँ वे सब वेद से सिद्ध निर्मल पदों और प्राचीन

स्तोत्रों से अजर, अमर और सर्वज्ञ नारायण की स्तुति करने लगे। हजार सूर्यों की सी कांति वाले नारायण पूर्व दिशा में प्रकट हुए। ब्रह्मा जी और सब देवताओं ने पहले तो भगवान् की वन्दना की फिर ब्रह्मा जी ने रावण के अत्याचार तथा अपने वरदान का हाल नारायण भगवान् से कहा।

भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन्! पहले कश्यप ऋषि ने मेरा तप किया तो उस तप से प्रसन्न होके मैंने कश्यप से कहा कि वर माँगो, तो कश्यप जी ने कहा—जो आप प्रसन्न हो तो आप ही मेरे पुत्र हो। वही कश्यप इस समय पृथ्वी पर दशरथ रूप धारण करके स्थित है, उसके तीन रानियाँ हैं। वहाँ मैं पुत्र-रूप में जन्म लूँगा।

इसके बाद राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की कथा करीब-करीब वही है। यहाँ राजा दशरथ दिव्य पुरुष द्वारा दी हुई खीर का आधा भाग कौशिल्या को देते हैं और आधा कैकेयी को। कौशल्या अपने में से आधा भाग सुमित्रा को दे देती है और कैकेयी भी ऐसा करती है। इस तरह कौशल्या के राम, सुमित्रा के लक्ष्मण, शत्रुघ्न और कैकेयी के भरत पैदा होते हैं। यहाँ हमें एक और अन्तर मिलता है। जैसे ही राम पैदा हुए वे चतुर्भुज-स्वरूप शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए साक्षात् विष्णु भगवान् थे जो नीलकमल दल के तुल्य श्याम वर्ण के थे, वे पीतवस्त्र तथा लक्ष्मी के चिन्ह, हार, बहुँटा और पहुँटा आदि आभूषणों को धारण किये हुए थे। ऐसे बालक को देखकर कौशल्या आश्चर्यचकित रह गई और नमस्कार करके वन्दना करने लगी। अनेक प्रकार से भगवान् का गुण-गान करती हुई कौशल्या ने प्रार्थना की—हे देव, यह आपका रूप सदा मेरे हृदय में वास करे और विश्व को मोहन करने वाली आपकी माया मुझको कभी आवरण न करे। अब आप अपने इस अलौकिक रूप को छिपाइये और अपना अति कोमल बालस्वरूप दिखाइये।

यह सुनकर भगवान् कहने लगे—हे माता, ब्रह्मा के वरदान के फलस्वरूप रावण की मृत्यु मनुष्य द्वारा ही हो सकती है और तुमने व दशरथ ने पूर्व जन्म में बड़ा तप किया था तभी मैंने यह वरदान दे दिया था कि मैं तुम्हारे यहाँ इस पृथ्वी के भार उतारने के लिये मनुष्य-रूप में जन्म लूँगा।

इतना कहकर राम अपने बाल-स्वभाव के अनुसार रोने लगे। दशरथ के घर राम-जन्म का उत्सव मनाया गया, अपार धन ब्राह्मणों को दान दिया गया। इसके बाद क्रम से भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न पैदा हुए। राम-जन्म के उत्सव को सभी देवताओं ने विमानों पर चढ़कर देखा।

'अद्भुत रामायण' में वर्णित राम-जन्म की कथा भी कुछ भिन्नता लिये हुए है। अद्भुतोत्तर काण्ड के रचयिता महर्षि वाल्मीकि भरद्वाज मुनि को राम-जन्म की कथा सुनाने लगे।

भगवान् के वरदान स्वरूप इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रिशंकु की रानी के अम्बरीष-जैसा धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भगवान् का अनन्य भक्त था। उसके श्रीमती नाम की सब लक्षणों से पूर्ण अति रूपवती कन्या उत्पन्न हुई; कुछ समय उपरान्त नारद जी और पर्वत ऋषि राजा के घर आये। महातेजस्वी अम्बरीष ने उनका पूजन किया। उस कन्या को देखकर नारद का मन उसकी तरफ आकर्षित हो गया। उन्होंने राजा से उस कन्या के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इसी प्रकार पर्वत ऋषि ने भी राजा से कहा। राजा ने अतिनम्र होकर दोनों से कहा—आप दोनों में से यह कन्या जिसको वरण कर ले उसे ही मैं यह कन्या दे दूँगा।

इसके बाद नारद ब्रह्मलोक में गये। वहाँ उन्होंने विष्णु भगवान् से विनय की—हे भगवान्, पर्वत का रूप वानर-जैसा कर दीजिये लेकिन उसे राजा अम्बरीष की कन्या के सिवा कोई न देख सके।

भगवान् ने 'तथास्तु' कहकर नारद को विदा किया।

इसके बाद पर्वत ऋषि भी भगवान् के पास आये। वे भी विष्णु के अनन्य भक्त थे। उन्होंने माँगा—हे भगवान्। नारद का मुख गोलांगूल-जैसा कर दीजिये लेकिन उसे राजा की कन्या के सिवा और कोई न देख पाये।

भगवान् ने उन्हें भी 'तथास्तु' कहकर विदा कर दिया।

उधर अयोध्यापुरी की सजावट हो रही थी। राजा की सभा में अनेक राजा आये थे, उसी समय नारद जी पर्वत ऋषि को साथ लेकर उस स्थान पर आये। इनका उचित सम्मान कर राजा ने अपनी कुमारी कन्या से कहा—इन दोनों में जिसे चाहो मन से वरण करो, उसी को यथाविधि प्रणाम कर यह माला पहनाओ।

श्रीमती ने कहा—ये दोनो तो वानर के-से मुख के हैं, इनके बीच में सोलह वर्ष का युवक है जो सम्पूर्ण गहनों से युक्त अलसी के फूल के समान, दीर्घ बाहु, विशाल नेत्र, ऊँचा श्रेष्ठ उरस्थल, सुवर्ण के समान तेज वाले दो वस्त्रों से शोभित, विभक्त त्रिवली से युक्त नाभि, प्रकट कृश उदर वाला, सुवर्ण के गहनों से युक्त, सुन्दर नख, कमल के से हाथ; कमल मुख, कमल लोचन, कमल के-से चरण, कमल हृदय पद्मनाभ, लक्ष्मी से युक्त, चमेली की कली के समान दंत-पंक्ति से शोभित मुझे देखकर मुस्करा रहा है और अपना दायाँ हाथ फैलाये हुए है।

कन्या ने उसी युवक को माला पहना दी। इसके बाद अत्यंत लज्जित होकर नारद और पर्वत भगवान् विष्णु के पास गये और पूछने लगे कि वह दो हाथों वाला, धनुष-बाण धारण किये हुए कौन था जो कन्या को ले आया है। भगवान् ने कहा, हे मुनि श्रेष्ठो! मैं तो चार भुजा वाला हूँ, मैं वहाँ नहीं था। इस पर नारद ने राजा अम्बरीष को शाप दिया कि उसका सारा ज्ञान नष्ट हो जाये। लेकिन भगवान् ने उस अज्ञान के अन्धकार को नष्ट कर दिया। नारद को जब यह मालूम

हुआ कि यह विष्णु की ही माया है और उन्होंने ही कन्या का हरण किया है तो नारद ने विष्णु को शाप दिया—हे विष्णु, आपने छल से श्रीमती का हरण किया है इसलिये जिस मूर्ति से आप उत्पन्न हुए हो उसी मूर्ति से अम्बरीष के कुल में राजा दशरथ के यहाँ तुम पुत्र-रूप से जन्म लो और यह श्रीमती धरणी की पुत्री होगी, विदेह राजा इसका पालन करेंगे। कोई राक्षसों में नीच वहाँ तुम्हारी स्त्री का हरण करेगा जिस प्रकार तुमने राक्षस-धर्म से श्रीमती का हरण किया है। जिस प्रकार हम दोनों को श्रीमती के कारण महादुःख हुआ है इसी प्रकार तुम भी वन में हाहाकार करते फिरोगे।

ऐसा कहने पर जनार्दन कहने लगे—अम्बरीष के वंश में अवश्य ही श्रीमान धर्मात्मा दशरथ राजा होंगे, उनके यहाँ बड़ा पुत्र राम नाम वाला मैं हूँगा, वहाँ भरत जी मेरी दक्षिण भुजा होंगे, शत्रुघ्न बाईं भुजा और शेष लक्ष्मण जी होंगे।

इस प्रकार नारद के शाप के कारण, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

'पद्मपुराण' के उत्तर खण्ड में भी राम-जन्म का प्रसंग है। यह उपरिलिखित प्रसंगों से कुछ भिन्न है। इसमें श्रीमहादेव जी पार्वती से राम-जन्म की कथा कहते हैं।

पूर्वकाल की बात है, स्वायम्भुव मनु शुभ एवम् निर्मल तीर्थ नैमिषारण्य में गोमती नदी के तट पर द्वादशाक्षर महामन्त्र का जाप करते थे। उन्होंने एक हजार वर्षों तक भगवान् का पूजन किया। अन्त में भगवान् प्रसन्न होकर प्रकट हुए, उन्होंने कहा—राजन्, मुझसे वर मांगो। तब स्वायम्भुव मनु ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—अच्युत देवेश्वर, आप तीन जन्मों तक मेरे पुत्र हों। मैं पुत्रभाव से आप पुरुषोत्तम का भजन करना चाहता हूँ।

उनके ऐसा कहने पर भगवान् लक्ष्मीपति बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम्हारे मन में जो अभिलाषा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। जगत् के पालन तथा धर्म की रक्षा का प्रयोजन उपस्थित होने पर मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा। वही स्वायम्भुव मनु रघुवंश के राजा दशरथ हुए और उनके यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

इसके अलावा ब्रह्मा का रावण को वरदान देना, देवताओं का पीड़ित होकर विष्णु से प्रार्थना करना आदि सब कथा पूर्वकथा से साम्य रखती है लेकिन यहाँ राम के उसी चतुर्भुज रूप में पैदा होने पर कौशल्या के भीतर पुत्र-स्नेह जाग्रत नहीं हुआ; तब नेत्रों से आनन्द के आँसू बहाती हुई वह हाथ जोड़ कर बोली—देवदेवेश्वर! प्रभो! आपको पुत्ररूप में पाकर मैं धन्य हो गयी। जगन्नाथ! अब मुझ पर प्रसन्न होइये और बाल-सुलभ चरित्रों से मेरे भीतर पुत्र-स्नेह को जाग्रत कीजिये।

माता के ऐसा कहने पर सर्वव्यापक श्रीहरि माया से मानव-भाव तथा शिशु-

भाव को प्राप्त होकर रुदन करने लगे। माता ने अपना स्तन उनके मुँह में डाल दिया, वे दूध पीने लगे। 'पद्मपुराण' की कथा में पुत्रेष्टि-यज्ञ के यज्ञकुण्ड में भगवान् विष्णु स्वयं प्रकट होते हैं और राजा से वर माँगने को कहते हैं। तब राजा वर माँगते हैं—आप मेरे पुत्र-भाव को प्राप्त हों। भगवान् ने कहा—नृपश्रेष्ठ ! मैं देवलोक का हित, साधु पुरुषों की रक्षा, राक्षसों का वध, लोगों को मुक्ति प्रदान और धर्म की स्थापना के लिये तुम्हारे यहाँ अवतार लूँगा।

ऐसा कहकर श्रीहरि ने सोने के पात्र में रखी हुई दिव्य खीर जो लक्ष्मीजी के हाथ में मौजूद थी राजा को दी और स्वयं वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

'महाभारत' के वनपर्व में जो रामोपाख्यान है उसमें राम-जन्म की कथा अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें पृथ्वी राक्षसों से पीड़ित होकर गौ-का रूप धारण कर ब्रह्मा जी के पास नहीं जाती बल्कि सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि और सिद्ध लोग अग्निदेव को आगे करके ब्रह्मा की शरण में जाते हैं। अग्निदेव ब्रह्मा से कहते हैं—भगवान्, विश्रवा के बेटे रावण को आपके वरदान से कोई नहीं मार सकता। यह महाबली दुष्ट तरह-तरह के उत्पात रचकर प्रजा को सता रहा है। आपके सिवा कोई हम लोगों की रक्षा नहीं कर सकता।

ब्रह्मा कहते हैं—हे अग्नि ! देवता और दैत्य, कोई भी युद्ध करके रावण को हरा नहीं सकता। मैंने उस दुष्ट के दमन का उपाय पहले ही ठीक कर रखा है। मेरे कहने से योद्धाओं में श्रेष्ठ, चतुर्भुज विष्णु भगवान् मनुष्य शरीर से पृथ्वी पर अवतार लेंगे और वही रावण को मार कर तुम्हारी सहायता करेंगे।

उन्हीं विष्णु भगवान् ने इक्ष्वाकुवंशीय राजा अज के पुत्र राजा दशरथ के यहाँ पुत्र-रूप में जन्म लिया। राजा के यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे परम तेजस्वी पुत्र पैदा हुए।

'वाल्मीकीय रामायण' की कथा से इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है।

यह कथा मार्कण्डेय जी ने राजा युधिष्ठिर से कही थी जो बाद में वैशम्पायन जी ने राजा जनमेजय से कही।

'श्रीमद्भागवत' में तो पूरी रामकथा ही अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें भी राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न को भगवान् श्री हरि का अंशावतार माना है। इसमें श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित को कथा सुनाते हैं—हे राजा ! खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहु के परमयशस्वी पुत्र रघु हुए। रघु के अज और अज के पुत्र हुए महाराज दशरथ। देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परब्रह्म परमात्मा, भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। परीक्षित ! सीतापति भगवान् श्रीराम का

चरित्र तो तत्वदर्शी ऋषियों ने बहुत-कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है।

यह कहकर श्री शुकदेव जी आगे राम-कथा सुनाते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में राम-जन्म की कथा संकेत मात्र में है और उपर्युक्त कथाओं से साम्य रखती है। इसका आधार 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा ही है।

'विष्णुपुराण' के चतुर्थ अंश में जो राम-जन्म की कथा है वह ठीक उन्हीं शब्दों में है जैसी 'श्रीमद्भागवत' में ऊपर वर्णित है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'राम चरितमानस' में राम-जन्म के कई कारण कहे गये हैं:

राम-जन्म का मूल आधार भगवान् शिव पार्वती जी से कहते हैं—हे सुमुखि ! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और नीच अभिमानी राक्षस बढ़ जाते हैं और वे ऐसा अन्याय करते हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्राह्मण, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं। वे असुरों को मारकर देवताओं को स्थापित करते हैं, अपने वेदों की मर्यादा की रक्षा करते हैं और जगत् में अपना निर्मल यश फैलाते हैं। श्री रामचन्द्र जी के अवतार लेने का यही कारण है।

भगवान् के अवतार का यह दृष्टिकोण 'श्रीमद्भगवद् गीता' से लिया मालूम होता है।

कृष्ण रणस्थल में अर्जुन के उद्विग्न हृदय को सांत्वना देते हुए कहते हैं:

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

'रामचरित मानस' के बालकाण्ड में राम-जन्म का एक कारण मुनि याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज ऋषि को सुनाया है:

एक कल्प में सब देवताओं को जलन्धर दैत्य से युद्ध में हार जाने के कारण दुःखी देखकर शिवजी ने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया; पर वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था। उस दैत्यराज की स्त्री परम सती थी। उसी के प्रताप से त्रिपुरासुर जैसे अजेय शत्रु का विनाश करने वाले शिवजी भी उस दैत्य को नहीं जीत सके। प्रभु ने छल से उस स्त्री का व्रत-भंग कर देवताओं का काम किया। जब उस स्त्री ने यह भेद जाना तब उसने क्रोध करके भगवान् को शाप दिया। लीलाओं के भण्डार कृपालु हरि ने उस स्त्री के शाप को प्रामाण्य दिया। एक जन्म का कारण यह था जिससे श्री रामचन्द्र जी ने मनुष्य-देह धारण किया।

बालकाण्ड में ही राम-जन्म की दूसरी कथा वर्णित है।

शिवजी पार्वती जी से कहते हैं :

एक बार महर्षि नारद ने भगवान् विष्णु को शाप दिया था, उसी कारण उन्हें राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में जन्म लेना पड़ा।

पार्वती ने विष्णु के अनन्य भक्त नारद के इस कार्य पर आश्चर्य प्रकट किया। तब शिवजी ने विस्तार से कथा कही।

एक बार महर्षि नारद ने वन में घोर तप किया। उनके तप से भयभीत होकर देवताओं के राजा इन्द्र ने कामदेव की सहायता से उनके तप को भंग करने का प्रयत्न किया लेकिन महर्षि अपने तप से नहीं डिगे। तपस्या समाप्त कर नारद जी ब्रह्मलोक में भगवान् विष्णु के पास गये। अपनी तपस्या के सफल होने के कारण उनके मन में अहंकार हो गया था। भगवान् विष्णु ने उनके मन के गर्व को दूर करने के लिये अपनी माया से धनधान्य से पूर्ण एक अत्यन्त सुन्दर नगर की रचना की। उस नगर का राजा शीलनिधि था जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेना के समूह थे। उसके विश्वमोहिनी नाम की अत्यन्त रूपवती कन्या थी।

उस कन्या का स्वयंवर हुआ। अनेक देशों के राजा वहाँ आये। उसी समय महर्षि नारद भी वहाँ आये। राजा ने अपनी पुत्री को सामने करके महर्षि से पूछा—हे नाथ, आप अपने हृदय में विचार कर इसके गुण-दोष कहिये।

नारद उस कन्या को देख कर मोहित हो गये। और वह उपाय सोचने लगे जिसमें वह कन्या उन्हें वरण करे। उन्होंने विष्णु भगवान् का ध्यान किया। विष्णु वहीं आ गये। नारद जी ने अपना मंतव्य उनके सामने प्रकट कर दिया और कहा :

हे देव! आप अपना रूप मुझे दे दीजिये जिससे वह कन्या मेरे साथ विवाह करने को राज़ी हो जाये।

विष्णु ने कहा—जिस तरह आपका परम हित होगा हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हे योगी मुनि! रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। इस प्रकार मैंने भी तुम्हारे हित की ठान ली है।

नारद विष्णु की इस गूढ़ बात को नहीं समझ सके। जब वे स्वयंवर में अपने आसन पर स्थित हुए तो उनका मुँह बन्दर के समान हो गया. जिस पर सभी हँसने लगे। उनका ऐसा भयानक रूप देख कर राजकुमारी ने उधर मुड़ कर भी नहीं देखा। उसी समय भगवान् विष्णु राजकुमार का वेश बना कर वहाँ पहुँच गये उन्हें उस राजकुमारी ने माला पहना दी।

जब नारद को विष्णु की इस चाल का ज्ञान हुआ तो वे क्रोधित हुए और भगवान् कमलापति के पास जाकर उनसे बुरा-भला कहने लगे। अन्त में उन्हें शाप दिया कि जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है तुम भी वही शरीर धारण

करो। तुमने हमारा रूप बन्दर का-सा बना दिया है इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे और तुम भी एक समय स्त्री के वियोग में दुखी होंगे।

इसी शाप के कारण भगवान् विष्णु ने राजा दशरथ के यहाँ मनुष्य-रूप में जन्म लिया।

उपर्युक्त कथा 'अद्भुत रामायण' की कथा से बहुत साम्य रखती है लेकिन कई स्थानों पर इसमें अन्तर है। 'अद्भुत रामायण' में राजा का नाम अम्बरीष है और उसकी कन्या का नाम श्रीमती है। राजा का नगर भी माया से निर्मित नहीं है। 'मानस' की कथा में पर्वत ऋषि का नाम तक नहीं आता जिनके कारण यह विवाद बढ़ा और नारद का मुख वानर का तथा पर्वत का मुख गोलांगूल का हुआ। शेष सारा प्रसंग वही है।

अब फिर शिवजी पार्वती से राम-जन्म का दूसरा कारण कहने लगे :

हे गिरिराज कुमारी! एक बार स्वायम्भुव मनु और उनकी स्त्री शतरूपा ने वन में जाकर घोर तप किया और यह अभिलाषा की कि भगवान् के दर्शन हों। छः हजार वर्ष तो उन्हें जल का आहार करते बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे वायु के आधार पर रहे। दस हजार वर्ष तक उन्होंने वायु का आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। इसी बीच आकाशवाणी हुई 'वर माँगो'। मनु ने भगवान् के साक्षात दर्शनों की अभिलाषा की। सर्वसमर्थ भगवान् प्रकट हो गये। उनकी शोभा अवर्णनीय थी। भगवान ने उनसे कहा 'वर माँगो'। तब मनु ने संकोच छोड़कर कहा—हे दानियों के शिरोमणि, हे नाथ! मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ।

राजा की प्रीति देखकर भगवान् बोले—तथास्तु। शतरूपा के मन के भाव को समझकर वे कहने लगे—हे रानी! तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट नहीं होगा।

वही स्वायम्भुव मनु अयोध्या के राजा दशरथ हुए और शतरूपा उनकी स्त्री कौशल्या हुईं, उनके राम पैदा हुए।

यही कथा संक्षेप में 'पद्मपुराण' के उत्तर खण्ड में वर्णित है, लेकिन उसमें मनु के साथ शतरूपा का नाम नहीं आता।

इसके बाद 'मानस' में राम-जन्म का एक कारण और बताया है। उसमें वही कथा है जो 'अध्यात्म रामायण' के बालकाण्ड में है। पृथ्वी का गौ-रूप धारण करके महर्षि, देवताओं के साथ विष्णु की शरण में जाना, उनका वरदान देना आदि।

एक अन्तर अवश्य है। ऊपर लिखे वृत्तान्त के अनुसार मनु और शतरूपा दशरथ और कौशल्या का जन्म लेते हैं लेकिन यहाँ कश्यप और अदिति के तप के फलस्वरूप भगवान ने उन्हें वरदान दे दिया था कि वे उनके यहाँ अयोध्या में मनुष्य-रूप में जन्म लेंगे।

इसके बाद पुत्रेष्टि यज्ञ, अग्नि देवता का प्रकट होकर खीर देना, रानियों का उसे खाकर गर्भ धारण करना; राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न का जन्म होना सब वही कथा है जो वाल्मीकीय और 'अध्यात्म रामायण' में वर्णित है। राम का पैदा होते ही चतुर्भुज रूप में प्रकट होना, फिर बालस्वरूप में आना सब वही कथा है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अनेक स्थानों से खोज कर रामजन्म की कथाओं को अपने 'रामचरित मानस' में इकट्ठा किया है। वे महापण्डित थे, उन्होंने नाना पुराण, निगम-आगम पढ़े थे।

'सूरसागर' के नवम स्कंध में रामावतार की कथा में राम-जन्म की विशेष कथा नहीं है। महात्मा सूरदास ने तो केवल इतना ही कह दिया है :

> जय अरु विजय पारषद दोई। विप्र सराप असुर भये सोई॥
> एक बराह रूप धरि मार्‍यौ। इक नरसिंह रूप संहार्‍यौ॥
> रावन-कुम्भकरन सोइ भये। राम जनम तिनके हित लये॥

राम के स्वरूप तथा उनके जन्म का ऊपर लिखित दृष्टिकोण हमें प्रायः ब्राह्मण-ग्रंथों से प्राप्त होता है, जहाँ राम को भगवान् का अवतार मान कर उनके जन्म के सम्बन्ध में अलौकिक कल्पना की गई है लेकिन संतुलित तुलनात्मक अध्ययन के लिये हमें अन्य संप्रदायों के दृष्टिकोणों को भी इस विषय पर देखना चाहिये। जहाँ तक हमारी पहुँच हो पाई है वहाँ तक हमने इस प्रकार के तथ्य एकत्रित करने का प्रयत्न किया है।

'जैन पद्म-पुराण' में राम-कथा अति विस्तार के साथ मिलती है लेकिन वह उपक्रम से नहीं है जैसी 'वाल्मीकीय रामायण' या 'मानस' में है। कथावस्तु में भी कई स्थानों पर बहुत अन्तर मिलता है। राम-जन्म के बारे में जैन स्रोत कहते हैं :

एक समय अति रूपवती कौशल्या रानी महासुन्दर सेज पर सो रही थी। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा। इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान एक अत्यन्त उज्ज्वल हाथी, महाकेसरी सिंह, सूर्य तथा सर्वकला पूर्ण चन्द्रमा उसे स्वप्न में दीखे। प्रभात समय के वाद्य और मंगल शब्द सुनकर जब वह सेज पर से उठी तो इस स्वप्न को याद कर उसके मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ। प्रभात क्रिया से निवृत हो मन में अत्यन्त हर्षित होती वह राजा के पास गई। राजा ने जब उसको अति प्रसन्नवदन देखा तो वह उसका कारण पूछने लगा।

रानी ने अपने महा मनोहर स्वप्न का सारा वृत्तान्त राजा से कह सुनाया। यह सुनकर परम विज्ञानी राजा स्वप्न का फल कहने लगा।

हे कान्ते! तेरे परम आश्चर्यकारी, मोक्षगामी, अन्तर और बाह्य शत्रुओं का जीतने वाला अति पराक्रमी एक पुत्र पैदा होगा।

यह सुनकर रानी अपने मन में अत्यंत प्रफुल्लित होती हुई अपने स्थान को चली गई। उन्होंने राजा और छोटी रानी कैकेयी के साथ श्री जिनेन्द्र के चैत्यालय में भाव-संयुक्त पूजा कराई जिससे भगवान् की पूजा के प्रभाव से राजा का सर्व उद्वेग मिट जाय और उसके चित्त को महाशान्ति मिले।

इसके पश्चात् रानी कौशल्या के श्रीराम का जन्म हुआ। उगते सूर्य के समान राम का वर्ण था, कमल के समान इसके नेत्र थे और उसका वक्षस्थल ऐसा मालूम होता था मानो लक्ष्मी से आलिंगित हो इसलिये माता-पिता और सर्व कुटुम्ब वालों ने इनका नाम पद्म रखा।

इसके पश्चात् अति रूपवती, रानी सुमित्रा को भी एक शुभ स्वप्न दीखा। उसने देखा कि लक्ष्मी और कीर्ति एक बड़े केहरीसिंह को आदर से सुन्दर जल से भरे और कमल से ढके कलश से स्नान करा रही हैं। वह स्वयं बड़े पहाड़ की चोटी पर बैठी है और समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को देख रही है। उसने अति देदीप्यमान किरणों के समूह और सूर्य्य और नाना प्रकार के रत्नों से मंडित चक्र देखे।

यह स्वप्न देखकर प्रभात के मंगल शब्द होते ही वह अत्यन्त आश्चर्य में भरी अपनी सेज से उठी और पति के पास जाकर अति विनय-संयुक्त हो स्वप्न का वृतान्त कहने लगी।

राजा ने उस स्वप्न का फल कहा :

हे वरानने ! अति सुन्दर वदन वाला, शत्रुओं के समूह का नाश करने वाला महा तेजस्वी पुत्र तेरे पैदा होगा।

यह सुनकर वह पतिव्रता अपने मन में फूली हुई अपने स्थान को चली गई और उसके परम ज्योतिधारी पुत्र पैदा हुआ। वह इंदीवर कमल के समान श्यामसुन्दर और कांतिरूप जल के प्रवाह के समान भले लक्षणों को धारण किये था इसीलिये माता-पिता ने इसका नाम लक्ष्मण रखा। जिस दिन लक्ष्मण का जन्म हुआ उस दिन रावण की नगरी में हजारों उत्पात होने लगे और हितुओं के नगर में शुभ शकुन होने लगे।

इसके बाद कैकेयी के दिव्य रूप धारण करने वाला, महाभाग्यशाली प्रसिद्ध भरत नाम का पुत्र पैदा हुआ और राजा की चौथी रानी सुप्रभा के सर्व लोकों के जीतने वाला शत्रुघ्न नामक पुत्र पैदा हुआ।

इनमें रामचन्द्र का नाम पद्म तथा बलदेव और लक्ष्मण का नाम हरि, वासुदेव और अर्द्धचक्री भी प्रसिद्ध हुआ।

(जैन पद्मपुराण, पच्चीसवाँ पर्व)

उपरिलिखित 'जैन पद्म पुराण' के वर्णन से यह मालूम होता है कि राजा दशरथ के चार रानियाँ थीं—कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा। राम-कथा

सम्बन्धी अन्य ग्रंथों में पहली तीन ही रानियों का नाम उल्लिखित है। इनमें रानी सुमित्रा के ही लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक पुत्र पैदा हुए। इसके अलावा एक विचित्र बात और मिलती है कि लक्ष्मण के पैदा होने के बाद रानी कैकेयी ने भरत को जन्म दिया जब कि ब्राह्मण-ग्रंथों के अनुसार भरत लक्ष्मण के बड़े भ्राता हैं।

एक बात यहाँ और विचारणीय है, अन्य ग्रंथों में राम को परमात्मा का सगुण अवतार माना गया है लेकिन 'जैन पद्मपुराण' में गौतम स्वामी श्रेणिक से कहते हैं :

हे श्रेणिक ! अब श्री रामचन्द्र की उत्पत्ति सुन। वे रामचन्द्र कैसे हैं ? वे *महा उदार, प्रजा के दुख हरने वाले, महा न्यायवन्त, महा धर्मवंत, महाविवेकी, महा-*शूरवीर, महाज्ञानी, इक्ष्वाकु-वंश के उद्योत कर्णधार बड़े सत्पुरुष हैं।

(जैन पद्म पुराण, चौबीसवाँ पर्व)

उपरलिखित दृष्टान्त के अनुसार जैन श्रावकों ने राम को सर्वगुण सम्पन्न एक महापुरुष ही माना है लेकिन निम्न उद्धरण से मालूम होता है कि ब्राह्मण-ग्रंथों के राम के अवतारवाद की कल्पना का भी उन पर प्रभाव पड़ा है और राम के सौंदर्य का वर्णन करते हुए गौतम स्वामी कहते हैं :

वे राम कैसे हैं ? जिनका वक्षस्थल लक्ष्मी (अर्थात् विष्णु की स्त्री) से आलि-*गित है।*　　　　(जैन पद्म पुराण २५ वाँ पर्व)

इससे राम का विष्णु के अवतार-रूप में प्रकट होने का संकेत मिलता है।

जन्म से धनुष-यज्ञ तक

बाल-क्रीड़ा

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म के पश्चात् यथाविधि उनके नामकरण, यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए। 'वाल्मीकीय रामायण' में राजकुमारों की बाल-क्रीड़ा का उल्लेख कहीं नहीं है, आश्चर्य होता है कि वाल्मीकि-जैसा सरस कवि राम के जीवन के इस कोमल पक्ष को छोड़कर आगे बढ़ गया। इसका कारण यही हो सकता है कि वाल्मीकि ने राम के वीर-रूप को ही अधिक महत्व दिया है और इसीलिये उन्होंने अपने काव्य को 'पौलस्त्य-वध' ही नाम दिया। फिर यह भी तो ठीक से नहीं कहा जा सकता कि आदि काण्ड का कितना अंश प्रक्षिप्त है और कितना स्वयं कवि द्वारा रचित है। कुछ भी हो यह चरित्र-चित्रण में एक अभाव ही कहा जा सकता है जिसको गोस्वामी तुलसीदास ने पूरा किया है।

'अध्यात्म रामायण' मे कुछ श्लोकों में राम की बाल-लीला का वर्णन है। जहाँ तक कथाकार की सीमायें हैं वहाँ तक उसने राम की बाल-क्रीड़ाओं की सरस अभिव्यंजना की है। कथाकार मूल में अध्यात्मवादी है और वह यह कभी नहीं भूलता कि यह सब भगवान् की माया है, इसके अलावा कुछ नहीं है। बीच-बीच में लीला से मुग्ध होकर वह कौशल्या को इसकी याद भी दिला देता है। इससे स्वाभाविक चित्रण में कुछ दोष आ जाता है।

जिस प्रकार बालकाण्ड में वर्णित है :

रामचन्द्र की इन्द्र-नीलमणि के तुल्य कान्ति है, मुखारविन्द मे छोटे-छोटे दाँत है। कौशल्या के आँगन मे गौओं के बछड़ों के चारों तरफ वे घुटुरुओं चल रहे हैं। ऐसे रामचन्द्र को देख राजा दशरथ उन्हे अपने साथ खाना खाने के लिये बुलाते हैं। वे खेलते ही रहे, जब कौशल्या उन्हें बुलाने गई तो वे भागने लगे। जिस राम को योगियों का मन भी पकड़ने में समर्थ नहीं होता है, उनको पकड़ने को कौशल्या भाग रही हैं। वे उनके हाथ नहीं आते हैं और फिर अपने आप ही राजा की थाली के पास आकर बैठ जाते हैं और ग्रास उठाकर फिर भाग जाते हैं।

'अद्भुत रामायण' में राम के जीवन की जड़ भी मिलती ही नहीं है। उसमें तो राम जन्म का कारण बता कर फिर सीता के जन्म का रहस्य बताया गया है और कथा को अद्भुत ढंग से सीधा मोड़ दिया गया है।

'पद्मपुराण' में बाल-लीला का वर्णन नहीं मिलता। इसी प्रकार 'महाभारत' रामोपाख्यान में बाल-लीला के लिये एक भी शब्द नहीं है। उसमें तो कथा को सीधा राम-जन्म से लेकर वनगमन के प्रसंग से जा मिलाया है।

'श्रीमद्भागवत' की रामकथा में भी राम के बाल-जीवन का वर्णन नहीं मिलता है। कथावाचक कलाकार के पास इस छोटे-से प्रसंग में इतना स्थान नहीं है।

'विष्णु पुराण' के चतुर्थ अंश में वर्णित रामचरित में बाल-लीला का वर्णन नहीं है।

राम के बाल-जीवन का विशद सरस वर्णन गोस्वामीजी के 'रामचरित-मानस' में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। राम के जन्म लेने की घड़ी से ही गोस्वामीजी के मानस से करुणा की धारा कल्लोल करती हुई बह निकलती है।

बालकाण्ड में वे कहते हैं :

सो अवसर विरंच जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना ॥
गगन विमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा ॥
बरसहिं सुमन सुअंजुलि साजी। गगहहिं गगन दुंदुभि बाजी ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुविधि लावहिं निज निज सेवा ॥

बच्चे के रोने की प्यारी ध्वनि को सुनकर सब रानियाँ उतावली होकर दौड़ी चली आईं। दासियाँ हर्षित होकर जहाँ-तहाँ दौड़ीं। सारे पुरवासी आनन्द में मग्न हो गये।

राजा दशरथ भी पुत्र-जन्म की बात सुनकर मानो ब्रह्मानन्द में समा गये, मन में अतिशय प्रेम लिये उनके शरीर का रोम-रोम पुलकित हो गया।

इसके बाद अनेक संस्कार हुए, ब्राह्मणों को सोना, गौ, वस्त्र और मणि का दान दिया गया। अनेक उत्सव मनाये गये। राम-जन्म के समय जो उत्सव राज भवन में मनाया जा रहा था उसे देखकर सूर्य भी अपनी चाल भूल गये :

मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ ॥

तुलसीदास जी ने राजकुमारों के बालस्वरूप का भी अत्यंत स्वाभाविक वर्णन किया है।

काम कोटि छवि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥
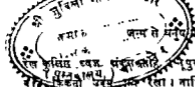
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गम्भीर जान जेहि देखा ॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा ॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥
सुन्दर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला ॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु संवारे ॥
पीत झँगुलिआ तनु पहराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई ॥
रूप सकहि नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा ॥
(मानस बालकाण्ड)

यह राम का वह मनोहर बाल-रूप है जिस पर राजा दशरथ और कौशल्या मन-ही-मन मुग्ध हो रहे हैं। बालरूप का यह सजीव चित्रण उपरिलिखित रामायणों में कहीं नहीं है।

राम की बाल-क्रीड़ाओं का भी वर्णन 'रामचरित मानस' में मन को लुभाने वाला है। भोजन करने का समय आता है तो राजा दशरथ राम को बुलाते हैं, उस दृश्य का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं :

धूसर धूरि भरें तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये ॥
भोजन करत चपलचित, इतउत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥

इसी प्रकार की रामचन्द्र जी की बहुत ही सरल और सुन्दर बाल-लीलाओं का सरस्वती, शिवजी और वेदों ने गान किया है।

इसके बाद जैसे-जैसे राम किशोर अवस्था को प्राप्त हुए तब भी उनकी शोभा का वर्णन करने के लिये तुलसी की लेखनी शिथिल नहीं हुई है। लेकिन इन सब में भी तुलसी की एक मर्यादा है, उनका एक बन्धन है जो उन्हें काव्य की विशाल भूमि में स्वच्छंद गति से विचरण करने से रोकता है, वह है राम का दिव्यरूप। इसकी चेतना उन्हें हर समय रहती है और इसलिये वे अपने रामायण के पात्रों को भी समय-समय पर उसकी याद दिलाते रहते हैं; जिससे कहीं मायावश यह न भूल जायें कि राम जो मनुष्यगत लीला कर रहे हैं; परब्रह्म परमात्मा ही हैं।

कौशल्या जब राम की बाल-क्रीड़ाओं में आनन्द से विभोर हो जाती हैं उसी समय गोस्वामीजी उन्हें राम का वह अद्भुत रूप दिखलाते हैं जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

कौशल्या ने देखा :

अगनित रवि ससि शिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोइ देखा जो सुना न काऊ ॥

इसी तरह की बलवती माया को देखकर कौशल्या अत्यंत भयभीत हो हाथ जोड़ कर खड़ी रही । उसने पहले उस जीव को देखा जिसे वह माया नचाती है और फिर भक्ति को देखा जो उस जीव को छुड़ा देती है । यही तो उद्देश्य है गोस्वामी जी का कि राम के साथ जितने भी मानव-सम्बन्ध हैं वे सब माया के रूप हैं और राम तो इस सब के परे परमात्मा स्वरूप हैं, उनकी भक्ति ही संसार से पार लगाने वाली है ।

'सूरसागर' के रचयिता महात्मा सूरदास ने तो रामावतार की संक्षिप्त कथा होने पर भी राम की बाल-क्रीड़ाओं का सुन्दर वर्णन किया है । जो सूरदास कृष्ण के बाल-रूप का वर्णन करते हुए अपने को भी भूल जाते थे वे राम के जीवन के इस सरसपक्ष को कैसे भुला सकते थे । राम को त्राणकर्ता भगवान् के अवतार-रूप में ही सूरदास ने लिया है लेकिन गोस्वामीजी के से बन्धन उनके नहीं हैं ।

राम का जन्मोत्सव-वर्णन करते हुए सूरदास लिखते हैं :

अयोध्या बाजति आजु बधाई
गर्भ मुच्यौ कौशल्या माता, रामचन्द्र निधि आई ।
गावैं सखी परसपर मंगल, रिषि अभिसेक कराई ॥
भीर भई दशरथ के आँगन, सामवेद धुनि छाई ।
पूछत रिषहिं अजोध्या को पति, कहियै जनम गुसाई ।
भौमवार, नौमी तिथि नीकी, चौदह भुवन बड़ाई ।
चारि पुत्र दशरथ के उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई ।
सदा सर्वदा राज राम कौ, सूरदास तहँ पाई ।
(सूरसागर, पहला खण्ड, पृष्ठ १५२)

राम-जन्म के समाचार फैलते ही देश-देश से टीके आने लगे । घर-घर बधाई होने लगी । जब चारों राजकुमार राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुछ बड़े हुए तो घर के आँगन में खेलने लगे । सूरदास जी लिखते हैं :

करतल सोभित बान धनुहियाँ
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ ।
दशरथ कौशल्या के आगें, लसत सुमन की छहियाँ ।
मानो चारि हंस सरवर तें, बैठे आइ सदेहियाँ ।
(सू० सा०, प० ख०, पृ० १५२)

इस अद्‌भुत दृश्य को देखकर तो सूरदास जी आनन्द मे मग्न हो गये और उनके अन्तःकरण से यह पंक्ति निकली :

यह सुख तीनि लोक में नाहीं, जो पाये प्रभु पहियाँ।

इसके बाद जब वे राजकुमार किशोरावस्था को प्राप्त हुए तो उनके स्वरूप का सजीव चित्र सूरदास प्रस्तुत करते हैं :

धनुहिं-बान लए कर डोलत
चारौ बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत।
× × ×
कटि-तट पीत पिछौरी बाँधे, काकपच्छ धरे सीस।
सरक्रीड़ा दिन देखन आवत, नारद सुर तैंतीस।
सिव-मन सकुच, इन्द्र-मन आनंद, सुख दुःख बिधिहिं समान।
दिति दुर्बल अति, अदिति हृष्ट चित, देखि सूर संधान॥

(सू० सा०, पहला खण्ड, पृष्ठ १९३)

'सूर सागर' में कथा अति संक्षिप्त है इसलिये इतना ही वर्णन करके महात्मा सूरदास ने आगे कथा की शृंखला जोड़ दी है। उपरिलिखित अन्य ग्रंथों में जहाँ रामकथा संक्षेप में कही गई है राम के बाल-जीवन की अभिव्यक्ति नहीं के बराबर है। यद्यपि 'सूरसागर' की कथा 'श्रीमद्भागवत' से ही ली गई है और जो कथा शुकदेव जी ने राजा परीक्षत से कही थी वही सूरदास जी ने यहाँ वर्णित की है। सूरदास जी महान् कवि थे। वे बाल-जीवन की अति सुन्दर अनुभूति के फलस्वरूप राम की बाल-क्रीड़ाओं का रम्य वर्णन उपस्थित कर सके लेकिन भागवत के कथाकार व्यासजी ने अपनी कथा को ही अधिक प्रश्रय दिया और उनकी लेखनी राम के जीवन के इस पक्ष की ओर झाँकी तक नहीं।

'जैन पद्मपुराण' के पच्चीसवें पर्व में राम-जन्म की कथा है लेकिन उसके पश्चात् उनकी बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन नहीं है। जन्मोत्सव के सम्बन्ध में जो भी दान-दक्षिणायें दी गईं उनका ही उल्लेख है। यहाँ ब्राह्मणों को रत्न और स्वर्ण का दान नहीं मिलता है बल्कि कुछ याचकों को ही दान में धन मिला है। जैन-परम्पराओं मे ब्राह्मणों को अधिक महत्व नहीं मिला है इसलिये यहाँ भी इस तरह का वर्णन अत्यंत स्वाभाविक है।

ऋषि विश्वामित्र का आगमन

जब राम किशोरावस्था को प्राप्त हुए और विद्याध्ययन करने लगे तभी एक दिन ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ के पास आये। राजा ने महर्षि का शास्त्रानुसार स्वागत किया और कुशल पूछने के बाद कहा—हे महर्षि, आपके आने से ऐसा हर्ष हुआ जैसा

कि अमृत के मिलने से, वृक्ष को वर्षा से और अपुत्र को पुत्र पैदा होने से होता है। कहिये मैं आपका क्या काम करूँ।

ऋषि ने कहा—राजन् ! मैंने यज्ञ प्रारम्भ किया है। जब वह पूरा होने आता है तभी मारीच और सुबाहु राक्षस वेदी पर मांस और रुधिर फेंक देते हैं। मैं उन्हें शाप नहीं दे सकता क्योंकि इस यज्ञ में शाप देना उचित नहीं है। इसलिये यज्ञ की रक्षा के लिए आप अपने बड़े पुत्र रामचन्द्र को मुझे दे दीजिये। मैं इसके बदले में इनको बहुत सी उत्तम वस्तुएँ दूँगा। ये रामचन्द्र सब तरह समर्थ हैं, इन महात्मा सत्यवादी रामचन्द्र को मैं, वसिष्ठ ऋषि और सब ऋषि लोग जानते हैं। यदि आप यश चाहते हैं तो राम को दे दीजिये।

इस पर दशरथ का उत्तर विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। राजा अपने हृदय में अति चिन्तित होते हुए कहने लगे :

हे महर्षि ! मेरे राम अभी छोटी अवस्था के हैं और राक्षसों के साथ लड़ने में सर्वथा असमर्थ हैं। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी सेना लेकर आपके यज्ञ-रक्षार्थ चलूँ। ये तो अभी विद्या में भी कच्चे हैं और कुछ ऊँच-नीच भी नहीं जानते हैं। इनके पास अस्त्र बल भी नहीं है और न ये युद्ध में चतुर हैं। आप तो जानते हैं राक्षस लोग युद्ध में छल किया करते हैं अतः ये उनके साथ लड़ने में असमर्थ हैं। मैं राम के वियोग में क्षण-भर भी नहीं जी सकता। इसलिये हे मुनीश्वर, आप इन्हें न ले जाइये। देखिये, ६०००० वर्ष की आयु में मैंने बड़े क्लेश से इन्हें पाया है। चारों पुत्रों में मेरी सबसे अधिक प्रीति इन्हीं पर है।

यह सुनकर ऋषि विश्वामित्र कुछ चिन्तित हुए। राजा ने इस बार तो मना कर दिया और कहा :

हे मुनि ! ये सब राक्षस रावण के भेजे हुए हैं। मैं तो उस दुष्ट से युद्ध करने में समर्थ भी नहीं हूँ। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और नाग भी उसे पराजित नहीं कर सकते तब मनुष्य की क्या गिनती है, इसलिये हे ब्रह्मन् ! युद्ध न जानने वाले अपने बालक पुत्र को मैं नहीं दूँगा।

राजा के ये वचन सुनकर विश्वामित्र ऐसे जल उठे जैसे घी डालने से आग जलने लगती है। वे कहने लगे :

हे राजन् ! तू पहले कहकर अपनी बात लौटा रहा है।

ऋषि विश्वामित्र को इस तरह कुपित देखकर वसिष्ठ राजा से बोले :

! आप इक्ष्वाकु-कुल में साक्षात् धर्म-धुरन्धर और व्रत धारण करने

... न कीजिये। तीनों लोकों में यह विख्यात हो रहा है कि महा-

... आप धर्म के रक्षार्थ राम को दे दीजिये। जो कह कर

... यज्ञ के नाश करने का पाप लगता है। ये विश्वामित्र युद्ध-

विद्या में अति कुशल महावीर हैं। इनके साथ रामचन्द्र का कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। शिवजी ने स्वयं इन्हें अस्त्र-विद्या सिखलाई है।

इस प्रकार गुरु वसिष्ठ के बहुत समझाने पर राजा दशरथ रामचन्द्र जी को मुनि के साथ भेजने को राजी हो गये। उन्होंने राम-लक्ष्मण को बुलाया और उनका माथा सूँघकर विश्वामित्र ऋषि को सौंप दिया।

'अध्यात्म रामायण' में मूलरूप में कथा तो यही है लेकिन उसमें के रूप में अन्तर है, इसमें दूसरी तरह विषय को लिया है।

ऋषि विश्वामित्र राजा के यहाँ आये। क्यों ? क्योंकि उनको मालूम हो गया था, कि अपनी माया द्वारा परमात्मा ही श्रीराम रूप में प्रकट हुए हैं, उन्हीं का दर्शन करने के लिये ऋषि अयोध्या आये।

उनका यथाविधि स्वागत करने के बाद राजा ने उनका मंतव्य पूछा तो उन्होंने अपनी यज्ञ-रक्षार्थ राम को माँगा। ऋषि ने यह और कहा :

यदि तुमको किसी बात का संदेह हो, तो अपने गुरु वसिष्ठ से सलाह करके जो अच्छा समझ आये, तो राम को दे दीजिये।

यहाँ ऐसा मालूम होता है जैसे मानो ऋषि को यह तो मन में निश्चय था कि राम उनके साथ अवश्य जायेंगे लेकिन अपने मन में जो राम का स्वरूप है उसकी पुष्टि कराने के लिये ही उन्होंने वसिष्ठ को मध्यस्थ बनाया था।

राजा दशरथ ऋषि का मंतव्य सुनकर चिन्तित हो गये। उन्होंने एकान्त में वसिष्ठ जी से पूछा :

हे गुरु ! इस समय मैं क्या करूँ। राम को छोड़ने को तो मेरी इच्छा नहीं होती है क्योंकि बहुत हजार वर्षों के बाद मैंने इन्हें पाया है। ये मुझे सबसे प्यारे हैं, लेकिन यदि मैं ऋषि के वचनों को पूरा नहीं करूँगा तो, वे अवश्य शाप देंगे। आप ही बताइये मेरे कल्याण का मार्ग कौन सा है।

यहाँ राजा न तो विश्वामित्र के सामने खेद प्रकट करते हैं और न स्पष्ट शब्दों में राम को भेजने से मना करते हैं और न राक्षसों के भय से भयभीत होते हैं। वे तो इस कठिन परिस्थिति में एक दूरदर्शी धर्मात्मा राजा की तरह वसिष्ठ ऋषि से अपना कर्तव्य अथवा अपने कल्याण का मार्ग पूछते हैं। यहाँ दशरथ का वात्सल्य-प्रेम, राम-विछोह की कल्पना-मात्र से उनके हृदय की घबराहट आदि भाव अपनी स्वाभाविकता के साथ वर्णित नहीं।

इसके बाद गुरु वसिष्ठ राजा को किस तरह राम को भेजने पर राजी करते हैं यह प्रसंग तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वसिष्ठ राजा को उनके कल्याण का मार्ग बताते हुए कहते हैं :

हे राजन् ! जो देवताओं का गुप्त मत है वह मैं कहता हूँ। यह राम जो

तुम्हारे पुत्र हैं उन्हें मनुष्य न जानो यह साक्षात् परमात्मा प्रकट हुए हैं। जो नारायण प्रथम पृथ्वी के भार दूर करने को ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर इस लोक में आये हैं वे ही तुम्हारे घर में कौशल्या के पुत्र हुए हैं। तुम तो साक्षात् ब्रह्मा के पौत्र कश्यप प्रजापति हो और कौशल्या परम मता संयुक्त देवताओं की माता अदिति।

तुम दोनों बहुत वर्ष तक उग्र तप करते हुए विष्णु के ध्यान में तत्पर रहे। उन्हीं विष्णु ने प्रसन्न होकर तुम्हें यह वर दिया था कि मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पुत्र-रूप में पैदा हूँगा। वे ही नारायण तुम्हारे राम नाम वाले पुत्र हैं, लक्ष्मण शेष भगवान् हैं और भगवान् के आयुध शंख, चक्र भरत और शत्रुघ्न हैं और भगवान् की शक्ति योगमाया जनकनन्दिनी सीता हुई हैं और उन्हीं से रामचन्द्र जी का संयोग कराने के लिए ऋषि विश्वामित्र यहाँ आये हैं।

हे राजन् ! यह गुप्त रहस्य किसी के आगे कहने योग्य नहीं है इससे अब प्रसन्न-मन करके विश्वामित्र का पूजन करके लक्ष्मण सहित लक्ष्मीनाथ श्री रामचन्द्र जी को भेज दीजिए।

जब वसिष्ठ ने यह गुप्त रहस्य खोला तो राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने राम-लक्ष्मण को अति प्यार से गले लगाकर विदा कर दिया।

इस रहस्योद्घाटन से तो विश्वामित्र के आगमन का कारण राम और सीता का विवाह कराना मालूम होता है। यज्ञ की रक्षा तो एक बहाना-मात्र है, इसके बाद वसिष्ठ का तर्क-धर्म और कर्तव्य का पक्ष न लेते हुए राम के अलौकिक रूप की ही व्याख्यामात्र है। इसमें व्यक्ति के भावों का स्वाभाविक गति से उतार-चढ़ाव नहीं है बल्कि कथाकार के अपनी धारणाओं से निर्मित साँचे में सब कुछ ढाल देने का प्रयत्न किया गया है। कथाकार का उद्देश्य व्यक्ति-वैचित्र्य के माध्यम से कथा का विकास नहीं है बल्कि कथोपकथन द्वारा भक्तों के लिए कुछ स्तोत्र तैयार करना है, उसी की किसी अंश में पूर्ति इस उपरिलिखित प्रसंग में मिलती है। इस तरह की अलौकिक व्याख्या वाले दृष्टिकोण का कुछ अंश तक प्रभाव तो 'वाल्मीकीय रामायण' में भी इस प्रसंग में दृष्टिगत होता है। जब ऋषि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के निमित्त दशरथ के सामने राम की सामर्थ्य का वर्णन करते हैं तो कहते हैं :

हे राजा, ये रामचन्द्र सब तरह से समर्थ हैं, इन महात्मा सत्यवादी रामचन्द्र को तो मैं, वसिष्ठ और ये ऋषि लोग जानते हैं। यदि आप यश चाहते हैं तो राम को मेरे साथ भेज दीजिए।

यहाँ विश्वामित्र स्पष्ट रूप से राम की अलौकिक शक्ति की ओर इंगित करते हैं जिसे साधारण पुरुष माया के वश होकर नहीं देख पाते हैं, केवल इन जैसे वसिष्ठ या अन्य ऋषि अवश्य अपनी दिव्य दृष्टि से इस सामर्थ्य को जान सकते हैं। इसलिए

भगवान् स्वरूप ये राम क्या करने में समर्थ नहीं हैं—हे राजा, तू तो मुफ्त में यश का भागी बनेगा।

'अद्भुत रामायण' में विश्वामित्र के आने का कोई प्रसंग ही नहीं है।

'पद्मपुराण' के उत्तर-खंड में ऋषि विश्वामित्र के आगमन की कथा है। इसमें भी ऋषि यह जानकर कि लोकहित के लिए श्री हरि स्वयं रघुकुल में प्रकट हुए हैं, अपने यज्ञ-रक्षार्थ राम को राजा दशरथ से माँगने गये थे। जैसे ही महातपस्वी विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की पूर्ण सफलता के लिए रामचन्द्र के उनके साथ भेजने का प्रसंग छेड़ा तो सर्वज्ञों में श्रेष्ठ राजा दशरथ ने लक्ष्मण-सहित श्री राम को मुनि की सेवा में समर्पित कर दिया। ऋषि उन दोनों राजकुमारों को लेकर अपने आश्रम पर चले गये।

श्री रामचन्द्र के आने पर देवताओं को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान् के ऊपर फूल बरसाये और उनकी स्तुति की। इसी समय महाबली गरुड़ सब प्राणियों से अदृश्य होकर वहाँ आये और उन दोनों भाइयों को दो दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणों वाले दो तूणीर आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र देकर चले गये।

'पद्मपुराण' की कथा में तो राजा दशरथ राम को देने में तनिक भी संकोच नहीं करते, उन्हें अपने प्रियतम पुत्र के विछोह पर तनिक भी दुःख नहीं होता, ठीक भी है, यहाँ कथाकार ने राजा दशरथ को सर्वज्ञों में श्रेष्ठ माना है, भला उनसे क्या बात छिपी थी। जिस गुप्त रहस्य का उद्घाटन 'अध्यात्म रामायण' में वसिष्ठ करते हैं यहाँ पहले से ही राजा को मालूम है इसलिए साक्षात् भगवान् के अवतार राम-लक्ष्मण को लोकहित के लिए ऋषि को देने में उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा।

इसके बाद देवताओं और गरुड़ का प्रसंग इस कथा में नया है, वाल्मीकीय में तो कुछ-कुछ यह मिलता है, 'अध्यात्म रामायण' में यह नहीं मिलता है। कुछ भी हो यह सब राम के दिव्य-रूप की विभिन्न रूपों में कल्पना है और मूल कथावस्तु से इसका सम्बन्ध कम है।

'महाभारत' के वन-पर्व में जो रामोपाख्यान है उसमें ऋषि विश्वामित्र के आगमन की कथा नहीं है। उसमें राम-जन्म के बाद यह घटना ली ही नहीं गई है बल्कि इसके बाद तो युधिष्ठिर मार्कण्डेय जी से राम, लक्ष्मण और सीता के वन-गमन का कारण पूछने लगते हैं।

'श्रीमद्भागवत' में राम की लीलाओं का वर्णन है। इसमें राम-लक्ष्मण को ऋषि विश्वामित्र के साथ मारीच आदि राक्षसों को मारते हुए तो दिखाया गया है लेकिन ऋषि के दशरथ के यहाँ आकर राम को माँगने की घटना नहीं है।

'विष्णु पुराण' के चतुर्थांश में जो राम-चरित्र का वर्णन है उसमें भी श्री राम

का विश्वामित्र जी के साथ जाते हुए ही वर्णन है। विश्वामित्र के राजा के पास आने की घटना नहीं है।

'रामचरित मानस' में विश्वामित्र के आगमन की कथा यद्यपि अपना आध्यात्मिक रूप लिये हुए है लेकिन फिर भी इसमें व्यक्ति भावनाओं को अधिक प्रश्रय दिया गया है, 'अध्यात्म रामायण' की शंका-समाधान की प्रणाली को नहीं अपनाया गया है।

इसमें भी विश्वामित्र जी यह जानकर कि पृथ्वी का भार उतारने के लिये प्रभु ने जन्म ले लिया है, राजा दशरथ के पास अपने यज्ञ-रक्षार्थ राम को मांगने आये। इनका एक उद्देश्य भगवान् के चरणों का दर्शन करना भी था।

इसके बाद सारा 'वाल्मीकीय रामायण' जैसा है लेकिन यहाँ ऋषि विश्वामित्र राजा पर क्रोधित नहीं हुए। राजा अपने प्यारे राम को नहीं देना चाहते थे उन्होंने ऋषि से विनती करते हुए कहा :

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोइ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा ॥

राजा की इस बात को सुनकर ऋषि विश्वामित्र न तो चिन्तित हुए और न कुपित हुए बल्कि वे तो राजा के प्रेम-रस से सनी वाणी सुनकर सब कुछ भूल गये। उनकी स्थिति का वर्णन गोस्वामी जी ने किया है :

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी ॥
तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा ॥

जब वसिष्ठ ने राजा को धर्म और कल्याण की अनेक बातें समझाईं तो राजा ने अपने हृदय में प्रसन्न होते हुए बड़े आदर से दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर उन्हें बहुत प्रकार की शिक्षा दी और ऋषि से कहा :

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आनि नहिं कोऊ ॥

इसके बाद

सौंपे भूप रिषिहि, सुत, बहु बिधि देइ असीस
जननी भवन गए प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥

गोस्वामीजी के प्रसंग में विश्वामित्र कुपित क्यों नहीं हुए? क्योंकि वे तो भक्त-रूप में राम के दर्शन करने राजा दशरथ के यहाँ आये थे, वे जानते थे राजा दशरथ का राम के प्रति मोह माया का ही रूप है, राजा के इस लौकिक प्रेम को उन्होंने अलौकिक दृष्टि से देखा तभी तो वे राजा की प्रेम-रस में सनी वाणी

पर मुग्ध हो गये जबकि 'वाल्मीकीय रामायण' में इन्हीं शब्दों ने उन्हें चिढ़ा दिया था। गोस्वामीजी ने तो अपनी सारी कथा को भक्ति के माध्यम से ही लिया।

'सूरसागर' में तो केवल निम्न पद ही इस घटना पर प्रकाश डालता है :

दसरथ सौं रिसि आनि कह्यौ।

असुरनि सौं जप होन न पावत, राम लषन तव संग दयौ।

× × × ×

इसके बाद ताड़का वध तथा यज्ञ कराने का वर्णन आता है।

'जैन पद्मपुराण' में ऋषि विश्वामित्र का नाम ही नहीं मिलता। इसमें राक्षसों के द्वारा यज्ञ-विध्वंस आदि का वर्णन उस रूप में नहीं है जैसा अन्य रामायणों में है इसमें तो सीता के विवाह की पृष्ठभूमि के रूप में राजा जनक के राज्य में ही राक्षसों के उपद्रव का वर्णन है जिसे रामचन्द्र जी जाकर अपने अतुलित पराक्रम से दबाते हैं।

× × ×

इसके बाद ऋषि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को बला-अतिबला दो विद्याओं को सिखाया। उन्होंने कहा :

हे राम! इन विद्याओं के प्रभाव से न तुम्हारे रूप की हानि होगी, न सोते हुए और न प्रबुद्ध होने पर ही राक्षस लोग तुमको जीत सकेंगे। तुम्हारे बाहुबल को पृथ्वी में कोई न पावेगा और सौभाग्य, चतुराई, ज्ञान एवं बोलने में तुम्हारे बराबर कोई न निकलेगा। इन दोनों विद्याओं के पढ़ने से तुम्हारे समान तुम्ही दीखोगे। ये विद्या सारे ज्ञान की माता हैं। हे तात! तुमको भूख-प्यास भी कभी न सतावेगी और सारे संसार में तुम्हारा यश फैल जायेगा। ये दोनों विद्याएँ ब्रह्मा की पुत्री हैं। इनको तुम ग्रहण करो, ये विद्याएँ तपोबल वाली हैं। इसलिये ये अनेक फल देंगी।

मुनि की बात सुनकर जल से शरीर शुद्ध कर राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्र से उन विद्याओं का ग्रहण किया। उस समय विद्याओं को ग्रहण करते ही रामचन्द्र की ऐसी शोभा हुई जैसे शरत्काल के सूर्य की होती है।

इसके बाद राम ने ताड़का नामक राक्षसी का वध किया। इस पर प्रसन्न होकर ऋषि विश्वामित्र ने रामचन्द्र जी को प्रीति से अपने सब अस्त्रों को दिया और उनके चलाने की विधि बताई।

ये अस्त्र सुर, असुर, गन्धर्व और नाग इत्यादि शत्रुओं को वश में करके जीतने वाले थे।

इनके नाम 'वाल्मीकीय रामायण' आदि काण्ड के सत्ताइसवें सर्ग में ऋषि ने गिनाये हैं :

दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्रास्त्र, शैव, शूलवत,

कपालिर, ऐषीक, ब्रह्मास्त्र-मोदकी और शिखरी (ये गदायें), धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश-शुष्क और आर्द्र (ये वज्र), पैनाकास्त्र, नारायणास्त्र, आग्नेयास्त्र, शिखर नामक वायव्यास्त्र, हयशिरास्त्र, क्रौंचास्त्र, (दो शक्तियाँ) ,भयंकर कंकाल नामक मूसल, कापाल, किंकिणी (ये राक्षसों के वध के लिए हैं), वैद्याधरास्त्र, नन्दन, उत्तम खड्ग, गांधर्वास्त्र, मोहन प्रस्वापन, प्रशमन, संतापन, विलापन, पैशाचास्त्र आदि अनेकों अस्त्रों का उल्लेख मिलता है। उन सम्पूर्ण अस्त्रों के मन्त्र विश्वामित्र जी ने राम को सिखाये और वे स्वयं सब अस्त्रों को बुलाने के लिये कुछ जप करने लगे। उनके मन्त्र जाते ही सब अस्त्र आकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर रामचन्द्र से बोले—हे राघव, हम सब आपके किंकर हैं आप जो-जो काम हमसे चाहते हैं वे हम सब करेंगे। तब रामचन्द्र प्रसन्न हो उन सबको हाथ से छूकर बोले—तुम सब मेरे मन में बसो, अर्थात् जब मैं चाहूँ तब मेरे पास आकर मेरा काम किया करो।

इसके बाद मुनि ने इन अस्त्रों के संहारों की विधि भी बताई। फिर कृशाश्व के महातेजस्वी पुत्रों को राम को ग्रहण कराया। उनमें कोई काले धुँए के समान, कोई चन्द्र और कोई सूर्य के समान थे।

'अध्यात्म रामायण' में बला-अतिबला नामक विद्याओं का नाम मिलता है, रामचरित मानस में तो इतना ही कहा गया है :

तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्या निधि कहुँ बिद्या दीन्ही ॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥

इसके बाद ऋषि ने सब अस्त्र-शस्त्र राम को समर्पण किये। अस्त्र-शस्त्रों का नाम तो 'अध्यात्म रामायण' में और न 'रामचरित मानस' में लिया गया है। स्पष्ट है कि ये सारे अस्त्र अधिकतर प्राचीन काल में प्रयोग किये जाते थे। 'अध्यात्म रामायण' और 'मानस' बनने के समय इनका महत्व काफी कम हो चुका होगा इसीलिए कथाकार ने इन्हें अधिक महत्व नहीं दिया।

इसके अलावा 'महाभारत' के रामोपाख्यान, 'श्रीमद्भागवत' की रामकथा, 'पद्म पुराण' उत्तर खण्ड के राम-चरित्र-वर्णन तथा सूरसागर की रामावतार की कथा में कहीं उपर्युक्त प्रसंगों का वर्णन नहीं मिलता है।

रामकथा में इस प्रसंग का महत्व इसलिए अधिक है कि राम की अस्त्र-शस्त्र-शिक्षा वास्तव में ऋषि विश्वामित्र द्वारा ही हुई थी।

इसके बाद जितने समय तक रामचन्द्र और लक्ष्मण ऋषि के आश्रम में रहे, उनके साथ मिथिला आये उस बीच अनेक अन्तर्कथायें ऋषि ने उन्हें बताईं। उनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

× × ×

कुछ समय बाद ऋषि को राजा जनक के धनुष-यज्ञ का पता चला, वे दोनों राजकुमारों के साथ जनकपुर को चल दिये। रास्ते में अनेक आश्रमों को पार कर वे राजा सुमित से मिले। राजा के बहुत कहने पर रात-भर वे वहाँ रुके और दूसरे दिन मिथिला को चल दिये।

मिथिला पहुँच कर वहाँ उपवन में एक प्राचीन, निर्जन और रमणीक आश्रम को देखकर राम ने मुनि से पूछा :

हे भगवान ! यह आश्रम किसका है ?

मुनि ने गौतम ऋषि के उस आश्रम की सारी कथा सुनाई और साथ में गौतम द्वारा दिए गये अहल्या के शाप का भी वर्णन किया। ऋषि ने अपनी पत्नी को यह दिया था—तू इसी स्थान में हजारों वर्ष तक अनुताप करती हुई वास करेगी। तेरा भोजन केवल वायु होगा। तू किसी प्राणी को न दीख पड़ेगी। जब दशरथ के पुत्र रामचन्द्र इस वन में आवेंगे तब तू लोभ और मोह से रहित हो उनका सत्कार करेगी तभी इस दुष्ट कर्म के पाप से मुक्त होगी और अपना पहला शरीर धारण करेगी।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अहल्या ऋषि के शाप से अदृश्य हो जाती है न कि एक पत्थर की शिला, जैसा कि 'अध्यात्म रामायण', तुलसीकृत 'रामचरित-मानस' तथा अन्य रामकथाओं में वर्णन मिलता है।

जब रामचन्द्र उस आश्रम में आये तो उन्होंने उस तपस्विनी को देखा। वह तपस्या के तेज से प्रकाशित हो रही थी। उसे शाप के कारण सुर, असुर कोई भी नहीं देख सकता था। ब्रह्मा ने उसको बड़े प्रयत्न से रचा था। वह धुएँ से घिरी हुई प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला की तरह और हिम से तथा मेघ से छिपी हुई पूर्णचन्द्र की प्रभा की तरह और जल के बीच प्रकाशित सूर्य की प्रभा की तरह देख पड़ती थी।

लेकिन वह जब तक रामचन्द्र का दर्शन न हुआ तभी तक अदृश्य रही थी। राम के आने पर उसके सारे पाप दूर हो गये और वह सबको दीख पड़ी। उसने श्रीराम के चरणों को छुआ और उनकी पूजा करके अपने पति ऋषि गौतम से जा मिली।

'अध्यात्म रामायण' में कथा तो बिल्कुल इसी तरह है। ऋषि का शाप भी वही है लेकिन ऋषि ने यह और कहा कि तेरे आश्रम की शिला पर जब राम पैर रखेंगे तब तेरा उद्धार होगा। इसी शिला-स्पर्श द्वारा अहल्या-उद्धार की ओर आगे केवट भी संकेत करता है जब वह राम को अपनी नाव में बिना पैर धोये चढ़ाने को तैयार नहीं होता।

'अद्‌भुत रामायण' में यह कथा नहीं है।

'पद्म पुराण' के उत्तर खण्ड में भी गौतम-पत्नी अहल्या को शिला-रूप में माना गया है। मिथिला के मार्ग में महात्मा रामचन्द्र के चरण-कमलों का स्पर्श हो जाने से बहुत बड़ी शिला के रूप में पड़ी हुई गौतम-पत्नी अहल्या शुद्ध हो गई।

'महाभारत', वन-पर्व में आये रामोपाख्यान में यह कथा नहीं है।

'श्रीमद्भागवत' की रामकथा में भी अहल्या-उद्धार की कथा नहीं है।

'विष्णु पुराण' के चतुर्थांश में वर्णित रामकथा में सारांश में केवल निम्न उल्लेख है :

राम ने अपने दर्शन मात्र से अहल्या को निष्पाप कर दिया।

इसमें दोनों तरह की कल्पना की जा सकती है।

'रामचरित मानस' में तो गौतम की पत्नी अहल्या शापवश पत्थर का देह धारण करती है। तुलसीदासजी ने बालकाण्ड में लिखा है :

गौतम नारि श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर॥

श्रीरामचन्द्र जी के पवित्र और शोक के नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गई। वह हाथ जोड़कर उनके चरणों से चिपट गई और उसके दोनों नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। प्रभु की अनेक प्रकार से विनती करके वह ऋषि-पत्नी अपने पति गौतम ऋषि से जा मिली।

'सूर सागर' में भी अहल्या को पाषाण-रूप ही माना गया है। महात्मा सूरदास कहते हैं :

गंगातट आये श्रीराम।
तहाँ पाषान रूप पग परसे गौतम ऋषि की बाम।
गई अकास देवतन धरिकै, अति सुन्दर अभिराम।

'जैन पद्मपुराण' में अहल्या का प्रसंग नहीं मिलता है।

उपर्युक्त वर्णनों से अहल्या के दो रूप मिलते हैं, एक पाषाण रूप और दूसरा अदृश्य रूप। दोनों रूपों की कल्पना चमत्कार की भित्ति पर टिकी हुई है और जहाँ तक हमारा अनुमान है अहल्या की कथा की सृष्टि इस रूप में राम के अलौकिक रूप को संबल देने के लिये ही हुई है। प्राचीन काल की मूल कथाओं की रूप-विकृति का कारण यही रहा कि हजारों वर्ष के बाद ये कथायें लिखी गईं, उसके पहले जबानी ही कही-सुनी जाती रहीं। समय-समय पर इनमें परिवर्तन आ गया, चमत्कार जुड़ गये और अन्त में किन्हीं सम्प्रदाय विशेष के विश्वासों का समर्थन करने के लिये इन कथाओं का प्रयोग होने लगा।

गौतम ऋषि का इन्द्र को शाप देना कि 'तेरे शरीर पर सहस्र भग हो जायें' और दूसरे प्रसंग में 'तू अण्डकोष रहित हो जा' आज की तर्कमयी बुद्धि के सामने उपहास के विषय लगते हैं।

इसी प्रकार अहल्या का शाप से पाषाण हो जाना, राम के चरण-स्पर्श से

पुनः जीवित होना और आकाश-मार्ग से अपने पति से मिलना ; दूसरी जगह केवल अदृश्य होना यह स्पष्ट करता है, कि यह चमत्कारमयी कथा परवर्ती कल्पना है। यह केवल राम के अवतारवाद के विषय को सिद्ध करने के लिये ही की गई है। तभी तो, 'अध्यात्म रामायण' में अहल्या अपने पूर्व-रूप को प्राप्त होकर निम्न शब्दों में राम की स्तुति करती है :

हे राम ! यद्यपि आप इस समय मायामुक्त हो (अर्थात् भगवान् होकर भी मनुष्य-रूप में हो) तो भी आप सम्पूर्ण आनन्दमय हो। आपके चरण-पंकज की रेणुओं से जो गंगा पवित्र हो गई है वह महादेव, ब्रह्मा आदि देवताओं को भी पवित्र करती है। इसलिये जो भगवान् हरि के मनुष्यावतार राम हैं, जिनके चरणारविन्द की रेणु श्रुतियों को भी ढूंढने ,योग्य है, जिनके नाभि-कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं और जिनके सार के रसिक श्री भगवान् महादेव हैं उनका मैं अपने हृदय में निरंतर ध्यान करती हूँ।

यह राम परमात्मा है अर्थात् माया से परे, शुद्ध आत्म ब्रह्म है और यही राम पुराण पुरुष है, सबके हृदय में शयन करने वाला, अन्तर्यामी और स्वयं प्रकाश स्वरूप है।

यही परम स्वतंत्र परिपूर्ण आत्माराम अपने माया के गुणों में प्रतिबिम्बित होकर इस विश्व की उत्पत्ति, पालन और संहार करने के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों नामों को धारण करता है।

हे राम ! मैं आपके उन चरण-कमलों की वन्दना करती हूँ जिन्हे लक्ष्मी जी ने बड़ी प्रीति से अपने वक्षस्थल पर धारण किया है ।

इसके बाद भी राम की ईश्वर-रूप में अनेक तरह से व्याख्या करते हुए अहल्या ने प्रार्थना की है। इतने विस्तार के साथ की गई स्तुति हमे अन्यत्र नही प्राप्त होती है। जब यह स्तुति गौतम-अहल्या की प्राचीन कथा से मूल रूप में सम्बन्ध रखती है तो 'वाल्मीकीय रामायण' के रचयिता ने इसको अपने काव्य मे स्थान क्यों नही दिया। अवश्य ही यह 'अध्यात्म रामायण' के कथाकार की भक्तरूप में अपने अन्तर की अभिव्यक्ति है और उसने अपना उद्देश्य स्पष्ट शब्दों में स्तुति के अन्त मे लिख भी दिया है :

जो पुरुष भक्तियुक्त होकर इस अहल्या के किये हुए स्तोत्र का पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है और ब्रह्म को प्राप्त होता है। जिस स्त्री के पुत्र न होता हो वह रामचन्द्र का हृदय मे ध्यान कर इस स्तोत्र का पाठ करे तो वर्ष-मध्य में ही सुपुत्र का मुख देखे।,यह स्तोत्र मनुष्य की सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है

जो पुरुष ब्रह्मघ्न हो, गुरु-स्त्री गमन करने वाला हो, सुवर्ण चुराने वाला हो, मदिरापान करने वाला हो और माता-पिता का हिंसक भी हो, निरन्तर विषय-भोग में तत्पर हो वह भी इस स्तोत्र के नित्य पाठ करने से सब पापों से छूटकर परम पद को प्राप्त होता है।

उपर्युक्त स्तोत्र के अनेक फल बताकर कथाकार ने पुराणकार की मनोवृत्ति को ही *अपनाया है और इस कथा में मूल सत्य का न्यूनतम अंश में सहारा लेते हुए अपने* सम्प्रदाय की विचार-पद्धति को थोपने का सजग प्रयत्न किया है। ये प्रयत्न यहाँ तक आगे बढ़े कि वैष्णव भक्तों के लिये 'अहल्या स्तोत्र' नाम की एक पाठ की पुस्तक कुछ और बढकर तैयार कर दी जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है लेकिन यह अवश्य कहा जायगा कि इस तरह की व्याख्यायें मूल कथा में जोड़ने से कथा की स्वाभाविक गति में बाधा उपस्थित होती है और चाहे इससे किन्हीं सम्प्रदाय विशेष का उद्देश्य पूर्ण होता हो लेकिन व्यक्ति-वैचित्र्य का स्थान कथा से निकालने से सुस्पष्ट और भव्य चरित्र-चित्रण नहीं हो पाता।

धनुष-यज्ञ

जब राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र अन्य ऋषियों के साथ मिथिला आ रहे थे तो राह में उन्हें गंगानदी को पार करना पड़ा। इसके बाद जब वे मिथिला पहुँच गये तो वहाँ के एक शून्य उपवन में ही राम ने अहल्या का उद्धार किया। यह वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' का है।

'अध्यात्म-रामायण' में अहल्या-उद्धार की कथा के बाद राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र के गंगा पार उतरने का प्रसंग आता है अर्थात् अहल्या का आश्रम मिथिला में न होकर गंगा के इसी पार था।

इसी प्रकार 'रामचरित मानस' में है।

अन्य ग्रंथों में इस विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।

दूसरा प्रसंग गंगा पार उतरने का है।

'वाल्मीकीय रामायण' में कथा निम्न प्रकार है :

जब रामचन्द्र और लक्ष्मण ऋषि के साथ गंगा-तट पर आये तो राम ने कहा—हे मुनि ! यह शोणनद तो बड़ा गहरा है। इसे किस रास्ते से पार करेंगे।

विश्वामित्र ने कहा—जिस रास्ते से महर्षि लोग आते-जाते हैं उसी रास्ते से चलो।

इसके बाद सब ने स्नान-तर्पण कर अग्निहोत्र किया। इसके बाद विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को गंगा की उत्पत्ति की कथा सुनाई। और राम ने कहा :

हे महर्षि ! आपने यह कथा तो सुनादी, अब नदी के पार उतरना चाहिये। इस नाव पर अच्छा बिछौना बिछाया गया है। आपको जानकर यह ऋषियों की नाव शीघ्र आ गई है। तब सब लोग नाव पर चढ़ गये और गंगा के पार उतर गये। इसके पश्चात् वे विशाला नामक नगरी पहुँचे।

'अध्यात्म रामायण' में अहल्या के आश्रम से चलकर राम गंगा के तट पर

आये। पार उतरने के लिये उन्होंने नाव मँगाई। उस समय मल्लाह ने उन्हें नाव पर चढ़ाने से मना किया और कहा :

हे नाथ ! मैं बिना आपके चरण-कमलों को धोये आपको नाव पर कैसे चढ़ाऊँ। मेरी नाव तो लकड़ी की है, जब आपके चरण-कमलों की रज से पाषाण-रूप अहल्या-नारी मनुष्य भाव को प्राप्त हो गई तो लकड़ी का तो कहना ही क्या है। मैं गरीब मल्लाह हूँ, अगर मेरी नौका भी आपके चरण-कमलों की रज से मनुष्य हो जायेगी तो मैं अपनी स्त्री और बच्चों को कहाँ से कमाकर खिलाऊँगा।

यह सुनकर रामचन्द्रजी मुस्कराने लगे और मल्लाह ने उनके चरण धोए। इसके बाद नाव पर चढ़कर वे पार उतरे।

तुलसीकृत 'मानस' में राम-लक्ष्मण और सीता को केवट उस समय मिलता है जब वे पिता की आज्ञा से दण्डकारण्य को १४ वर्ष के लिये रवाना हो जाते हैं और रास्ते में गंगा को पार करना चाहते हैं। उसी समय केवट आकर कहता है :

> पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
> मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
> बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारि हौं।
> तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारि हौं॥

केवट के प्रेम-रस से भरे वचनों को सुनकर श्रीराम जानकी जी और लक्ष्मण की ओर देख कर हँसे। उन्होंने अपने पैर धोने की केवट को अनुमति दे दी।

यह वर्णन 'मानस' में अयोध्याकाण्ड में आता है जब कि 'अध्यात्म रामायण' में बालकाण्ड में। 'मानस' में बालकाण्ड में गंगा के पार जाने का प्रसंग आता अवश्य है लेकिन वहाँ ऋषि, राम और लक्ष्मण उसे किस तरह पार कर जाते हैं यह उसमें वर्णित नहीं है।

यह वर्णन 'मानस' में अयोध्याकाण्ड में आता है पर उसके स्थान पर 'वाल्मीकीय-रामायण' के अयोध्याकाण्ड में निषादराज गुह कुशल मल्लाहों द्वारा वनवासी राम लक्ष्मण और सीता को गंगा पार उतारने का प्रबन्ध कर देते हैं।

'अध्यात्म रामायण' में निषादराज गुह स्वयं नौका को खेते हुए राम-लक्ष्मण और सीता को पार उतारते हैं। यहाँ गुह को राम के भक्त-रूप में ही लिया गया है जब कि 'वाल्मीकीय रामायण' में वह रामचन्द्र जी का मित्र, एक स्वतंत्र राजा है।

'सूरसागर' में भी केवट वही बात कहता है जो वह 'मानस' में राम से कहता है लेकिन इसमें लक्ष्मण और केवट का संवाद है। लक्ष्मण केवट से पार उतारने के

के लिए प्रार्थना करते हैं। केवट पैर धोने के लिये ज़िद करता है और कहता है :

नौका हौं नहीं लै म्राऊँ।
प्रगट प्रताप चरन को देखौं, ताहि कहाँ पुनि पाऊँ॥
× × ×
चरन परसि पाखान उड़त है, कत बेरी उड़ि जात?
जो यह बधू होइ काहू की, दार स्वरूप धरे।
छूटै देह, जाहि सरिता तजि, पग सौं परस करे।
मेरी सकल जीविका यामैं, रघुपति मुक्त न कीजै।
सूरदास चढ़ौ प्रभु पाछें, रेनु पखारन दीजै॥

इसी प्रसंग के अन्तर्गत हम सीताजी के उस कथन को ले लेते हैं जब उन्होंने नाव के बीच नदी मे पहुँचने के बाद गंगाजी से प्रार्थना करते हुए कहा था :

हे गंगे! यह महाराज दशरथ के पुत्र, तुम्हारी रक्षा से पिता की आज्ञा पालन करें और चौदह वर्ष बनवास कर फिर लक्ष्मण के और मेरे साथ कुशल-क्षेम से लौट आयें। हे देवी! तुम मनोरथ पूर्ण करती हो। लौट कर मैं तुम्हारी पूजा करूँगी। हे त्रिपथगे! तुम ब्रह्मलोक पर्यन्त व्याप्त हो रही हो और राजा समुद्र की भार्या हो। हे देवि! मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ। जब रामचन्द्र मंगलपूर्वक फिर लौट आवेंगे और राज्य पर बैठेंगे तब मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये लक्ष गौ, वस्त्र और सुन्दर अन्न ब्राह्मणों को दूंगी। पुरी में आकर मैं सहस्रघट सुरा और मांस-मिश्रित भात से तुम्हारी पूजा और बलिदान करूँगी। तुम्हारे तीर पर जो-जो देव वास करते हैं और जो-जो तीर्थ तथा देवस्थान हैं उन सबको मैं यथाविधि पूजूँगी।

इस प्रकार गंगा को पार कर वे दोनो भाई और सीता वत्स देश मे पहुँचे और वहाँ जाकर दोनों ने चार पवित्र महामृगों को मारकर और उनके मांस को लेकर सायंकाल एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया।

'अध्यात्म रामायण' में भी सीताजी ने गंगा से वही प्रार्थना की। इसमें सीता जी ने सुरा न गिनते हुए केवल इतना ही कहा—मदिरा, मांस, पुष्पादि सामग्री और बलि से आदरपूर्वक पूजा करूँगी।

'रामचरित मानस' में सीताजी ने गंगा पार कर जाने के बाद गंगा जी से प्रार्थना की। पहले तो रामचन्द्र जी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिव जी को सिर नवाया और फिर सीता ने हाथ जोड़ कर गंगा जी से कहा—हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजिये जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौट कर तुम्हारी पूजा करूँ।

राजा जनक स्वयं विश्वामित्र से कहते हैं :

हे मुनि ! अनेक राजा लोग आ-आकर मुझसे सीता को माँगने लगे। उन्हें मैं यही उत्तर देता कि यह कन्या वीर्य्यशुल्का है। तब सब राजा इकट्ठे होकर अपने-अपने बल की परीक्षा के लिये मिथिला में आये। उस समय शिव के धनुष को लाकर मैंने उनके सामने रख दिया। परन्तु वे उसे उठा भी न सके इसलिये उन्हें निर्बल जान कर मैंने उन्हें अपनी कन्या नहीं दी। उस समय राजा लोगों ने मिथिला को घेर लिया और मुझे बड़ी पीड़ा दी। इस घेरा-घेरी में एक बरस बीत गया। इसमें मेरा बहुत-सा खर्च हुआ। जब सब सामान चुक गया तब मैंने दुखित हो तप से देवताओं को प्रसन्न कर लिया। देवताओं ने प्रसन्न होकर मुझे सेना दी। मैंने उस सेना की सहायता से सबको मार भगाया।

'अध्यात्म रामायण' में यह तो मिलता है कि सब राजा शिव के उस धनुष को देख चुके थे और उसका पूजन करके चले गये थे। राजाओं का जनक से युद्ध हुआ इसका वर्णन यहाँ नहीं मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में धनुष-यज्ञ एक दिन हुआ। उस दिन अनेक राजा, राक्षस आदि अपने-अपने बल को आजमाने धनुष-यज्ञशाला में आये। वे सब महारणधीर रामचन्द्र के रूप को देखकर अपने मन में डर गये। लेकिन जब राम ने धनुष को तोड़ दिया उस समय सीताजी को देखकर कुछ राजा ललचा उठे। वे अभागे उठ-उठ कर, कवच पहन कर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे। कोई कहते थे कि सीता को छीन लो और राजकुमारों को पकड़ कर बाँध लो। हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन ब्याह सकता है। यदि जनक कुछ सहायता करें तो युद्ध में दोनों भाइयों सहित उसे भी जीत लो।

यह सुन कर राजा जनक बोले :

> साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहि लाज लजानी॥
> बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
> सोई सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई॥

इस प्रसंग में राजाओं के उपद्रव करने का वर्णन धनुष के टूटने के बाद का है और यहाँ जनक अत्यन्त गर्वित होकर वीरतापूर्ण उत्तर राजाओं को देते हैं। 'वाल्मीकीय रामायण' में जनक देवताओं की सेना मिलने से पहले असहाय-से लगते हैं।

'सूरसागर' की रामकथा में भी एक ही दिन धनुष-यज्ञ का वर्णन है। राजाओं के बारे मे सूरदास जी लिखते हैं :

> टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ, ज्यों तारागन भोर॥

× × ×

करनामय जब चाप लियो कर बाँधि सुदृढ़ कटि चीर।
भूभृत सीस नमित जो गर्वगत, पावक सींच्यो नीर॥

इनमें राजाओं के शर्मिन्दा होने का ही वर्णन है, उनका उपद्रव करने का प्रयत्न नहीं है।

इसके अलावा 'महाभारत' के रामोपाख्यान में, 'पद्मपुराण' में, 'अध्यात्म-रामायण' में व 'विष्णुपुराण' में धनुषयज्ञ का वर्णन नहीं है। 'श्रीमद्भागवत' में थोड़ा-सा वर्णन है।

'वाल्मीकीय रामायण', 'अध्यात्म रामायण' और 'रामचरित मानस' में ५००० लोग शिव के धनुष को उठा कर यज्ञमण्डप में रखते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में केवल ३०० लोग ही धनुष को उठाने के लिये पर्याप्त होते हैं।

मूल रूप में धनुष के इतने वृहत आकार की कल्पना सीता और विशेषकर राम के व्यक्तित्व को बढ़ाने के लिये ही की गई है नहीं तो यह मानना प्रायः असंगत-सा लगता है कि जिस धनुष को ५००० लोग भी मुश्किल से उठा पाये थे उसे रोज सीताजी उठा कर साफ करती थीं और उसकी पूजा करती थी और राम ने उस धनुष को कमल की डंडी के समान तोड़ दिया। मानव-पराक्रम के अन्तर्गत इस प्रकार का चमत्कार मान्य नहीं हो सकता। ये सब चमत्कार तो राम के भगवान् रूप में ही अपना स्पष्टीकरण ढूँढ सकते हैं।

तुलसीदास जी के 'रामचरित मानस' में धनुष यज्ञ के समय रावण और बाणा-सुर भी आये लेकिन वे भी उस धनुष को एक अंगुल न हटा सके। आश्चर्य की बात है जब चमत्कारों की उड़ान उड़ती है तो जो रावण शिव-सहित कैलाश पर्वत को उखाड़ सका वह शिव के धनुष को एक अंगुल भी न हटा सका।

'अध्यात्म रामायण' और 'वाल्मीकीय रामायण' तथा अन्य ग्रंथों में जहाँ भी धनुष-यज्ञ का वर्णन है रावण और बाणासुर धनुष-यज्ञ में भाग लेने नहीं आये थे। तुलसीदास जी की यह नयी सूझ उनकी राम के प्रति भक्ति को ही अन्यतम रूप में प्रकट करती है।

इन सबके अलावा 'रामचरित मानस' में एक प्रसंग बिल्कुल नया है जो अन्य रामायणों में नहीं मिलता है। जब राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ मिथिला आये तो वे एक भव्य आश्रम में ठहरे। लक्ष्मण ने जनकपुर देखने की अभि-लाषा प्रकट की। राम उनके मन के भाव को ताड़ गये और ऋषि से आज्ञा लेकर उन्हें साथ ले जनकपुर देखने चले गये।

गोस्वामी जी ने जनकपुर की शोभा का एक भव्य चित्र उपस्थित किया है। इसके बाद राम-लक्ष्मण को देखकर वहाँ पुरवासियों के हृदय में जो भाव उठे हैं,

उनको भी कवि ने अति सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपनी काव्यमयी भाषा में प्रकट किया है।

सभी पुरवासी उनके रूप-लावण्य को देखकर मोहित हो गये और अपने हृदयों में यह कामना करने लगे कि सीताजी का विवाह श्रीराम के साथ हो ।

दूसरे दिन प्रातःकाल राम लक्ष्मण को साथ ले वाटिका मे पूजा के लिये फूल लेने गये। सौभाग्य से सीता भी अपनी सखियों के साथ गिरिजा की पूजा करने आई थी। राम के अनुपम रूप को देखकर सीता चित्रलिखी-सी खड़ी रह गई। राम भी राजकुमारी की ओर आकर्षित हुए। सीता की सखियां राजकुमारी की ओर देख मुस्कराने लगीं इस पर सीता ने संकोच से अपने नेत्र झुका लिये।

सीता के हृदय में राम का जीता-जागता चित्र खिंच चुका था। इसके बाद वह गिरिजा के मन्दिर मे गई। वहाँ उसने अनेक तरह से गिरिजा देवी से प्रार्थना की कि वह उसके मन की कामना को पूर्ण करे।

यह पूरा दृश्य अन्य रामायणों में कहीं नहीं मिलता है। यह भी गोस्वामीजी की अपनी सूझ ही मालूम होती है। तुलसीदास जी का समय सोलहवीं शताब्दी है जब कि मुगल-साम्राज्य भारत में छाया हुआ था, हिन्दी साहित्य में उस समय तक की साहित्यिक गति को भक्ति-युग के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है क्योंकि भक्तिपूर्ण काव्य की उस समय प्रधानता थी, लेकिन रीतिकाल के नींव-रूप में दरबारी परम्परा मे काव्य का सृजन प्रारम्भ हो चुका था जिसमें राधाकृष्ण को अवतार के रूप में नहीं माना गया बल्कि सामन्तों की काम-पिपासा को तृप्त करने के लिये उन्हें नायक और नायिका के रूप में ही लिया गया। नायक और नायिका की स्वच्छंद क्रीड़ा की अभिव्यक्ति भी रीतिकालीन काव्य में पर्याप्त मात्रा में हुई। उसी का ही प्रारम्भिक रूप में प्रभाव तुलसीदास जी पर पड़ा मालूम होता है तभी उन्होने राम और सीता का मिलन नायक और नायिका के मिलन की परिपाटी पर वाटिका में कराया है। कठोर मर्यादा के पालक तुलसी की कलम से इस तरह के सुन्दर प्रसंग का वर्णन उनकी महान् उदारता का द्योतक है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि तुलसीदास जी ने अपने काव्य में नाटकीय तत्व को भी महत्व दिया है जो 'अध्यात्म रामायण' में अपने न्यूनतम रूप मे ही मिलता है।

गिरिजा की पूजा भी 'रामचरित मानस' में ही कराई गई है अन्यत्र नहीं, इसका कारण यही हो सकता है कि गोस्वामीजी ने कथा में शिव को अधिक महत्व दिया है। शिव को राम का अनन्य भक्त बताया है और शिवलिंग की पूजा भी राम द्वारा कराई है इसीलिये शिवजी की स्त्री गिरिजा को सीताजी के उपास्य-रूप में मान लिया है, वैसे प्रायः पार्वती जी का मन्दिर शिव से अलग स्वतन्त्र रूप से भारत-

वर्ग में एकाध ही स्थान पर मिलता होगा। हो सकता है तुलसीदास जी के समय में मिथिला के मन्दिरों की कोई परम्परा रही हो।

'जैन पद्मपुराण' में धनुष-यज्ञ का प्रसंग उपर्युक्त प्रसंगों से पूरी तरह अलग है। इसकी पृष्ठभूमि ही दूसरी तरह की है। मुनि विश्वामित्र यहाँ राम-लक्ष्मण के साथ मिथिला नहीं जाते हैं। कथा के अन्तर को अधिक स्पष्ट करने के लिये हम 'जैन पद्म पुराण' की कथा को यहाँ रखते हैं :

राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से पूछा—हे प्रभो ! राजा जनक ने किस लिये राम को अपनी पुत्री देने का विचार किया ?

गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक से पूरी कथा इस तरह कही :

वैताढ्य पर्वत के दक्षिण भाग में और कैलाश पर्वत के उत्तर भाग में अनेक देश हैं। उन अर्द्धबर्बर देशों में एक मयूरमाल नाम का नगर है, वह बहुत भयानक है और वहाँ महाक्रूर और निर्दयी म्लेच्छ रहते हैं। आतरंगतम नामक राजा वहाँ राज्य करता है। वह बड़ा दुष्ट और पापी है और अपनी म्लेच्छों की सेना से अनेक देश उजाड़ देता है।

उसी राजा ने एक बार अपनी विशाल म्लेच्छवाहिनी से राजा जनक के देश पर आक्रमण किया। राजा ने सहायता मांगने के लिये अपने दूत अयोध्या के राजा दशरथ के पास भेजे।

दूतों ने राजा से कहा—हे देव ! राजा जनक ने यह विनती की है कि म्लेच्छों ने आकर अनेक आर्य देशों को विध्वंस कर दिया है। वे पापी प्रजा को एक वर्ण करना चाहते हैं, इसलिये प्रजा नष्ट हो गई है। अब हम कैसे जीवित रहें, हमारा क्या कर्तव्य है ? उनसे लड़ाई करें या प्रजा को किसी गढ़ में घुसा दें, कालिन्दी भागा नदी की तरफ विषम स्थल है, वहाँ जावें। विपुलाचल की तरफ जावें अथवा सर्व सेना सहित कुंजगिरि की तरफ जावें परन्तु सेना अत्यंत भयानक गति से बढ़ती चली आ रही है। साधु, श्रावक सब लोग अति व्याकुल हैं। वे पापी म्लेच्छ गौ आदि सब जीवों को भक्षण कर जाते हैं। आप जो आज्ञा दो वही हम करें।

यह राज्य भी आपका है और यह पृथ्वी भी आपकी है। इसका पालन करना आपका कर्तव्य है। प्रजा की रक्षा से धर्म की रक्षा होती है। श्रावक लोग भाव सहित भगवान् की पूजा करते हैं, नाना प्रकार के व्रतों का पालन करते हैं, दान करते हैं, शील पालन करते हैं, भगवान् के बड़े-बड़े चैत्यालयों में महान् उत्सव होते है, विधि-पूर्वक अनेक प्रकार की महापूजा होती है और साधु दशलक्षण धर्म से युक्त आत्म-ध्यान में आरूढ़ मोक्ष प्राप्त करने के लिये तप करते हैं।

प्रजा के नष्ट होने से साधु और श्रावक लोगों का धर्म नष्ट हो जायगा। प्रजा के रहने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब रहता है। जो पृथ्वी का पालन करता

है वह प्रशंसा का पात्र है। प्रजा की रक्षा करने से राजा के दोनों लोक सिद्ध होते हैं। प्रजा के बिना राजा नहीं होता और राजा के बिना प्रजा नहीं होती। जीव-दया-मय धर्म का जो पालन करता है वही परलोक में सुखी रहता है। राजा के भुजबल की छाया पाकर प्रजा सुख से रहती है, उसके देश में धर्मात्मा धर्म का सेवन करते हैं, दान, तप, शील, पूजादि करते हैं। प्रजा की रक्षा के लिये ही राजा प्रजा से छठा अंश कर-रूप में प्राप्त करता है।

यह वृत्तान्त सुनकर राजा दशरथ चलने को उद्यत हो गये और उन्होंने श्रीराम का राज्याभिषेक करने का विचार कर लिया। उसी समय सब मन्त्री और सेवक आ गये। हाथी, घोड़े, रथ और प्यादे सब वहाँ आ गये। सेवक लोग जल से भरे स्वर्ण-मय कलश स्नान के निमित्त ले आये। बड़े-बड़े सामन्त लोग शस्त्र बाँध-बाँधकर आ गये। नर्तकियाँ नृत्य करने लगी। राजलोक की स्त्रियाँ नाना प्रकार के वस्त्र और आभूषण ले आईं।

राज्याभिषेक का यह आडम्बर देखकर राम ने दशरथ से पूछा—हे भद्र! आप इस पृथ्वी का पालन करिये, मैं प्रजा के हित के लिये शत्रुओं से लड़ने जाता हूँ यद्यपि वे शत्रु देवताओं से भी दुर्जय हैं। आपको वहाँ जाना उचित नहीं है, चूहों के उपद्रव पर हाथी क्या क्रोध करेगा। इसलिये आप युद्ध में जाने की हमें आज्ञा दीजिये।

राम की बात सुनकर दशरथ अत्यंत हर्षित हुए और राम को हृदय से लगा कर कहने लगे—हे पद्म! तुम्हारे कमल के समान नेत्र हैं, तुम अभी सुकुमार अंग के बालक ही हो, पशु समान उन दुरात्माओं से कैसे जीतोगे।

राम ने कहा—हे तात! एक अग्नि का कण ही विशाल वन को भस्म कर सकता है, छोटी और बड़ी अवस्था से क्या है, अकेला बालसूर्य ही रात्रि के घोर अंध-कार को नष्ट कर देता है। हम बालक अवश्य उन दुष्टों पर विजय प्राप्त करेंगे।

राम के वीरतापूर्ण वचन सुनकर राजा दशरथ का हृदय गद्गद हो गया और उन्होंने सहर्ष राम और लक्ष्मण को युद्ध में भेज दिया। सब शास्त्र और शस्त्रविद्या में प्रवीण राम और लक्ष्मण चतुरंगिनी सेना लेकर जनक की मदद करने चल दिये।

इनके पहुँचने के पहले ही जनक और कनक दोनों भाइयों का म्लेच्छों से युद्ध हो रहा था। दोनों तरफ से शस्त्रों के भीषण प्रहार हो रहे थे जिससे दोनों ओर की सेना व्याकुल हो गई। म्लेच्छों ने कनक को दबा लिया उसी समय जनक भाई की मदद करने के लिये विशाल हाथियों की सेना लेकर आया। म्लेच्छों ने जनक को आता देख उस पर भीषण आक्रमण किया और उसकी सेना को कुचल डाला। इसी बीच राम और लक्ष्मण आ पहुँचे। जब बर्बर देश के उन म्लेच्छों की सेना ने श्रीराम-चन्द्र जी का उज्ज्वल छत्र देखा तो वह कम्पायमान हो गई। म्लेच्छों के बाणों से

राजा जनक का बख्तर टूट गया तब राम ने उसे धैर्य बँधाया। वे स्वयं चंचल अश्वों से युक्त रथ पर चढ़कर हाथ में धनुष-बाण लेकर युद्ध-स्थल में चल दिये। उनके रथ की ध्वजा पर सिंह का चिह्न था।

श्रीराम अब शत्रु की सेना का इस तरह से विध्वंस करने लगे जैसे मतवाला हाथी कदली-वन मे केलों के समूह को नष्ट कर देता है। जनक और कनक दोनों भाइयों की रक्षा करते हुए लक्ष्मण मेघ के समान बाणों की वर्षा करने लगे। तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, त्रिशूल, कुठार और किरात आदि शस्त्रों के प्रहार शत्रु-वाहिनी पर होने लगे जिससे वे भील, पारधी और म्लेच्छ कट-कट कर ऐसे गिरने लगे जैसे परशु से कट-कट कर वृक्ष गिरते हैं। म्लेच्छों की सेना भागने लगी। वे म्लेच्छ धनुप-बाण, खड्ग और चक्रादि अनेक प्रकार के शस्त्र धारण किये हुए थे। उनके वस्त्र लाल थे और उनके हाथ में खंजर थे। वे म्लेच्छ अनार्य अनेक वर्णों के थे कोई काजल के समान काले, कोई पीले और कोई ताँबे के-से रंग के थे। वे वृक्षों के वल्कल पहने थे और अनेक प्रकार के गेरू आदि रंगों से उन्होंने अपने शरीर को रंग लिया था। वृक्षों की मंजरियाँ उनके सिर पर मुकुट की तरह लगी हुई थीं। कुटज जाति के वृक्ष की तरह विशाल उदर वाले उन म्लेच्छों के दाँत कौड़ी के समान थे। उनकी भुजाएँ विशाल थीं और वे महानिर्दयी पशु-माँस का भक्षण करते थे। शूकर, भैंस और व्याघ्र, इत्यादि के चिह्न उनकी ध्वजाओं में थे। नाना प्रकार के वाहनों पर वे चढ़े हुए थे, पत्तों के उनके छत्र थे, इस तरह के भयानक रूप वाले उन भीलों ने मेघमाला के समान लक्ष्मण-रूपी पर्वत पर आक्रमण कर दिया और पर्वत के समान वे बाण-वृष्टि करने लगे।

यह देखकर सिंह की गर्जना करने वाले लक्ष्मण उन पर झपटे, लक्ष्मण की सेना के प्रचंड वेग से आने पर शत्रुओं के पैर उखड़ गये। उनका अधिपति आतरंगतम अपनी सेना को रोकने लगा, फिर वह स्वयं लक्ष्मण से घोर युद्ध करने लगा। उसने लक्ष्मण के रथ को नष्ट कर दिया। उस समय रामचन्द्र अपना रथ लेकर लक्ष्मण के पास आये और लक्ष्मण को रथ पर चढ़ा लिया और तब शत्रु की सेना को अपने बाणों की अग्नि से भस्म करने लगे। बहुत से तो बाणों से मारे गये, बहुत से कनकनामा शस्त्र से, बहुत से तोमरनामा आयुध से, बहुत से सामान्य चक्रनामा शस्त्र से मारे गये। इस प्रकार वह विशाल म्लेच्छवाहिनी अपने छत्र, चमर, ध्वजा, धनुष आदि शस्त्रों को डाल-डालकर भागने लगी। म्लेच्छों का अधिपति आतरंगतम जो समुद्र के समान विशाल सेना लेकर जनक को कुचलने आया था केवल दस घुड़सवारों के साथ रण में पीठ दिखाकर भागा। तब राम ने कहा—इस भागने नपुंसक को अब नहीं मारना चाहिए। जो भी म्लेच्छ बचकर भाग निकले थे वे व्याकुल होकर सह्याचल, विन्ध्याचल के वनों में छिप गये।

इस तरह जनक को म्लेच्छों के संकट से पूरी तरह मुक्त करके राम और लक्ष्मण अयोध्या अपने पिता के पास आगये। राम के प्रभाव से सारी पृथ्वी पर शांति छा गई। उपद्रव समाप्त हो गये। धर्म, अर्थ, काम से युक्त पुरुषों से संसार ऐसा शोभायमान हो गया जैसे अनेकों नक्षत्रों से आकाश।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहने लगे—हे राजा! राम का ऐसा माहात्म्य देखकर राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता का पाणिग्रहण राम के साथ करने का निश्चय कर लिया।

(जैन पद्मपुराण, २७वाँ पर्व)

इसके पश्चात् राम के परम भक्त नारद ने राम के पराक्रम का यह वृत्तान्त सुना। उसके मन में सीता को देखने की अभिलाषा जाग्रत हुई। वह देखना चाहता था कि यह राजकुमारी कितनी सुन्दर है जिसका विवाह राम के साथ होना निश्चय हुआ है। जब वह सीता के घर आया तो सीता दर्पण में अपना मुख देख रही थी। उसी में उसे नारद की जटायें दीख पड़ीं जिनसे वह डर गई और अपने हृदय में अत्यंत व्याकुल हुई। वह काँपती हुई महल के अन्दर चली गई। नारद भी महल में जाने लगे। लेकिन द्वारपाल ने उन्हें रोका। उन दोनों में झगड़ा होने लगा। यह देखकर खड्ग और धनुषधारी सामंत दौड़ आये और 'पकड़ लो, पकड़ लो' चिल्लाने लगे। नारद ये शब्द सुनकर डर गया और आकाश-मार्ग से कैलाश पर्वत पर चला गया।

वहाँ उसने चैन की सांस ली। उसकी कँपकपी मिट गई और उसने अपने बिखरे बालों को सँभालकर ललाट पर से पसीना पोंछा। वह सोचने लगा कि मैं राम के अनुराग से ही तो सीता को देखने गया था और यहाँ यम के समान दुष्ट मनुष्य मुझे पकड़ने के लिए आये। अब मैं इस पापिनी सीता को चैन से नहीं बैठने दूँगा। जहाँ-जहाँ भी वह जायेगी वहाँ ही मैं इसको कष्ट दूँगा।

यह सोचकर वह वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी पर रथनूपुर नामक नगर में गया और अपने साथ सुन्दरी सीता का एक चित्र भी ले गया। वहाँ उपवन में चन्द्रगति का पुत्र भामण्डल अनेक कुमारियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। नारद ने वह चित्र उनके समीप डाल दिया और स्वयं छिप गया। भामण्डल ने यह नहीं जाना कि यह मेरी बहिन का चित्र है, वह इस सुन्दर चित्र को देखकर मोहित हो गया और लज्जा तथा शास्त्र-ज्ञान आदि सब कुछ भूल गया। उसके ओठ सूख गये, अंग शिथिल पड़ गये और वह लम्बे-लम्बे निश्वास लेने लगा। भामण्डल रात और दिन उसी सुन्दर राजकुमारी की चिन्ता करने लगा और उसको पाने के लिए पूरी तरह से पागल हो गया। बड़े-बड़े बुद्धिमान उसकी यह विलक्षण अवस्था देखकर सोच में पड़ गये। उसी समय नारद ने आकर कुमार की बधुओं को दर्शन दिया। उनके उस सुन्दरी कन्या के बारे में पूछने पर नारद कहने लगा :

मिथिला नामक नगर में राजा इन्द्रकेतु का पुत्र जनक राज्य करता है, उसके विदेहा रानी है उसी की पुत्री सीता इस चित्र में चित्रित है।

नारद भामण्डल से कहने लगे—हे कुमार ! तू शोक मत कर, तू विद्याधर राजा का पुत्र है, तुझे यह कन्या दुर्लभ नहीं है। यह कन्या अति सुन्दर हाव भाव से युक्त गुणों वाली है, उसका सौंदर्य अवर्णनीय है। तुझे छोड़कर और कौन उस कन्या के योग्य हो सकता है।

यह सुनकर भामण्डल की उस कन्या के प्रति आसक्ति और बढ़ गई। वह सोचने लगा कि यदि यह स्त्री मुझे प्राप्त नहीं हुई तो मैं अपने जीवन को समाप्त कर दूँगा। यह परम सुन्दरी मेरे हृदय को अग्नि की ज्वाला के समान तप्त कर रही है। अब मेरी यह अवस्था आ गई है कि यदि यह राजकुमारी मुझे नहीं मिली तो काम के बाणों से अवश्य मेरी मृत्यु हो जायेगी।

कुमार की व्याकुल अवस्था देखकर उसकी माता कुमार के पिता से कहने लगी—हे नाथ ! इस अनर्थकारी नारद ने यह सब किया है। यही सुन्दर कुमारी के उस चित्रपट को लाया है जिसके पीछे कुमार उन्मत्त हो रहा है। अब आप ऐसा उपाय करिये जिससे कुमार को सीता प्राप्त हो। उसने भोजनादि सब कुछ छोड़ दिया है। इससे पहले वह प्राणों को न त्याग दे राजकुमारी को किसी तरह ले आइये।

यह सुनकर राजा भामण्डल से कहने लगा—हे पुत्र ! तू अपने हृदय में खेद मत कर ! मैं शीघ्र ही तुम्हारे लिये सीता को ला दूँगा।

उसने अपनी रानी से कहा—हे प्रिये ! विद्याधरों की कन्यायें अत्यंत रूपवती हैं उनको छोड़कर भूमिगोचरों से हम कैसे सम्बन्ध स्थापित करें। उसके अलावा शायद हमारी प्रार्थना से कन्या का पिता कन्या को देने के लिये तैयार न हो इसलिये किसी उपाय से उसके पिता को ही बुलाना चाहिये।

राजा ने एक चपलवेग नामक सेवक विद्याधर को बुलाकर सारा वृत्तान्त चुपके से उसके कान में कहा। चपलवेग राजा की आज्ञा पाकर शीघ्र ही मिथिला नगरी को चल दिया। वह शीघ्र ही मिथिला पहुँच गया और आकाश से उतर कर अश्व का वेश बनाकर गौ और महिषादि पशुओं को सताने लगा। राजधानी में भी उसने उपद्रव किया जिसकी खबर राजा को हुई। राजा ऐसे सुन्दर अश्व को देखकर ललचा गया। उसने सब लोगों से उसके बारे में पूछा। सबने राजा को उस अश्व को अंगीकार करने की सलाह दी। राजा ने उसे अपनी अश्वशाला में बँधवा दिया। एक मास तक वह वहीं बँधा रहा।

एक दिन राजा के एक सेवक ने राजा से कहा—एक मतवाला हाथी बड़ा उपद्रव कर रहा है। आप उसे वश में करिये।

राजा एक दूसरे हाथी पर चढ़कर गया। सरोवर के तट पर उस हाथी को खड़ा देखा, तब राजा ने अपने सेवक को उस सुन्दर अश्व को लाने की आज्ञा दी। अश्व लाया गया। ज्यों ही राजा उस अश्व पर सवार हुआ वह राजा को लेकर आकाश में उड़ गया। सब पुरजन हा-हा करते रह गये।

इसके पश्चात् अश्वरूप धारी वह विद्याधर अनेक नदी, पहाड़, वन, उपवन, नगर, ग्राम और देशों को लाँघता हुआ राजा को लेकर रथनूपुर आया। जब नगर निकट आ गया तो वे एक वृक्ष के बीच से निकले। राजा जनक उस वृक्ष की डाली पकड़कर लटक गया। वह अश्व नगर में आ गया। राजा वृक्ष से उतरकर आगे गया, वहाँ उसने एक स्वर्णमय ऊँचा कोट देखा। उसका दरवाजा रत्न-जटित था। वहीं एक महासुन्दर उपवन था जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष, बेल, फल और फूल थे। नाना प्रकार के पक्षी वहाँ कलरव कर रहे थे। अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे महल उसको वहाँ दीख पड़े। यह देखकर राजा अपने दायें हाथ में खड्ग लेकर निश्शंक होकर दरवाजे में घुस गया। वहाँ उसने विभिन्न प्रकार के फूलों की बाड़ी, स्फटिक-मणि के समान उज्ज्वल पानी से भरा तालाब और कुद जाति के फूलों के मण्डप देखे जिन पर भौरों के समूह गुंजार कर रहे थे। वहीं उसने एक अत्यंत सुन्दर भगवान् का मन्दिर देखा। सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा शिखर था और हीरों से जड़ा हुआ उसका फर्श था। जनक मन में सोचने लगा कि यह इन्द्र का मन्दिर है अथवा अहीन्द्र का। ऊर्ध्वलोक से आया है अथवा नागेन्द्र का भवन पाताल से आया है या सूर्य की किरणों का समूह पृथ्वी-तल पर एकत्रित हो गया है। इस मित्र विद्याधर ने मेरा बड़ा उपकार किया जो ऐसे स्थान पर ले आया।

वह मन्दिर के अन्दर गया तो भगवान् जिनराज के दर्शन किये। श्री जिनराज का मुख पौर्णमासी के चन्द्रमा के समान सुन्दर था और वे पद्मासन पर विराजमान थे। नाना प्रकार के रत्नजटित छत्र उनके ऊपर लगे हुए थे। राजा जनक भगवान् की स्तुति करने लगा। उधर वह विद्याधर अपने अश्व के रूप को हटा कर राजा चन्द्रगति के पास गया और कहने लगा—हे राजा! मैं मिथिला से जनक को पकड़ लाया हूँ। वह मनोज्ञ बाग में भगवान् के मन्दिर में बैठा है।

यह सुन कर राजा अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ पूजा-सामग्री लेकर मन्दिर की तरफ चला। उसके साथ बहुत से सैनिक थे। जनक विद्याधरों के अधिपति को इस प्रकार आता देख भयभीत हो गया। वह छिप गया।

दैत्य जाति के विद्याधरों का अधिपति चन्द्रगति मन्दिर में आया। पहले उसने भगवान् की विधिपूर्वक पूजा की और अनेक प्रकार से स्तुति करता हुआ वह वीणा बजाने लगा। वह जिनेन्द्रदेव, ऋषभदेव आदि की प्रार्थना करने लगा। उसी समय वीणा की ध्वनि से खिंचा हुआ राजा जनक प्रकट हुआ। राजा चन्द्रगति ने पूछा—

तुम कौन हो, भगवान् के चैत्यालय में कहाँ से आये हो। तुम नागों
अथवा विद्याधरों के अधिपति हो। हे मित्र ! तुम्हारा नाम क्या है

राजा जनक ने कहा—मेरा नाम जनक है। मैं मिथिला से
अभी अश्व मुझे यहाँ ले आया है।

यह सुन कर राजा चन्द्रगति बड़े प्रेम से जनक से मिला।
जनक से कहने लगा—हे महाराज ! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि मि
का दर्शन कर रहा हूँ। मैंने बहुत लोगों से सुना है कि तुम्हारी पु
गुण अत्यन्त सुन्दर है। अगर आप उसका पाणिग्रहण मेरे पुत्र भाम
दें तो आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने को अत्यन्त भाग्यशा

इस पर जनक बोला—हे देव ! मैंने अपनी कन्या को राजा
पुत्र राम को देने का निश्चय कर लिया है इसलिए मैं उसे तुम्हारे
सकता हूँ।

चन्द्रगति ने पूछा—ऐसा विचार आपने क्यों किया है ?

जनक ने म्लेच्छों के आक्रमण और राम के शौर्य का व
चन्द्रगति को कह सुनाया। राजा चन्द्रगति यह सब सुन कर कुछ
गया और कहने लगा :

हे राजा ! तुम बुद्धिमान नहीं हो। तुम भूमिगोचरी मूर्ख
म्लेच्छ और कहाँ उनके जीतने की बड़ाई। इसमें राम का क्या प
तुमने इतनी प्रशंसा की है। तुम्हारी बात सुन कर हँसी आती है।
गोचरियों का खोटा सम्बन्ध छोड़ कर विद्याधरों के इन्द्र राजा चन्
सम्बन्ध जोड़ो।

राजा जनक यह सुन कर क्षुब्ध हो गये और कहने लगे :

हे राजन् ! विशाल क्षीरसागर तक भी प्राणी की प्यास नहीं
लेकिन थोड़े जल का एक छोटा-सा तालाब पथिकों की तृषा ब
इसी प्रकार निविड़ अंधकार को एक छोटा-सा दीप नष्ट कर देता है
मुण्ड को एक छोटा केहरीसिंह विचलित कर देता है।

राजा जनक के अपमानजनक शब्द सुन कर सारे विद्याधर अत्य
और भूमिगोचरियों की निन्दा करने लगे। वे कहने लगे—हे राजन् !
सर्वविद्या और शूरता से रहित हैं। पशुओं में और उनमें क्या भेद है।
हो जो उसकी बड़ाई कर रहे हो।

तब जनक कहने लगे—हाय, हाय ! मैंने ऐसा क्या पाप कि
महापुरुष की निन्दा सुन रहा हूँ। त्रिभुवन में विख्यात भगवान् ऋषभ
देवताओं में पूज्य है, जिसका इक्ष्वाकु-वंश लोक में प्रसिद्ध है। उसी वंश

में पूज्य श्री तीर्थंकर देव और चक्रवर्ती बलभद्र नारायण भूमिगोचरियों में पैदा हुए हैं उनकी तुम किस तरह से निन्दा करते हो। उसी ऋषभदेव के वंश में बड़े-बड़े पुण्यकीर्ति धर्मात्मा अनरण्य, दशरथ आदि पैदा हुए हैं। ये राजा दशरथ जिनकी चार पटरानी और २०० रानियां हैं लोक की रक्षा के लिए अपने प्राण भी त्यागने को तत्पर रहते हैं। उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र राम इन्द्र के समान शूरवीर हैं और सूर्य के समान उनका यश चारों ओर फैला हुआ है। उन्हीं का छोटा भाई लक्ष्मण है जिसके शरीर में लक्ष्मी का निवास है, और जिसके धनुष को देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं। तुम उनसे भी बढ़ कर विद्याधरों को बताते हो। कहो, काक भी तो आकाशगामी है, उसमें क्या गुण है। भूमिगोचरियों में भगवान् तीर्थंकर पैदा हुए हैं जिनको इन्द्रादिक देव मस्तक नवाते हैं तो विद्याधरों की तो बात ही क्या है।

जनक के ये ये शब्द सुन कर विद्याधर एकांत में बैठ कर मन्त्रणा करने लगे। उन्होंने जनक से कहा—हे भूमिगोचरियों के नाथ ! तुम राम-लक्ष्मण की वीरता का इतना बढ़-चढ़ कर बखान कर रहे हो। हमें उनके पराक्रम की प्रतीति कैसे हो ? हमारे पास दो धनुष हैं, एक वज्रावर्त और दूसरा सागरावर्त, जिनकी देवता सेवा करते हैं। इन दोनों धनुषों को यदि ये दोनों भाई चढ़ा देंगे तो हम उनको अति पराक्रमी जानेंगे नहीं तो कन्या को बलपूर्वक छीन लायेंगे।

उन विशाल धनुषों को देख कर राजा जनक कुछ व्याकुल हुआ। बहुत-से विद्याधर उन दोनों धनुषों को और राजा जनक को मिथिला ले आये। चन्द्रगति रथनूपुर चला गया। विद्याधरों ने नगर के बाहर एक आयुधशाला बनाई, वहीं वे धनुष रखे गये। सब लोग उनको देखने को वहां आये। राजा अपने चित्त में चिंता करके अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। रानी ने इसका कारण पूछा और वह कहने लगी—हे देव ! लोक की किस सुन्दरी के लिए आप व्याकुल हैं, उसे ही उपस्थित किया जाय। तब राजा जनक कहने लगा—हे प्रिये ! मेरी चिन्ता का कारण दूसरा है। मुझे विद्याधर पकड़ कर आकाश-मार्ग से रथनूपुर ले गये थे। वहां राजा चन्द्रगति से मेरी भेंट हुई। उसने अपने पुत्र से मेरी पुत्री के पाणिग्रहण की बात चलाई थी और फिर दो अति विशाल धनुष वज्रावर्त और सागरावर्त दिये हैं। ये धनुष इन्द्र से भी नहीं चढ़ाये जा सकते हैं। उनकी ज्वाला दसों दिशाओं में फैल रही है और मायामयी नाग उनके चारों ओर फुंकार रहे हैं। धनुष चढ़ाये बिना ही स्वतः स्वभाव महाभयानक शब्द करते हैं। इनमें से वज्रावर्त धनुष को श्रीराम को चढ़ाना पड़ेगा। बीस दिन का समय है। अगर राम से यह धनुष कदाचित् न चढ़ा तो ये विद्याधर बलपूर्वक सीता को छीन कर ले जायेंगे।

जब राजा ने यह कहा तो रानी के नेत्रों से आंसू गिर पड़े। वह अपनी पुत्री के हरने के दुःख को भी भूल गई और महाशोक से पीड़ित होकर रुदन करने लगी।

यह कहने लगी—हे देव ! हमने ऐसे क्या पाप किये हैं कि पहले पु
और अब पुत्री भी हरी जाय । मुझे तो यह कन्या अपने प्राणों से भी

राजा रानी को धीरज बँधाते हुए कहने लगा—हे प्रिये ! पु
का फल तो अवश्य मिलेगा । संसार-रूप नाटक का आचार्य कर्म
नचा रहा है ।

राजा के विवेकपूर्ण वचनों से रानी किंचित् शान्त हो गई ।

राजा जनक ने नगर के बाहर जाकर धनुषशाला के समी
सारे राजपुत्रों के बुलाने को उसने पत्र भेज दिये । अयोध्या नगरी
गये । माता-पिता सहित रामादिक चारों भाई आये । सीता महल में
के बीच बैठी थी । बड़े-बड़े सामन्त उसकी रक्षा कर रहे थे और ए
अपने हाथ में एक स्वर्ण-दण्ड लिये सब राजकुमारों को सीता को
उसने राम, लक्ष्मण, भरतादि को भी दिखाया । उन राजकुमारों में कु
कुछ नागवंशी, कुछ सोमवंशी, कुछ उग्रवंशी, कुछ हरिवंशी और कुछ

सब लोग धनुष को देखकर कंपायमान हो गये । धनुष से म
की ज्वालाएँ बिजली के समान निकल रही थीं । मायामयी महा भया
कर रहे थे । यह देख कर बहुत से तो कानों पर हाथ रखकर भाग गये
को देखकर दूर से ही काँपने लगे, उनके नेत्र मुँद गये और कुछ ज्वर
पर गिर पड़े, कुछ मूर्च्छित हो गये और बिल्कुल बोल न सके । धनुष के
से वृक्ष के सूखे पत्तों की तरह वे राजकुमार उड़ते-फिरते थे । बहुत से
यदि जीवित बचकर घर चले जायें तो बड़ा भाग्य है । कुछ कह
सुन्दरी कन्या के लिए अपनी जान गँवाने के लिए हम यहाँ नहीं आ
से कोई प्रयोजन नहीं है । यह काम महादुःखदायी है । जैसे अनेक साधु
श्रावक शील-व्रत धारण करते हैं वैसे ही हम भी शीलव्रत धारण करेंगे

उसी समय मतवाले हाथी की-सी मनोहर गति से चलते हु
धनुष के निकट आये । रामचन्द्र जी के प्रभाव से धनुष ज्वालारहित हो
उसे आसानी से हाथ में उठा लिया और चढ़ा कर खींच दिया । उ
महाप्रचण्ड शब्द हुआ जिससे पृथ्वी कंपायमान हो गई । मोर मेघ का
कर नाचने लगे । उस धनुष के तेज के सामने सूर्य एक अग्नि के क
दीखने लगा । उसी समय आकाश से 'धन्य, धन्य' शब्दों के साथ पुष्पों
लगी । सारे लोक ऐसे डर गये जैसे मानो समुद्र में भँवर आ गया हो ।
भरी दृष्टि से राम को देखा और उनके गले में हाथ में ली हुई रत्नमाला

इसके पश्चात् लक्ष्मण ने भी दूसरे धनुष सागरावर्त को उठा क
और जब बाण पर दृष्टि डाली तो सब लोक भयभीत हो गये । यह दे

धनुष की प्रत्यंचा उतार ली और राम के पास आ बैठे। लक्ष्मण का पराक्रम देख चन्द्रगति का भेजा चन्द्रवदन विद्याधर अति प्रसन्न हुआ। उसने अपनी अष्टादश कन्या का पाणिग्रहण लक्ष्मण के साथ करने का निश्चय कर लिया।

राम, लक्ष्मण और सीता राजा दशरथ के पास आये। सब विद्याधर रथनूपुर चले गये और उन्होंने राम लक्ष्मण का पराक्रम राजा चन्द्रगति को सुनाया।

राम-लक्ष्मण के पाणिग्रहण की बात निश्चित हो चुकी थी लेकिन भरत अपने मन मे अत्यन्त चिन्तित थे। वे अपने को पराक्रमहीन समझ कर अपने कर्मों को कोसने लगे। उनकी माता कैकेयी ने उनके मन के भाव को राजा दशरथ से कहा। राजा दशरथ ने जनक के भाई कनक के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपनी पुत्री लोकसुन्दरी का विवाह भरत के साथ कर दे। राजा कनक इस पर राजी हो गया। लोकसुन्दरी ने भरत को वरण किया।

इसके पश्चात् मिथिला मे सीता और लोक सुन्दरी के विवाह का महोत्सव हुआ और राजा जनक और कनक ने अपनी-अपनी पुत्रियो का विवाह कर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजा दशरथ और सब रानियों को विदा किया।

हे श्रेणिक ! गौतम स्वामी कहने लगे—इस तरह सीता का स्वयंवर हुआ और राम-सीता का विवाह हुआ।

उपर्युक्त जैन-कथा से हमें कुछ नये तथ्य प्राप्त होते हैं जो जैन-परम्परा के दृष्टिकोण से रामकथा में आ गये हैं। ब्राह्मणो के ग्रंथो में राम को भगवान् का अवतार माना गया है और रामकथा की विभिन्न घटनाओं मे इस विश्वास को प्रतिपादित करने का भरसक प्रयत्न किया गया है लेकिन जैन-श्रावक तो ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं फिर राम को भगवान् का अवतार मानने का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैन देवताओं में अवश्य अप्रत्यक्ष रूप से विश्वास करते हैं। जैनों मे तीर्थंकर ब्राह्मणों के विष्णु के समान ही पूज्य हैं। ऋषभदेव आदि जैन तीर्थंकर थे जो इक्ष्वाकु-वंश मे वैदिक युग में पैदा हुए थे। ऋषभदेव का नाम वेद में आता है। ये जैन तीर्थंकर यद्यपि उस समय के महान् व्यक्ति थे लेकिन कालान्तर में आर्यों के इन्द्र के समान और आज एक देवता के समान ही मान जाते हैं तथा उनके साथ उसी तरह अवतारवाद की कल्पना की गई है। जैसे ब्राह्मणों ने विष्णु के साथ की है। राम को इक्ष्वाकुवंशीय ऋषभदेव का अवतार ही बताया गया है तभी तो राम के बारे में कहा गया है कि उसी इक्ष्वाकु वंश में श्रीतीर्थंकर देव फिर पैदा हुए हैं। इससे यह मालूम होता है कि जैन-परम्परा यद्यपि ब्राह्मण-परम्परा का प्रत्यक्ष में विरोध करती रही है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप मे अवश्य उससे प्रभावित हुई है। उसी प्रकार कर्मवाद को तो जैन-परम्परा ने ठीक उसी प्रकार स्वीकार कर लिया है जिस तरह ब्राह्मण-परम्परा ने

माना है। राजा जनक बार-बार कर्म और भाग्य की उसी प्रकार दु
तुलसी के राम-दैव की।

चमत्कारों का अभाव भी जैन पुराणों में नहीं है। जिस प्रकार
के कई पात्र हवा में उड़ने का सामर्थ्य रखते हैं, काया बदल सकते हैं
भी राजा जनक को ले जाने वाला चपलवेग नामक विद्याधर अश्व व
उड़ाकर रथनूपुर ले जाता है और फिर अपने पूर्वरूप में आजाता
वज्रावर्त्त और सागरावर्त्त धनुषों का वर्णन भी चमत्कारों से भरा है
धनुषों की विशालता दिखाने के लिये ही किया है।

उपर्युक्त जैन-कथा में राजा जनक का म्लेच्छों से संघर्ष होता है
इतिहास में आर्य-अनार्य-संघर्ष की ओर ही इंगित करता है। अनार्यों से
सहायता करने के लिये दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण आते हैं। 'वाल्मी
में राजा जनक का स्वयंवर में आने वाले अनेक राजाओं से वर्ष-भर तक
जब देवताओं की सेना राजा जनक की सहायता के लिये आती है तब व
पराजित करके भगाता है। ये दोनों घटनायें कुछ अंश तक प्रायः साम्य

इसके अलावा अन्य राम-कथाओं मे एक धनुष का उल्लेख मिल
के द्वारा दिया गया था। 'वाल्मीकीय रामायण' के ६६ वें सर्ग में जनक
और विश्वामित्र को धनुष के मिलने की कथा सुनाते हुए कहते हैं—
दक्षयज्ञ में अपना भाग न मिलने से क्रोधित शिव ने अपने धनुष से देव
करने का निश्चय किया उसी समय देवताओं ने शिव की प्रार्थना की।
होकर वह धनुष देवताओं को दे दिया। देवताओं ने उसको देवरात को दे
रात से ही यह धनुष मुझे प्राप्त हुआ है। जैन-कथा में दो धनुषों का
विद्याधरों के अधिपति चन्द्रगति ने जनक को दिये थे।

अन्य राम-कथाओं में धनुष-भंग का वर्णन मिलता है लेकिन उपर्यु
कथा में राम और लक्ष्मण इन दोनों धनुषों को केवल चढ़ाते हैं। इसमें लक्ष
विद्याधरों की कन्या का विवाह होता है और भरत के साथ जनक के भा
कन्या लोकसुन्दरी का।

इस तरह जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ेगी तथा अनेक अन्तर हमें प्राप्त

हम ऊपर लिख चुके हैं कि 'वाल्मीकीय रामायण' में धनुष-यज्ञ का
व्यवस्थित सभा के रूप में नहीं मिलता है, तुलसीदासजी कृत 'रामचरित मान
का भव्य वर्णन हुआ है। उस सभा में कायदे से भाट आते हैं, पहले जनक
विरदावलि गाते हैं, इसके पश्चात् राजा के प्रण की घोषणा करते हैं। उप
के रानियों और सीता को बहुत चिन्ता होती है, क्योंकि १०,००० राजा भी
लगकर उस धनुष को नहीं उठा पाये थे। नगर के सब लोग निराश हो

अब तो सीता का विवाह ही नहीं हो पायेगा। राम के सौन्दर्य को देखकर सब यह अभिलाषा कर रहे थे कि सीताजी का विवाह राम के साथ हो लेकिन उनके हृदय सशंकित थे कि राम इस कठोर धनुष को तोड़ पायेंगे या नहीं। वे कहने लगे :

हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिबाहू॥

जब कोई भी उस धनुष को हिला भी नहीं पाया तो राजा जनक निराश हो गये और कहने लगे

दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रंधीरा॥
कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहु न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुँअरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥
जौ जनतेऊँ बिनु भटभुवि भाई। तौ पनुकरि होतेऊँ न हँसाई॥

राजा के ये वचन तुलसी के अवतार राम के सामने अति कठोर थे। फौरन ही राम के छोटे भाई लक्ष्मण क्रोध से बोल उठे :

रघुबंसिन्हि महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥

× × ×

तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥

लक्ष्मण की वज्र के समान यह गर्जना सुनकर पृथ्वी कंपायमान हो गई। ऋषि विश्वामित्र और राम अपने हृदय में अत्यन्त पुलकायमान हो गये। राम ने इशारे से लक्ष्मण को अपने पास बिठा लिया फिर वे स्वयं ऋषि की आज्ञा लेकर उठे और पल-भर में ही उन्होंने धनुष को तोड़ डाला।

यह सारा प्रसंग तुलसीदासजी ने स्वयं ही अपनी नाटकीय प्रवृत्ति की सूझ से पैदा किया है। तुलसी का इस तरह का काव्यमय नाटकीय वर्णन अन्य रामायणों में इस तरह से नहीं मिलता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि अक्षुण्ण मर्यादा

के पालक तुलसी ने इस प्रसंग में मर्यादा का ध्यान करते हुए धनुर्य
का पूर्ण रूप से निर्माण किया है जिसमें 'अध्यात्म रामायण' जैसी कथा
नहीं बल्कि साहित्य के गुण तत्व 'औत्सुक्य' (Strangeness) का गुज

इसके अलावा इस प्रसंग के पीछे एक और रहस्य मालूम होता
के समय में प्रचलित तथा वेद विरोधी मतवादों का प्रभाव समाज में
था जो न तो राम के अवतारत्व में विश्वास करते थे और न अव
की पौराणिक कथाओं का विरोध करने से चूकते थे। अतएव इनको
अदृश्य था, प्रमाण करना था जिससे वशीभूत होकर उनकी रक्षा में म
राम के अलौकिक रूप को भूल गया है। इसी अज्ञान के वश में होकर
में भगवान् राम की उपस्थिति भूल गये थे और कुल-मर्यादा क
उनके इस अज्ञान का निराकरण उसी समय हुआ जब मिथिला-नगर में राम
हरी के समान उस विशाल धनुष को तोड़ दिया जिसे १०००० राज
सके थे। यह प्रसंग भक्ति के दृष्टिकोण से देखा जाय तो भगवान् की
रंग रखा जा सकता है। अगर भगवान् के लिये भक्त के हृदय में सच्ची
भगवान् उसके दिल की कामना अवश्य पूरी करते हैं। सीता के हृद
सच्ची भक्ति थी।

राम में परशुराम का आगमन

'वाल्मीकीय रामायण' में परशुराम राम को उस समय रास्ते
जब वे मिथिला से सीता के पाणिग्रहण के बाद अयोध्या जा रहे थे। उस
को पहले से ही भयाकुल हो गये थे। परशुराम ने आते ही राम
धनुष तोड़ने का कारण पूछा और फिर उनकी सामर्थ्य जानने के लिये
देवताओं का वह धनुष राम को दिया था जो उन्होंने एक बार विष्णु
जो शिव के धनुष से अधिक कठोर और भारी था। पहले तो परशुराम
कुल का बखान किया कि किस तरह उन्होंने हैहयवंशी क्षत्रियों को समूल न
था। यह सुनकर रामचन्द्र जी क्रोधित हो गये और कहने लगे—हे भा
सारे कृत्यों को मैं जानता हूँ परन्तु आप मुझे क्षत्रिय-धर्म से हीन और अ
कर मेरा निरादर करते हैं। अब आप मेरा पराक्रम देखिये।

राम ने विष्णु के धनुष को बाण लगाकर खींच डाला और परशुर
लगे—हे मुनि ! एक तो आप मेरे पूज्य ब्राह्मण हैं और दूसरे विश्वामित्र
पौत्र हैं इसलिये इस बाण से मैं तुम्हें मार तो सकता नहीं लेकिन यह व
नहीं जायगा। कहिये अब या तो आपकी आकाश-गमन आदि की गति को
परलोकों को इस बाण से नष्ट कर दूँ।

यह सुनकर परशुराम वीर्यहीन होकर राम की ओर देखने लगे और राम के तेज से जड़ के समान पराक्रमहीन हो गये।

परशुराम जी बोले—हे राघव ! जब मैंने सारी पृथ्वी कश्यप को दान कर दी थी तो उन्होंने मुझे इस पृथ्वी से निर्वासित कर दिया इसलिये मैं रात को इस पृथ्वी पर नहीं बसता अतः हे वीर ! मेरे परलोकों को नष्ट कर डालिये लेकिन मेरी गति को नष्ट न कीजिये। इस धनुष को चढ़ाने से मैं आपको देवताओं का स्वामी विष्णु मानता हूँ। आप त्रिलोकीनाथ हो। आपके हाथ से मेरा पराभव होना कोई लज्जा की बात नहीं है।

रामचन्द्र जी ने वह बाण छोड़कर परशुराम के सारे लोक नष्ट कर डाले।

'अध्यात्म रामायण' में परशुराम-सम्बन्धी घटना ठीक इसी प्रकार है लेकिन रामायण का विशेष रूप से आध्यात्मिक रूप होने के कारण परशुराम से राम की अनन्य भक्तिपूर्ण स्तुति कराई गई है। जिस प्रकार अज्ञान और अविवेक से आत्मा मायावश होकर देहादिक धर्म को अपना धर्म मानता है उसी प्रकार हे राघव ! मेरे अहम् ने आपके विष्णु-रूप को नहीं पहचाना। अब मैं आपको पुराणपुरुष जान गया हूँ इसलिये आप मुझे जन्म-जन्म तक अपने युगल चरणों में भक्ति दीजिये।

इसके अलावा परशुराम के तेजहीन होन की व्याख्या भी पहले ही प्रस्तुत कर दी गई है।

चक्रतीर्थ में जाकर परशुराम जी ने कठोर तपस्या की थी। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने परशुराम जी को वरदान दिया—हे ब्रह्मन ! अब तुम में मेरा तेज आजायगा जिससे तुम अपने कुल के शत्रु कार्तवीर्य को मारोगे और २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्रीय कर दोगे लेकिन फिर त्रेतायुग मे दशरथ के पुत्र राम के रूप में पैदा हूँगा उस समय तुम सीता-सहित मुझको देखोगे। तब मैं तुम्हारा सारा तेज फिर ग्रहण कर लूँगा।

'अध्यात्म रामायण' के इस कथन का विशेष महत्व है। हिन्दुओं में २४ अवतार माने गये हैं उनमें परशुराम भी एक हैं। इसीलिये 'अध्यात्म रामायण' के उपर्युक्त विवरण में उन्हें विष्णु के तेज से युक्त बताया गया है और उनके पराभव पर भी उनका तेज परब्रह्म के तेज में ही संग्रहीत होता दिखाया गया है जिससे जो विश्वास और मर्यादा धर्म में निहित हो चुकी है उसका किसी तरह उल्लंघन न हो। इस प्रसंग में एक अवतार द्वारा दूसरे अवतार का अपमान भी नहीं है बल्कि अवतारों की शक्ति का विष्णु की शक्ति में लय है। इसके अलावा पूरे परशुराम-संवाद को ऐतिहासिक तथ्यों से हटाकर भक्ति-स्रोत के रूप में, ही 'अध्यात्म रामायण' मे स्वीकार किया गया है।

'रामचरित मानस' में परशुराम जी धनुष-यज्ञ के समय ही मिथिला में आ जाते

हैं और सभा-मण्डप में आकर लाल-लाल नेत्रों से राजा जनक की ह
जनक से कहते हैं :

> अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै
> बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटऊँ महि जहँ लहि तव

जब परशुराम के क्रोध से राजा जनक भयभीत हो गये तो राम
भाव से कहा—हे मुनि ! आप वृथा क्रोध न करिये, शिव का धनुष म
ने ही तोड़ा है।

इस पर परशुराम जी का क्रोध और बढ़ गया। लक्ष्मण से यह
उन्होंने परशुराम से कहा :

> बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहु न असि रिस कीन्हि गो
> एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल

इस प्रकार ऋषि का क्रोध और भी भभक उठा और बहुत स
और परशुराम में वादविवाद होता रहा। ऋषि बार-बार चिढ़कर ल
के लिये अपना परशु दिखाते और दुहाई देते कि फिर कोई यह न कहना
की हत्या की। यह बालक अति नीच और ढीठ है।

लक्ष्मण अति व्यंगपूर्ण वाणी में परशुरामजी को उत्तर दे रहे
बार-बार अपने शौर्य का बखान करते तो लक्ष्मण उत्तर देते थे :

> अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बर

लक्ष्मण हर बात में उनका उपहास कर रहे थे। पूरा परशुराम-
तुलसीदास जी की अनुपम रचना है जिसकी समता किसी रामायण में न

जब बात बहुत बढ़ गई और परशुराम जी बार-बार अपना प
लगे तब राम उठे और उन्होंने अति विनीत स्वर में मर्यादानुकूल वचन
कहने लगे :

> छत्रिय तनधरि समर सकाना। कुल कलंक तेहिं पावँर आन
> कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंस
> बिप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेरा
> सुन मृदु गूढ़ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसु धर मति कै

यह सुनकर परशुराम जी को ज्ञान हो गया और उन्होंने अपना
के लिये कहा :

> राम रमापति कर धनु लेहू। खेंचहु मिटै मोर सन्देहू॥
> देत चाप आपहि चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

इसके बाद परशुराम अनेक तरह राम की स्तुति करके चले गये। इस प्रसंग में राम ने परशुराम जी का तेज नहीं छीना बल्कि धनुष के छूने से ही अपना प्रताप दिखा दिया। सम्भव हो सकता है कि तुलसीदास जी अपनी मर्यादा की सीमा के भीतर एक अवतार की शक्ति को दूसरे अवतार से नष्ट नहीं कराना चाहते थे, बल्कि उनका तात्पर्य तो इतना ही था कि परशुराम को राम के अलौकिक रूप का ज्ञान करा दें। इसके अलावा उपर्युक्त प्रसंग में क्षात्र-धर्म, ब्राह्मण-गौरव आदि की मर्यादाओं को भी तुलसीदास जी ने अपनी लेखनी से पूरी तरह निबाहा है।

इनके अलावा 'पद्मपुराण' में यह प्रसंग 'वाल्मीकीय रामायण' जैसा है। 'श्रीमद्भागवत' में तथा 'विष्णुपुराण' में भी यही कथा है। 'अद्भुत रामायण' में तो धनुष-यज्ञ का कहीं वर्णन नहीं मिलता। उसमें केवल इतना है :

रामचन्द्र दशरथजी के सम्मुख जानकी का पाणिग्रहण करके माताओं सहित तथा जानकी-सहित अयोध्या जाने लगे। मार्ग में भार्गवनन्दन परशुराम उन महापराक्रमी रामचन्द्र का अद्भुत विवाह-कौतुक श्रवण कर मार्ग में उनसे मिले। वह क्षत्रिय-नाशक दिव्य धनुष लेकर रामचन्द्र के बल जानने की इच्छा से आये। उन शस्त्र उठाये परशुराम को खड़े देखकर हँसते हुए रामचन्द्र उन विप्रेन्द्र से बोले—हे मुनि श्रेष्ठ! कहिए आपका कैसे आना हुआ। आपका स्वागत है।

तब भार्गव कहने लगे—हमें स्वागत से क्या प्रयोजन है। हे राजेन्द्र! यह मेरे हाथ में क्षत्रियों का कालस्वरूप धनुष है, यदि समर्थ हों तो आप इसे चढ़ाइये।

यह सुनकर परशुराम से रामचन्द्र बोले—आप हम पर आक्षेप न करिये। क्षत्रियों को ब्राह्मणों के साथ अपना बल प्रकाश करना उचित नहीं है और विशेषकर इक्ष्वाकुवंशी ब्राह्मणों के सम्मुख अपने बहुवीर्य का कथन नहीं करते।

यह सुनकर परशुराम बोले—हे राम! वाणी का उपदेश मत करो। धनुष चढ़ाओ।

तब क्रोध कर राम ने धनुष ले लिया। जब वह धनुष रामचन्द्र के हाथ में आया तब लीला से ही उन्होंने उसे चढ़ा लिया और हँसते हुए ऐसा शब्द किया कि सब प्राणी घबरा गये। तब रघुनंदन परशुराम से बोले—हे ब्रह्मन्! धनुष तो चढ़ा लिया, कहिये अब और क्या करूँ। तब परशुराम जी ने एक तीक्ष्ण बाण रामचन्द्र जी को दिया। रामचन्द्र जी ने उसे कान तक खींच कर कहा—तुम अभिमान से पूर्ण हो और क्षत्रियों से अधिक स्पर्धा करके उनके बल पर आक्षेप करते हो। तुम मेरा दर्शन करो। मैं तुमको नेत्र प्रदान करता हूँ।

यह कहकर राम ने उन्हें दिव्य नेत्र दिये। तब परशुराम जी ने रामचन्द्र जी के शरीर में आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण [illegible] अश्विनीकुमार, यक्ष, गन्धर्व,

राक्षस, यक्ष, नदी, तीर्थ, ऋषि और ब्रह्मभूत, सनातन लोक, सब देव
वेद, उपनिषद्, वषट्कार, । यज्ञ, ऋक्, यजु साम, सम्पूर्ण धनुर्वेद देवें

तब विद्युत् मेघवृन्द चलायमान हो गये। उस समय विष्णु ने
छोड़ा। उस समय सब जगत् उल्का और अशनि से व्याप्त हो गया और
होने लगी। मेघ-समूह आकाश में छा गए। पृथ्वी को कँपाता हुआ
जिसने परशुराम जी के तेज को छीन लिया। जब परशुराम जी को ज्ञा
विष्णु को प्रणाम करके महेन्द्राचल पर्वत पर चले गये।

इसके पश्चात् उनके पितरों के कहने से दीप्तोद नामक तीर्थ में व
वाली पवित्र नदी में स्नान करके फिर परशुराम जी को अपना खोया हु
हुआ।

उपर्युक्त कथा का अन्य कथाओं से अन्तर तो स्पष्ट ही है।
में तो न शिव के धनुष का न विष्णु के धनुष का कहीं जिक्र है।

'सूरसागर' में भी परशुराम जी रामचन्द्र जी को अयोध्या जाते
ही मिलते हैं। उसमें रामचन्द्र जी ने सायक पर धनुष चढ़ाकर न तो उन
है और न किसी प्रकार का क्रोध किया है। यहाँ तो एक पद में संक्षेप मे
का वर्णन कर दिया गया है।

'जैन पद्म-पुराण' में परशुराम जी का नाम नहीं मिलता है। परशु
कोप शिव-धनुष के टूटने पर ही है लेकिन जैन-कथा में तो शिव का
है बल्कि वे तो विद्याधरों के धनुष हैं, वज्रावर्त्त और सागरावर्त जिन्हें राम
ने चढ़ाया है।

सारी उपर्युक्त कथा को विभिन्न ग्रंथों में अपने तुलनात्मक रूप
करने के पश्चात् हमें ऐतिहासिक दृष्टि से भी उस घटना पर विचार कर
परशुराम भृगु के वंश में पैदा हुए ब्राह्मण थे। भार्गवों का हैहय क्षत्रिय
संघर्ष था। मूल रूप में तो यह वर ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष था जो सत्ययुग
ही शक्ति के लिए प्रारम्भ हो गया था। विश्वामित्र और वसिष्ठ का युद्ध इ
एक घटना है। इस प्रकार परशुराम और हैहयों का युद्ध भी इसी
द्योतक है।

यह घटना अत्यंत प्रसिद्ध है कि परशुराम ने सारी पृथ्वी जीत
ब्राह्मणों में कुछ आपसी विरोध खड़ा होता देख यह उसे कश्यप मुनि
निर्वासित किया जाकर दक्षिण चला गया था। यही परशुराम हमें त्रेतायुग
साथ विवाद करते मिलते हैं। विद्वानों का मत है कि परशुराम का है
कोई सत्ययुग के अन्त की घटना है।

मेरा मत है कि परशुराम एक व्यक्ति न होकर अपने नाम पे सम्प्रदाय था, ऐसा प्रतीत होता है।[1] हो सकता है पशु धारण करने वे का सम्प्रदाय ही इस नाम से विख्यात हो और उन्होंने शायद त्रेता में रा (आश्रय) का विरोध किया हो। आज भी पशु धारण करने वाले ब्राह्मणों की शाखा भारत में मिलती है। रामायण में परशुराम की हार इस बात को स्पष्ट करती है कि उस समय समाज मे वह असहिष्णु ब्राह्मणवाद मान्य नही था जो क्षत्रियों के साथ मिलकर शासन करके, अपने अखण्ड शासन के ही स्वप्न देखता था। मूल रूप में यही तो विरोध था जिससे परशुराम को कश्यप ने पृथ्वी से निर्वासित कर दिया था क्योंकि कश्यप और उसके साथ सारे ब्राह्मण उस समय ब्राह्मण और क्षत्रियों के समझौते के पक्ष में थे जिसे परशुराम स्वीकार नही करता था। उस परिस्थिति में जब एक तरफ शूद्र और दास सिर उठा रहे थे दूसरी ओर वैश्य सत्ता को हथिया लेना चाहते थे ब्राह्मणों के लिए रक्षा का क्या मार्ग हो सकता था। यही कि क्षत्रियों का स्वीकार करें और उनकी सहायता से निम्न वर्गों से समाज मे उच्छृंखलता को नष्ट कर दें। कश्यप के आदेश से ढूंढकर क्षत्रिय लाये गये। ब्राह्मण ने उन्हे नेता माना और उन्होंने भी ब्राह्मण को पूज्य माना लेकिन परशुराम इस सबसे असहमत हो दक्षिण की ओर चला गया।

उन्ही भार्गव ब्राह्मणों में कुछ का क्षत्रिय-विरोध राम के समय तक चला मालूम होता है लेकिन जनता से, यहाँ तक कि ब्राह्मणों से ही उसको कोई सहायता न होने से वह विरोध दब गया और क्षत्रिय आने वाली शताब्दियों के लिए राजा हो गया, ब्राह्मण गुरु बनकर अपना गौरव बनाये रहा।

यह तो उस युग का संक्षिप्त ऐतिहासिक विश्लेषण है। बाद में रामायणों में तो परशुराम की हार विष्णु के अवतार राम से कराई गई है न कि क्षत्रिय राम से। यही कारण है कि यद्यपि रामायणें प्रायः ब्राह्मणों द्वारा ही लिखी गईं लेकिन उनमें राम के सामने ब्रह्मर्षि परशुराम का पराभव दिखाने मे वे तनिक भी नहीं हिचकिचाये। अगर राम के साथ अवतारवाद की कल्पना न की जाती तो सम्भव था कि घटना में दृष्टिकोण का परिवर्तन अवश्य आ जाता। क्योंकि जहाँ तुलसी अपनी रामायण में ब्राह्मण के गिरते गौरव को फिर से उठाने के लिए प्रयत्न करते हैं वहाँ वे स्वयं अपनी लेखनी से एक क्षत्रिय द्वारा एक ब्रह्मर्षि का निरादर कैसे स्वीकार कर लेते। लेकिन अगर वस्तुस्थिति और गम्भीरता से विचार करें तो और भी अनेक तत्व प्राप्त हो सकते हैं। तुलसीदास का युग वह महत्वपूर्ण समय था जब ब्राह्मणवाद अपनी पुरानी जर्जरित परम्परा को छोड़कर अपने को नयी व्यवस्था में खपाने का सजग प्रयत्न कर रहा था। इस नयी परम्परा के नेता तुलसीदास थे जिन्होंने पहले-पहल

---

१. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास।

अपनी रामकथा को लोकभाषा में लिखकर निगमागमसम्मत मार्ग
लिये हरएक को मुक्त कर दिया और ब्राह्मणवाद की नींव पर मर्या
दीवार खड़ी की। तुलसी उस असहिष्णु ब्राह्मणवाद का समर्थन नहीं
को देव भाषा से अलग अन्य भाषा में लिखना नहीं चाहते थे और न
किसी तरह की रियायत ही देना चाहते थे। वैष्णव सम्प्रदाय की
में दीक्षित तुलसी कम-से-कम ऐसे जड़ और असहिष्णु ब्राह्मणवाद को
करना चाहते थे जो बदली परिस्थिति में परशुराम की तरह समाज को
योग नहीं देना चाहता था।

विवाह-वर्णन

यद्यपि मूल रूप में रामायणों में विवाह के वर्णन में अधिक
लेकिन फिर भी युग का साहित्य की विषयवस्तु पर पर्याप्त रूप से प्रभ
कोई सामाजिक या धार्मिक प्रथा यद्यपि पुराने नियमों पर मूल रूप से अ
है लेकिन विभिन्न समयों में युग की चेतना के अनुसार उसके रूप मे
परिवर्तन आजाता है। उसी तरह का अन्तर हमें रामायणों में वर्णि
वर्णनों में मिलता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित विवाह का वर्णन
के समाज में प्रचलित यज्ञादि को अधिक महत्व देता है जबकि तुल
'मानस' में वर्णित विवाह-वर्णन में मध्यकालीन राजपूत-प्रणाली के विव
छाप है।

यहाँ हम संक्षेप में प्रत्येक राम-कथा में वर्णित विवाह की रूप
अन्तर स्पष्ट करेंगे।

वाल्मीकीय रामायण

(१) ऋषि वसिष्ठ विश्वामित्र की सम्मति से राजा दशरथ की ग
वर्णन करते हैं। इसके पश्चात् राजा जनक अपने वंश का परिचय देते हैं।

(२) राजा दशरथ प्रातःकाल उठकर जनवासे में श्राद्ध-कर्म और
करते हैं। असंख्य गायें जिनके सींग सोने से मढे थे बछड़ों सहित ब्राह्मणों

(३) वसिष्ठ ऋषि विश्वामित्र और शतानन्द को साथ लेकर य
वेदी बनाते हैं और सुवर्ण के बने हुए पात्रों से, धूपपात्र और शङ्ख के पात्रों
अक्षतों से, स्रुवा, अर्घ्यपात्र और लावा से भरे छोटे-छोटे पात्रों से उस वेदी को
करते हैं। राजा जनक सीता को लाकर अग्नि के पास पाणिग्रहण कराते हैं।

(४) चारों भाई चारों कन्याओं के हाथ पकड़ कर वसिष्ठ मुनि की
पत्नियों को साथ ले अग्नि, वेदी, जनक और महात्मा ऋषियों की प्रदक्षिणा
से विवाहादि के सब होमादि कर्म करते हैं।

(५) अन्त में काफी दहेज देते हैं।

अध्यात्म रामायण

(१) 'वाल्मीकीय रामायण' में वसिष्ठ ऋषि वेदी पर मन्त्रों के साथ बराबर कुशों को बिछाते हैं और उस पर रामचन्द्र जी बैठते हैं, यह प्राचीन आर्यों के आचार-विचार पर प्रकाश डालता है, परन्तु 'अध्यात्म रामायण' मे विवाह मण्डप कैसा है। उसके रत्नजटित खम्भे हैं, चारों तरफ बंदनवार बंध रही है, जिसमे सुन्दर चदोवा लटका है, मोतियों की लड़ियाँ और सोने-चाँदी के पुष्प लटके हुए हैं। भेरी, दुदुंभी आदि मंगल बाजे बज रहे हैं, गान और नृत्य हो रहा है। उस मण्डप के बीच रत्न-जटित सुवर्ण का सिंहासन है उस पर रामचन्द्र जी बैठते हैं। राजा जनक राम के चरणो को धोकर चरणामृत पीते हैं।

इसके अलावा दोनों उपर्युक्त रामायणों के वर्णन में अधिक अन्तर नहीं है।

तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' में विवाह का वर्णन निम्न प्रकार है :

(१) जनकपुर में राम की बरात आती है। कुछ दिन बाद ग्रह, तिथि, नक्षत्र योग और श्रेष्ठ वार देखकर ब्रह्माजी लग्न शोधते हैं। लग्न पत्रिका को लेकर नारदजी जनक के यहाँ जाते हैं।

(२) राजा जनक पुरोहित शतानन्द जी को साथ लेकर जनवासे मे बरात को लेने जाते हैं। शुभ शकुन की वस्तुएँ दधि, दूर्वा आदि सजाई जाती हैं, सुन्दर सुहागिनि स्त्रियाँ गीत गाती हैं।

(३) सब देवता हृदय मे गद्गद होकर विवाह की शोभा देखने आते हैं।

(४) राजकुमार चंचल-घोड़ों को नचाते हुए चलते हैं, मागध और भाट विरुदावलि सुनाते चल रहे हैं। रामचन्द्र जी का घोड़ा तो इतना सुन्दर है मानो कामदेव स्वयं ही घोड़े का वेष बनाकर आया हो।

(५) बरात की शोभा देखकर सभी पुरजन हर्षित हो रहे हैं। बड़े जोर के नगाड़े बज रहे हैं। देवता 'श्रीराम की जय' कहकर फूल बरसा रहे हैं। बरात को आता देख रानी सुहागिनि स्त्रियों को बुलाकर परछन के लिये मंगल द्रव्य सजाती है। मंगल-द्रव्यों को सजा गजगामिनि उत्तम स्त्रियाँ अगवानी के लिये बढ़ती हैं।

स्त्रियों के आभूषणादि का वर्णन राजपूत-कालीन रुचि की ओर इंगित करता है।

(६) रानी कुलाचार के अनुसार सारा व्यवहार करती है तब राम मण्डप में आते हैं। स्त्रियाँ ढेर-के-ढेर मणि, वस्त्र और गहने न्योछावर करके मंगल-गीत गा रही हैं।

(७) नाई बारी, भाट और नट न्योछावर पाकर अति प्रसन्न हो रहे हैं।

(८) समधी आपस में मिलते हैं। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देकर जनकजी आदरपूर्वक दशरथ को मण्डप में ले आते हैं।

विवाह से भरतमिलाप तक

विवाह के पश्चात् बारह बरस तक सब भाई घर पर आराम से रहे। कुछ दिन के लिये भरत तथा शत्रुघ्न अपने मामा के घर चले गये थे। राजा दशरथ वृद्ध हो चले थे और उधर राम सब तरह से समर्थ और लोकप्रिय थे इसलिये राजा दशरथ ने यह निश्चय किया कि राम का यौवराज्याभिषेक कर दिया जाय। राजा ने सम्मति के लिये बहुत से नगरों और राष्ट्रों के राजाओं को बुलाया और उनके सामने प्रस्ताव रखा। सबने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। राजा कुशल राजनीतिज्ञ था। उसने राजाओं से कहा—हे राजा लोगो! पृथ्वी का पालन तो मैं धर्मपूर्वक कर रहा हूँ फिर आप लोग युवराज क्यों चाहते हैं।

यह सुनकर राजा लोग अनेक तरह से रामचन्द्र के गुणों का बखान करने लगे। राम के गुणों के इस लम्बे विवरण में राम के दो रूप हमें मिलते हैं—(१) राम एक कुशल लोकप्रिय सामन्त, (२) राम तीनों लोकों के पालन करने वाले विष्णु के तुल्य। दूसरा रूप गौण है, पहला ही रूप अपने आदर्शयुक्त गुणों को लेकर प्रमुखता रखता है। इसमें अलौकिक के प्रति किसी प्रकार की भक्ति नहीं है बल्कि राजनीतिक के विविध अंगों का वर्णन है।

जब राजा को इस परिवर्तन से राष्ट्र की शान्ति और सुरक्षा में किसी तरह की बाधा उपस्थित होती हुई नहीं दीखी तो उसने राम के यौवराज्याभिषेक की घोषणा कर दी। अभिषेक की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। राजा ने राम को बुलाकर यह शुभ संदेश उनसे कह दिया। उस समय राजा की सभा में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण के आर्य, अनार्य, वन्य तथा पर्वतीय देशों के रहने वाले राजा तक बैठे थे। यह वर्णन कुछ हद तक परवर्ती है। राम के समय में आर्य और अनार्य जातियों में इतनी अधिक सहिष्णुता नहीं पनपी थी और राम के पश्चात् ही दक्षिण की अनार्य जातियों से इक्ष्वाकुवंशीयों का अधिक सम्पर्क आया है।

यौवराज्याभिषेक के अवसर पर राजा दशरथ भरत-शत्रुघ्न को नहीं बुलाना

चाहते थे क्योंकि सम्भव है यह उन्हें न रुचे, चाहे भरत अति धर्मात्मा है, पर यदि वह राज्य के लिये झगड़ा करे। यह बात दशरथ ने राम के सामने ही कह दी थी।

महोत्सव की तैयारी में नगर सर्व प्रकार से सुसज्जित हो रहा था। कैकेयी की दासी मन्थरा ने यह देखा। उससे राम का यह वैभव बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने कैकेयी को उसके स्वार्थ का ध्यान दिलाते हुए भड़काया। कैकेयी पहले तो राम के बारे में अन्यथा सोचती हुई झिझकी लेकिन स्वार्थ मनुष्य से क्या नहीं करा लेता। मन्थरा ने उसे जाल में फाँस ही लिया और अपने पुत्र भरत को राज्य दिलाने के लिये कैकेयी ने राजा के दिये दो वरदानों को माँगा—(१) राम को १४ वर्ष का दण्डकारण्य में निवास, (२) भरत को राज्याभिषेक।

इस पर राजा को बहुत शोक हुआ। वे राम के दुःख में पागल-से हो गये। कैकेयी को हर तरह समझाने लगे। हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना करते कि वह अपने वरों को वापस ले ले। कैकेयी अपने निश्चय से नहीं हटी। राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने भी रानी को बहुत फटकारा। रानी ने किसी की बात न मानकर राम, लक्ष्मण और सीता को वन-वासियों के वस्त्र दे दिये।

राम ने इस घटना के लिये दैव को उत्तरदायी ठहराया। लक्ष्मण ने क्रोधपूर्वक इसका विरोध किया और इस सबको अन्याय कहा। उन्होंने भरत को मारने की बात भी कही। अन्त में वे शान्त हो गये। राम ने उन्हें अपने साथ चलने की अनुमति दे दी। सीता भी किसी तरह न मानी और देव-तुल्य अपने पति के साथ चलीं।

जब वे तीनों वन को जाने लगे तो राजा ने साथ चलने को कहा, पर यह कैसे हो सकता था। अन्त में उसने कहा कि इनके साथ सेना, खजाना, वेश्याएँ, दास, दासियाँ भेजी जायें। कैकेयी यह देखकर डर गई और कहने लगी—हे साधो! जिसका सारांश खींच लिया गया हो ऐसे स्वादहीन मद्य की तरह धनहीन और शून्य राज्य को भरत न लेंगे।

यह सुनकर राजा उसे बहुत धिक्कार देने लगे। अन्त में राजा से आज्ञा ले राम, लक्ष्मण और सीता वन को चल दिये। सुमन्त्र राजा की आज्ञा से उन्हें रथ में पहुँचाने गया। वन जाने से पहले राम ने रत्न और मणियों का दान ब्राह्मण और याचकों को दिया था।

उपर्युक्त वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' का है जो बहुत कुछ चमत्कारों से हटा कर हमारे सामने एक ऐतिहासिक घटना को प्रस्तुत करता है। इसमें राम के भगवान् रूप की भी व्याख्या एकाध स्थल पर ही है। अब इसकी तुलना में हम 'अध्यात्म-रामायण' के वनगमन के प्रसंग को रखेंगे जो अनेकों चमत्कारों से भरा ऐतिहासिकता के नाम पर केवल आध्यात्मिक पक्ष को बल देने के लिये किया गया। कथा मूल-रूप

में यही है लेकिन कथाकार की विषयवस्तु पर पहुँच (approach) दूसरे प्रकार की है।

एक समय महल में रत्नजटित सिंहासन पर नील-कमल के तुल्य श्याम वर्ण वाले श्रीराम विराजमान थे। सीताजी चंवर डुला रही थीं। ब्रह्मलोक से देवताओं के भेजे नारद आये और उन्होंने एक पूरे स्तोत्र-रूप में राम के गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करके उनसे देवताओं का संदेश कहा। वे कहने लगे—हे भगवान् ! ब्रह्माजी का भेजा हुआ मैं आपके पास आया हूँ। आप इस पृथ्वी पर रावण के वध के लिये अवतरित हुए हैं और हे रघुमत्त ! राजा दशरथ आपका राज्याभिषेक करेंगे तो राज्य-कार्य में आसक्त हो आप राक्षस रावण को कैसे मारेंगे। इससे आपने पृथ्वी का भार उतारने की जो प्रतिज्ञा की वह वृथा जायेगी। उस प्रतिज्ञा को सत्य कीजिये। आप ही लोक में सत्यसिंधु विख्यात हैं।

नारद की यह बात सुनकर रामचन्द्र जी मुस्कराते हुए बोले—हे नारद ! मुझको किसी समय मे भी कुछ अविदित नही है। जो मैंने पहले प्रतिज्ञा की है उसे मैं अवश्य सत्य करूँगा और असुरों के भार से पृथ्वी को मुक्त करूँगा। मैं महाबली रावण को मारने के लिये प्रातःकाल ही दण्डक वन को जाऊँगा। वहाँ वन में चौदह वर्ष रहकर सीता को माध्यम बनाकर दुराचारी रावण को अवश्य मारूँगा।

जब नारदजी ने भगवान् रामचन्द्र की यह धर्मयुक्त वाणी सुनी तो उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की और ब्रह्मलोक चले गये।

अन्त में लिखा है कि जो कोई इस नारद-राम संवाद को भक्ति से पढेगा या श्रवण करेगा वह संसार के विषयों से मुक्त होकर देव-दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करेगा। आगे के पूरे प्रसंग की यह भूमिका है जिसमें सब कुछ पहले से ही मालूम है इसमें भाग्य, दैवादि का स्थान ही नही है जैसे राम 'वाल्मीकीय रामायण' मे दैव को कोसते हैं। वनगमन तो इसमें कोई दुर्घटना के रूप में नहीं है बल्कि यह तो कर्तव्य के पथ पर भगवान् की लीला-मात्र ही है। इस तरह की भूमिकाएँ कथा के महत्वपूर्ण तत्व आकर्षण की ओर थोड़ी भी दृष्टि नही देतीं और इसीलिये इस तरह के प्रसंगों की कथा मे आध्यात्मिक महत्ता हो सकती है, उनका नाटकीय महत्व कुछ नही है। यह मूल में धार्मिक उपदेश तथा भक्ति के स्रोतों का संग्रह-मात्र कहा जा सकता है जिसमें कथा का सूत्र अत्यन्त जीर्ण है।

इसी प्रकार जब राम के यौवराज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं तो कैकेयी भी प्रसन्नता से दुर्गादेवी की पूजा कर रही थी। देवताओं को चिन्ता होने लगी कि अगर राम राजा हो गये तो पृथ्वी के भार-स्वरूप राक्षसों का वध किस प्रकार कर सकेंगे। उन्होंने सरस्वती देवी से प्रार्थना की कि हे देवी ! तुम अयोध्या जाओ और राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करो। ब्रह्मा की आज्ञा है कि तुम मंथरा की बुद्धि

में प्रवेश करो। सरस्वती ने मंथरा की बुद्धि उलट दी। उसे राम के राज्याभिषेक में सब अशुभ ही दीखने लगा।

इसके पश्चात् मंथरा की कुमन्त्रणा, कैकेयी के कोप तथा वरदानों का उसी प्रकार का वर्णन है।

इसमें सुमन्त्र रानी को बुरा-भला नहीं कहते और न लक्ष्मण ही राम के सामने भाग्य को चुनौती देते हैं।

दशरथ के विलाप का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में अधिक मर्मस्पर्शी है। इसके अलावा जब कौशल्या राम के विछोह की कल्पना करके अत्यन्त शोक करती है और मृत्यु की दुहाई देती है, उस समय लक्ष्मण को भी क्रोध आ जाता है। तब राम दर्शनशास्त्र सम्बन्धी एक उपदेश उनको देते हैं और उनकी शंकाओं का निवारण करते हैं। वे कहते हैं—हे लक्ष्मण! क्रोध संसार में बंधन का कारण है, धर्म का क्षय करने वाला ही क्रोध है। हे लक्ष्मण! सन्तोष ही शान्ति का मूल कारण है। अपनी आत्मा को पहचान। जो पुरुष देह-इन्द्रिय-प्राण इनसे भिन्न आत्मा को नहीं जानते वे संसार के घोर दुःखों में पड़े हुए जन्म-मरण के बन्धनों से कभी नहीं छूटते हैं।

इस तरह आत्मज्ञान पर ही अधिक जोर देते हुए राम ने निर्लिप्त रहने को संसार में सर्वश्रेष्ठ बताया। 'वाल्मीकीय रामायण' में प्रसंगानुकूल मानवगत भावों पर ही अधिक प्रकाश डाला है उसमें किसी प्रकार के दार्शनिक वादविवाद की प्रमुखता नहीं है।

'अध्यात्म रामायण' में दशरथ राम के साथ सेना, खजाना, वेश्याएँ तथा अन्य वस्तुएँ भेजने को नहीं कहते हैं।

'रामचरित मानस' में भी सरस्वती मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट करती है लेकिन सरस्वती देवताओं की यह प्रार्थना स्वीकार करने से पहले संकोच करती है। फिर देवताओं की नीच बुद्धि पर तथा पृथ्वी के भावी कल्याण को सोचकर सरस्वती यह काम करने के लिये तैयार हो जाती है।

इसके बाद मंथरा की कुमन्त्रणा का वर्णन उसी प्रकार का है लेकिन इसमें विशेषता यह है कि मंथरा कोरे भावावेश में ही यह सब कुछ षड्यन्त्र पूरा नहीं करती बल्कि वह बड़ी कुशलता से अनेक उतार-चढ़ाव देकर कैकेयी के हृदय को बदलती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जितना तुलसी का वर्णन मंथरा के बारे में पूर्ण है उतना किसी अन्य कथाकार का नहीं। मंथरा जब अपनी बात का प्रभाव कैकेयी के हृदय पर जमते नहीं देखती है तो एक तरफ तो बहुत गहरी चाल से अपने मंतव्य को पूरा करने का प्रयत्न करती है, दूसरी ओर वह रानी की सहानुभूति का पात्र भी बनती है। अपने

को दुःखी और निराश दिखाते हुए वह कहती है :

> कहहि झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करइ मैं माई ॥
> हमहूँ कहबि अब ठकुर सोहाती। नाहिंत मौन रहब दिन राती ॥
> करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
> कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥
> जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
> तातें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी ॥

'वाल्मीकीय रामायण' में राजा दशरथ ने विभिन्न राज्यों के राजाओं को बुलाकर उनकी अनुमति से राम के राज्याभिषेक की घोषणा की थी लेकिन 'मानस' में ऋषि वशिष्ठ की सलाह से राजा इस विषय पर राजसभा में विचार करते हैं और अन्त में कहते हैं :

> जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका।

इसमें 'पाँचहि' का मतलब जनमत से है, मुहावरा भी तो है 'पांच-पांच की राय' लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में विषय अपने साधारण रूप में न होकर राज्यतन्त्र की नीति पर विशेष प्रकार से दृष्टि डालता है।

इसके पश्चात् सीता का राम के साथ चलने का अनुरोध सब ग्रन्थों में एक ही तरह आदर्श पतिव्रत धर्म पर प्रकाश डालता है। लक्ष्मण इसमें अत्यंत सरलता और सीवेपन से राम को राजी कर लेते हैं जिससे वे उन्हें साथ ले चलें।

अन्त में जब राजा की आज्ञा से सुमन्त्र राम, लक्ष्मण और सीता को पहुँचाने गये तो राजा ने रोते हुए कहा—हे सखा !

> सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनक सुता सुकुमारि।
> रथ चढ़ाइ देखराइ बनु, फिरेहु गएँ दिन चारि ॥

अगर राम-लक्ष्मण न लौटें तो तुम सीता को तो अवश्य लौटा कर ले आना। श्रीराम से तुम इसकी प्रार्थना करना। जब सीता वन को देखकर डरें तो कहना—हे पुत्री ! सास-श्वसुर की आज्ञा मान कर अयोध्या चलो।

यह कहकर राजा विलाप करते हुए मूच्छित हो गये। यहाँ राजा का शोक चरम सीमा पर पहुँच गया था। 'वाल्मीकीय रामायण' में राजा के शोक की अत्यंत सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है लेकिन तुलसी भी इस प्रसंग में उनसे पीछे नहीं रहे हैं।

इसके अलावा 'रामचरित मानस' के वर्णन में हर एक स्थल पर मर्यादा और राम के भगवान्-रूप में आदर्श का हमेशा ध्यान रखा गया है। वाल्मीकीय में कथाकार स्वाभाविक चित्रण में इतना चौकन्ना नहीं है।

उपर्युक्त कथा ब्राह्मणों द्वारा लिखी रामायणों की है। इसके अलावा हमारे

अध्ययन में आये अन्य रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थों के वन-गमन-प्रसंग का भी सूत्राधार वही है।

'जैन पद्मपुराण' में भी राम-वन-गमन का प्रसंग है लेकिन उसका आधार न्यूनतम अंश में भी उपर्युक्त कथा में नहीं है। वह कथा बड़ी विचित्र, अप्रचलित और नई तरह की है। हम मोटे रूप में उस कथा को 'जैन पद्मपुराण' से उद्धृत करते हैं।

राजा श्रेणिक गौतम स्वामी से पूछते हैं—हे प्रभो! राजा अरण्य के पुत्र राजा दशरथ और श्रीराम लक्ष्मण का सारा वृत्तान्त मैं आपसे सुनना चाहता हूँ।

गौतम गणधर वह यथार्थ कथन ' राजा से कहने लगे जो सर्वज्ञदेव वीतराग ने कहा था। उन्होंने कहा—जब राजा दशरथ बहुत से मुनियों का दर्शन करने गये तो वे सर्वभूतहित स्वामी को नमस्कार करके कहने लगे—हे स्वामी! मैं संसार में अनन्त जन्म धारण किये हुए कई भवों की वार्त्ता आपसे सुनकर संसार को अब छोड़ना चाहता हूँ। राजा की यह अभिलाषा जान साधु उनसे कहने लगे :

हे राजन्! सब संसार के जीव अनादिकाल से अनन्त जन्म-मरण करते दुःख ही भोगते आये हैं। इस जगत् में तीन तरह के कर्म हैं, उत्तम, मध्यम और जघन्य। मोक्ष सबमें उत्तम है जिसे पंचमगति कहते हैं। यह पंचमगति कल्याण-रूपिणी है जहाँ अधिक आवागमन नहीं है। इस अनन्त सुख के शुद्ध पद को इन्द्रिय विषयों में आसक्त प्राणी नहीं प्राप्त कर सकते। यह त्रैलोक्य अनादि और अनन्त। इसमें स्थावर-जंगम जीव अपने-अपने कर्मों से बँधे नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण करते हैं। इस तरह अनन्त काल व्यतीत हो जायगा, काल का अन्त नहीं है। अज्ञान अनन्त दुःख का कारण है। रागादि विषय में पड़े प्राणी संसार-सागर से मुक्त कैसे हो सकते हैं।

हे राजा! हस्तिनापुर में उपास्तनामा एक पुरुष था। उसकी स्त्री का नाम दीपनी था। वह स्त्री अति क्रोधी स्वभाव की थी। साधुओं की निन्दा करती थी और कभी दानादि धर्म नहीं करती थी। वह भवसागर में अनन्तकाल तक भ्रमण करती हुई जम्बपुर नगर में मद्रनामा मनुष्य की स्त्री हुई। उसका पुत्र धारणनामा था जिसकी अति दानी स्वभाव की नयनसुन्दरी नामक पत्नी थी। अन्त में वह स्त्री भी शरीर तज कर धातुकीखण्ड द्वीप में उत्तरकुरु भोगभूमि में देवतुल्य सुख पाकर वहाँ से चलकर पुष्पावती नगरी में राजा नन्दिघोष की रानी हो गई। एक दिन राजा नन्दिघोष यशोधर नामक मुनि का उपदेश सुनकर संन्यासी हो गया। नन्दिवर्धन को उसने राज्य दे दिया। महातपस्या करके संन्यासी राजा स्वर्गलोक चला गया।

नन्दिवर्धन भी श्रावक का व्रत धारण करके अन्तकाल समाधि लगाकर देव-लोक चला गया। वहाँ से चलकर पश्चिम विदेह में विजयार्ध पर्वत पर शशिपुर

नामक नगर में राजा रत्नमाली की रानी विद्युल्लता के सूर्यजय नामक पुत्र हुआ। एक दिन रत्नमाली महाबलवान् सिंहपुर के राजा वज्रलोचन से युद्ध करने गया। युद्ध के बीच एक देव आकर कहने लगा—हे रत्नमाली ! अब तू क्रोध छोड़ दे। मैं तेरे पूर्व जन्म की बात तुझसे कहता हूँ। भरत क्षेत्र मे गांधारी नगरी में राजा भूति था। उसका पुरोहित उपमन्यु था। राजा और पुरोहित दोनों पापी मांसभक्षी थे। एक समय राजा ने गर्भस्वामी का उपदेश सुनकर यह प्रण किया कि मैं अब बुरे आचरण नहीं करूँगा परन्तु पुरोहित ने यह प्रण तुड़वा दिया। एक समय शत्रुओं ने राजा पर आक्रमण किया। राजा और पुरोहित दोनों मारे गये। पुरोहित का जीव हाथी हुआ। वह हाथी युद्ध में घायल होकर अन्त मे नमोकार मंत्र का श्रवण कर गांधारी नगर में राजा भूति की रानी योजनगंधा के अरिसूदन नामक पुत्र हुआ। उसने गर्भमुनि का दर्शन कर पूर्व जन्म स्मरण किया। उसे महावैराग्य हुआ और वह समाधि लगाकर स्वर्ग को चला गया। इसलिये मैं तो उपमन्यु पुरोहित का जीव हूँ और तू राजा भूति जो महापाप कर दो बार नरक गया। अब तू वे नरक के दुःख भूल गया है। यह वार्ता सुन रत्नमाली सूर्यजय पुत्र-सहित वैरागी हो गये। सूर्यजय तप कर दसवें देवलोक मे देव हुआ। वहाँ से चलकर राजा अरण्य का पुत्र दशरथ हुआ। मुनि कहते हैं कि वह अल्पमात्र मे ही अच्छे काम करके समृद्धिशाली हो गया। तू राजा दशरथ उपस्त का जीव है। तेरा पिता नन्दघोष मुनि होकर ग्रैवेयक चला गया वहाँ से चलकर मैं सर्वभूतहित हुआ और राजा भूति का जीव रत्नमाली हुआ। वही स्वर्ग से आकर राजा जनक हुआ। उपमन्यु पुरोहित का जीव जनक का भाई कनक हुआ।

इस संसार में न कोई अपना है न पराया है, शुभाशुभ कर्मों से ही जीव जन्म-मरण को प्राप्त होता है। अपने पूर्व जन्म का यह वर्णन सुन राजा दशरथ निस्संदेह हो वैराग्य को ही श्रेष्ठ समझने लगा। गुरु के चरणों में नमस्कार कर उसने नगर में प्रवेश किया और अपने मन में सोचने लगा—यह महामण्डलेश्वर पद का राज्य महा-सुबुद्धि राम को देकर मैं मुनिव्रत लूँगा। राम धर्मात्मा हैं और सर्व प्रकार से समर्थ हैं। इनके भाई भी आज्ञाकारी हैं।

राजा ने सामंत, मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि सबको बुलवाया और उन्होंने घोषणा की—मैं संसार त्याग कर निश्चय ही सेती संयम धारण करूँगा। तब सभी पूछने लगे—हे राजा ! आपको यह वैराग्य किन कारण पैदा हुआ है। राजा ने कहा—मैंने सकल पापों के वर्जनहारा जिनशासन मुनि के मुँह से सुना है। उन्हीं से मैंने अपने सारे जन्मों की कथा सुनी है। अब मैं इस भवरूपी नदी को लाँघ कर शिवपुरी जाने का प्रयत्न करता हूँ।

राजा का यह निश्चय सुनकर सभी शोकातुर हो गये। रनवास में रानियाँ

रोने लगी। पिता का यह निश्चय सुन भरत के मन में भी वैराग्य पैदा हुआ। वह कहने लगा—जब मेरे पिता ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो मैं भी अब तपोवन जाऊँगा। जब मेरा इस देह से ही कोई सम्बन्ध नहीं है तो बन्धु-बान्धवों से ही क्या सम्बन्ध है।

महाराजा प्रवीण कैकेयी भरत का यह विचार जानकर अत्यंत व्याकुल हुई, उसी समय उसे राजा का दिया वर याद आया। वह शीघ्र ही राजा के पास जाकर विनती करने लगी :

हे नाथ! सब स्त्रियों से आपका प्रेम मुझ पर अधिक है। आपने सबके सामने मुझसे कुछ मांगने के लिये कहा था इसलिये अब मुझे मेरा वर दीजिये। आप सत्यवादी हो।

राजा ने कहा—रानी! तेरी इच्छा हो वही मांग।

आँसू डालती रानी कहने लगी—हे नाथ! हम से क्या अपराध हुआ है जो आप हमें छोड़कर संन्यासी हो रहे हैं, लेकिन आप सोचें वह ठीक ही है क्योंकि आप ही कहते थे कि समर्थों को क्या दुर्लभ है। मैं आपसे मेरे पुत्र भरत के लिये राज्य मांगती हूं।

राजा ने सहर्ष कहा—इसमें क्या संदेह है। तुमने अच्छा किया कि अपनी धरोहर मांगकर मुझे ऋण से उऋण कर दिया।

इसके बाद राजा ने राम और लक्ष्मण को अपने पास बुलाया और कहा—हे पुत्रो! तुम्हारी माता कैकेयी को मैंने वर दिया था क्योंकि इसने रण में सारथी बनकर मेरी सहायता की थी। इसने अब भरत के लिए राज्य मांग लिया है लेकिन मेरे मन में चिन्ता है कि भरत छोटे भाई हैं उन्हें बड़े भाई के होते राज्य कैसे दिया जा सकता है। भरत वैराग्य की तरफ मुड़ा हुआ है।

पिता को चिन्तित देख राम कहने लगे—हे पिता! आप चिन्ता न करें। वही पुत्र इस संसार में यशस्वी होता है जो अपने पिता की बात को रखता है। मैं आपकी बात से किसी तरह विमुख न हूंगा। भरत निष्कंटक राज्य करें इसलिये मैं स्वयं वन को जाऊँगा।

उपर्युक्त जैन-कथा अपना आधार किसी रामायण में नहीं ढूंढती बल्कि यह तो जैनश्रावकों की अपने सिद्धान्तों के अनुकूल एक नयी सूझ है। पूरे प्रसंग में वैराग्य, दान, इत्यादि पर अधिक जोर दिया गया है इसके अलावा संसार को महादुःख का कारण बताया है जहाँ प्राणी अपने कर्मानुसार जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा रहता है। मुक्त वही होता है जो निर्लिप्त होकर इस संसार को छोड़कर चला जाता है और जिनशासन का पालन करता है। जैन-श्रावकों का जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण कथा की आधारभूमि में अपनी रोचकता लिये स्थान पा सका है। जिस प्रकार अन्य रामायणों में, विशेषकर 'रामचरित मानस' में ब्राह्मण काव्यकार ने निगमागमसम्मत मर्यादा

... में वह निर्णय सुन भरत के मन में भी वैराग्य पैदा हुआ। वह कह
जब मेरे पिता ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो मैं भी अब तपोवन जाऊँगा
इस देह से ही कोई सम्बन्ध नहीं है तो बन्धु-बान्धवों से ही क्या सम्बन्ध है
सकलकला प्रवीण कैकेयी भरत का यह विचार जानकर अत्यंत व्याकुल हुई
मय उसे राजा का दिया वर याद आया। वह शीघ्र ही राजा के पास जाक
करने लगी :

हे नाथ ! सब स्त्रियों से आपका प्रेम मुझ पर अधिक है। आपने सबके
मुझसे कुछ मांगने के लिये कहा था इसलिये अब मुझे मेरा वर दीजिये। आप
ती हो।

राजा ने कहा—रानी ! तेरी इच्छा हो वही माँग।

आँसू डालती रानी कहने लगी—हे नाथ ! हम से क्या अपराध हुआ है जो
ां छोड़कर संन्यासी हो रहे हैं, लेकिन आप सोचें वह ठीक ही है क्योंकि आप
थे कि समर्थों को क्या दुर्लभ है। मैं आपसे मेरे पुत्र भरत के लिये राज्य
हूँ।

राजा ने सहर्ष कहा—इसमें क्या संदेह है। तुमने अच्छा किया कि अपनी
माँगकर मुझे ऋण से उऋण कर दिया।

इसके बाद राजा ने राम और लक्ष्मण को अपने पास बुलाया और कहा—हे
तुम्हारी माता कैकेयी को मैंने वर दिया था क्योंकि इसने रण में सारथी बनकर
यता की थी। इसने अब भरत के लिए राज्य माँग लिया है लेकिन मेरे मन
है कि भरत छोटे भाई हैं उन्हें बड़े भाई के होते राज्य कैसे दिया जा सकता
त वैराग्य की तरफ झुका हुआ है।

पिता को चिन्तित देख राम कहने लगे—हे पिता ! आप चिन्ता न करें। वही
संसार में यशस्वी होता है जो अपने पिता की बात को रखता है। मैं आपकी
किसी तरह विमुख न हूँगा। भरत निष्कंटक राज्य करें इसलिये मैं स्वयं वन
गा।

उपर्युक्त जैन-कथा अपना आधार किसी रामायण में नहीं ढूँढ़ती बल्कि यह
दकों की अपने सिद्धान्तों के अनुकूल एक नयी सूझ है। पूरे प्रसंग में
ान, इत्यादि पर अधिक जोर दिया गया है इसके अलावा संसार को महादुःख
बताया है जहाँ प्राणी अपने कर्मानुसार जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा रहता
वही होता है जो निश्चिन्त होकर इस संसार को छोड़कर चला जाता है और
का पालन करता है। जैन-श्रावकों का जीवन के प्रति यह दृष्टिकोण कथा
भूमि में अपनी रोचकता लिये स्थान पा सका है। जिस प्रकार पाद्य राया-
वेदेकर 'रामचरित मानस' में ब्राह्मण काव्यकार ने निगमागमसम्मत मर्यादा

विशेष ध्यान रखा है और उसी ढांचे में सारी कथा को रचा है उसी प्रकार अपने दों के प्रति जैन-श्रावक भी सजग रहा है। मूलरूप में देखा जाय तो इस तरह की सृष्टि के सजग प्रयत्न साम्प्रदायिक मतवाद की पुष्टि के निमित्त ही होते हैं और लिये अनेक सम्प्रदाय विभिन्न दृष्टिकोण रखते हुए भी एक ही कथा को अपने में स्थान दे देते हैं। इसके दो उद्देश्य होते हैं—एक तो अन्य सम्प्रदायों के दृष्टि-ा से रची कथा के रूप का खण्डन करना, उसको असत्य ठहराना और दूसरे अपने ष्टकोण को कथा पर लादना और फिर कथा की सत्यता को प्रतिष्ठित करने का न करना। कुछ भी हो तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को इस तरह के न विभिन्न दृष्टिकोणों और उनकी समाज से सापेक्षता पर प्रकाश डालते हैं। हमने जैन-कथा को इसीलिये महत्व दिया है जिससे हमें कथा की सापेक्षता में जैन पर-ओं का ज्ञान हो।

इस सबके अलावा यह भी सम्भव हो सकता है कि जैनों में रामकथा की म्परा अति प्राचीनकाल से चली आ रही हो। क्योंकि जैन सम्प्रदाय आदि तीर्थंकर भदेव से ही वैदिक युग से अपनी नयी परम्परा का विकास कर रहा है और यह सम्भव है कि रामकथा जैन-श्रावकों को भी प्रभावित करती हुई युगयुगान्तर तक के साथ चली आ रही हो और पद्मपुराण लिखने के समय जैन श्रावकों ने उसे विरत की कसौटी पर रखकर ही अपने साहित्य में स्थान दिया हो। लेकिन अधिक-कथा साम्प्रदायिक रंग में ही रंगी हुई है।

अब हम इस विषय पर और गम्भीरता से सोचें कि क्या कारण है रामकथा जैनों में ही नहीं, शाक्तों में तथा अन्य सम्प्रदायों में इतना स्थान मिला। ऊपर हम के कारण बता चुके हैं लेकिन मूल कारण यही मालूम होता है, चूंकि यह कथा धिक लोकप्रिय है और जनता में बहुत पहले से ही प्रचलित है इसलिये इसी कथा लेकर अपने सम्प्रदाय का रंग चढ़ाकर जनता के सामने रखा जायगा तो यह शीघ्रता ग्राह्य होगी और अपना प्रभाव भी अधिक डालेगी। इसीलिये अनेक सम्प्रदायों की खें इस कथा पर लगीं।

× × ×

अब इससे आगे हम कथा को देखते हैं।

जैन-रामकथा को छोड़कर अन्य रामायणों में राम, लक्ष्मण और सीता के ागमन के पश्चात् कुछ ही दिनों में राजा दशरथ परलोक सिधार गये। अपनी अन्तिम ा तक वे 'हा राम हा सीता' ही पुकारते रहे। कभी वन की कठिनाइयों को सोच र व्याकुल हो जाते तो कभी कैकेयी को बुरा-भला कहते। अन्त में जब उनकी मृत्यु कट आई तो उन्होंने अपनी रानियों से अपने यौवन की दुःखद घटना के बारे में ाया। उन्होंने कहा—मैंने निरपराध तपस्वी श्रवणकुमार को मारा था तब उनके

ने मुझे शाप दिया था कि तू भी हमारी तरह ही पुत्रशोक में अपने प्राण छोड़ेगा। इस तरह शाप देते हुए वे दोनों स्वास छोड़कर इस दुनिया से चले गये। मुझे निश्चय हो गया है कि विधाता ने अपने नियमानुसार मुझे बुलाने का भी प्रयोजन कर लिया है।

यह कहकर वे 'हाय राम, हाय सीता, हाय लक्ष्मण' चिल्लाते हुए परलोक सिधार गये। जब राज्य का कर्णधार कोई न रहा तो मन्त्रीगणों ने तुरन्त निश्चय किया कि भरत को अपने ननिहाल से बुलाया जाय, उस समय तक राजा का शव तेल के भरे नाव में सुरक्षित रख दिया जाय। अति वेगवान अश्वारोही केकयी देश गये और भरत और शत्रुघ्न को ले आये। राह में भरत को अपशकुन हुए। जिस दिन वे अश्वारोही नगर में पहुँचे उस दिन भरत को दो *अशुभ स्वप्न दीखे। स्वप्न का वर्णन* केवल 'वाल्मीकीय रामायण' में है। 'मानस' में भरत को नित्य ही अशुभ स्वप्न देखने का वर्णन है।

स्वप्न इस प्रकार है—पिता का मलिनरूप है, उनके सिर के बाल खुले हुए हैं। पर्वत के शृंग से वे काले गोबर के गड्ढे में गिरे हैं। उसी में तैरते हैं, अञ्जलि से तेल पीते हुए हँस रहे हैं। *इसके बाद राजा तिल से मिले हुए भात खाकर बार-बार मस्तक* नीचा किये हुए सर्वांग में तेल लगाये तेल ही में डूब रहे हैं।

दूसरा स्वप्न इस प्रकार है—समुद्र सूख गया है और चन्द्रमा भूमि पर गिर पड़ा है। सम्पूर्ण पृथ्वी अंधकार से आच्छादित हो गई है। जिस हाथी पर राजा सवार हैं उसके दाँत टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। जलती अग्नि झट बुझ गई है। नाना प्रकार के वृक्ष *सूख गये हैं। पर्वत चूर-चूर और धूम-युक्त हो गये हैं। काले लोहे के आसन पर* राजा बैठे और काले वस्त्र पहने हैं। उन्हे काली-काली और पीली-पीली स्त्रियाँ मार रही हैं। धर्मात्मा महाराज शरीर मे रक्त चन्दन लगाये, लाल पुष्पों की माला पहने गधे के रथ पर चढ़े दक्षिण दिशा में चले जा रहे हैं। एक विकराल राक्षसी लाल वस्त्र पहने है और वह हँसती हुई राजा को पकड़कर खींच रही है।

भरत कहने लगे—इस स्वप्न से मुझे अनुमान होता है कि या तो मैं या राजा या राम या लक्ष्मण स्वर्गवासी होंगे क्योंकि जो मनुष्य स्वप्न में गधे पर सवार देख पड़ता है उसका धुआँ थोड़े ही समय में चिता में दीख पड़ता है।

ये दोनों स्वप्न अत्यंत भयानक हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि काव्यकार की यह अपनी सूझ है या समाज में प्रचलित इस प्रकार के स्वप्नों को ही कवि ने यहाँ रख दिया है। भारतवर्ष में स्वप्नों की अशुभता से परिस्थिति बिगड़ने का विचार बहुत प्राचीन है। हो सकता है 'वाल्मीकीय रामायण' की रचना के समय यह स्वप्नों का विश्वास अपने प्रबल स्वरूप में हो जिससे इनको उक्त ग्रंथ में इतने विस्तार के साथ स्थान मिला। 'मानस' के समय जनता में यह विश्वास गौण हो गया हो जिससे उसमें

ल संकेत-मात्र मिलता है। यह भी सम्भव है कि तुलसीदास जी स्वयं इस विश्वास प्रति इतने अधिक जागरूक न हों बल्कि केवल परम्परानुकूल ही इसकी ओर उन्होंने त किया हो।

इसके बाद भरत और शत्रुघ्न अयोध्या के लिये चल पड़े। केकयराज ने उन्हें शालरूप के कुत्ते, उत्तम हाथी, विचित्र कम्बल, मृगचर्मप्रभृत वस्तुएँ, दो सहस्रसुवर्ण गले के भूषण और सोलह सौ घोड़े दिये। ऐरावत की नस्ल के शीघ्रगामी हाथी और तचर दिये।

अन्य रामायणों में इस भेंट का वर्णन नहीं है। इसके पश्चात् मार्ग का 'वाल्मी-य रामायण' में अति विशद भौगोलिक वर्णन है जिसे हम अगले किसी अध्याय मे गे। मार्ग का भी उतना विस्तृत वर्णन अन्य राम-कथाओं में नहीं है। 'मानस' में केवल ना ही है :

चले समीर बेग हय हांके । नाघत सरित सैल बन बांके ।।

जैन 'पद्मपुराण' में उपर्युक्त उद्धृत कथा के आगे भी कथा अलग है, केवल टे रूप से रूपरेखा वही है।

जब राम ने वन जाना स्वीकार कर लिया और भरत को यह मालूम हुआ कि भे राज्य करना है तो वे अत्यन्त चिन्तित होकर पिता से कहने लगे—मैं राज्य नहीं रूँगा। मैं तो जिनदीक्षा लूँगा।

राजा ने कहा—हे वत्स! अभी तुम्हारी नवीन अवस्था है। वृद्ध हो जाओ भी तप करना।

भरत ने कहा—हे तात! मृत्यु तो बाल, वृद्ध और तरुण किसी को भी नहीं खती है। आप वृथा मेरे हृदय में मोह क्यों पैदा करते हैं।

राजा ने कहा—हे वत्स! सब मुनियों को भी तद्भव मुक्ति नहीं होती है सलिये तुम अभी अपने गृहस्थाश्रम का ही पालन करो।

भरत के हृदय पर राजा के उपदेशों ने नहीं के बराबर असर किया। वे कहते हे—गृहस्थाश्रम में तो जीव को कभी मुक्ति नहीं मिलती। वह कामरूप अग्नि में नरंतर जलता रहता है। इसलिये हे तात! आप मुझे वन जाने की आज्ञा दीजिये जससे मैं जिनभाषित तप को विधिपूर्वक करके अभय और मुक्ति प्राप्त करूँ। जिन-ासन के ज्ञान से ही मनुष्य इस भवसागर से पार होता है। फिर आप मुझे छोड़ अकेले वन में तप करने क्यों जाते हैं।

पिता ने भरत को समझाते हुए कैकेयी के वर की बात कही और कहने लगे— वत्स! पिता के वचन को रखना और साथ में अपनी माता का शोकनिवारण रना तुम्हारे हाथों है। इसे अपना कर्तव्य समझ वन जाने की हठ छोड़ दो।

कि का साधन पूछने लगे। मुनि ने उन्हें भवसागर से पार उतरने की भगवती दीक्षा दी। इनमें उनमें से कुछ ने तो सम्यग्दर्शन को अंगीकार करके संतोष कर लिया। कुछ ने निर्मल जिनेश्वर देव का धर्म श्रवण कर पाप से मुक्ति पाई। बहुत से सामन्त राम-लक्ष्मण की वार्ता सुन साधु हो गये, बहुतों ने श्रावक का अणुव्रत धारण कर लिया।

बहुत सी रानियाँ आर्यिका हो गईं, बहुत सी श्राविका हो गईं।

उपर्युक्त वर्णन भी प्रजा में राम के अत्यधिक प्रभाव को व्यक्त करता है। जिस प्रकार अन्य राम-कथाओं में राम के पीछे रोते-चिल्लाते नगरवासी वन के लिए चल पड़ते हैं इसी प्रकार जैनकथा में भी पुरवासी राम के साथ नदी तक जाते हैं। नदी का नाम इसमें नहीं दिया है। अन्य रामायणों में तमसा नदी का नाम है। जैनकथा में जिनशासन, जैन चैत्यालय आदि का वर्णन अधिक है जिससे राम भी इसमें जैन-धर्म में विश्वास करते मालूम होते हैं। राजा दशरथ अवश्य इस कथा में निर्लिप्त भाव को लिये वैराग्य पर ही अधिक जोर देते हैं। वे पुत्र-वियोग से शोक अवश्य करते हैं लेकिन अपने अन्तर्विवेक को जाग्रत करके वे इस क्षणिक मायावाद से मुक्ति पा लेते हैं और स्वयं राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं। वे शोक से हाहाकार करके मर नहीं जाते। इसी प्रकार रानी कैकयी-सम्बन्धी प्रसंग भी अपनी परिस्थितिगत कठोरता लिये इसमें उपस्थित नहीं है। स्वप्नादि के लिये भी उस प्रसंग में कोई स्थान नहीं है। भरत के वैराग्यपूर्ण स्वभाव का ही वर्णन घटनाओं में आता है।

× × ×

'वाल्मीकीय रामायण' में तमसा नदी पार करने के पश्चात् राम पुरवासियों को सोता ही छोड़कर चल दिये। जब पुरवासियों की निद्रा खुली तो वे अनेक प्रकार से विलाप करने लगे और निराश होकर अयोध्या लौट आये। जब उनकी स्त्रियों ने उन्हें राम, लक्ष्मण और सीता के बिना ही देखा तो वे फूट-फूटकर रोने लगीं। वे अपने-अपने पतियों से कहने लगीं—देखो, शायद तुम्हारा योग-क्षेम करेंगे और सीता भी हमारी सम्भवतः अनुभूति करेंगी। ऐसा कौन सा आदर्श होगा जो इस भयानक नगरी में निवास करे। यदि यह राज्य धर्म-मार्ग से विरुद्ध होकर, अनाथ की तरह, कैकेयी के अधीन होगा तो हमको जीवन से, पुत्रों से अथवा धन से क्या प्रयोजन है? अहह! कुलनाशिनी कैकेयी ने ऐश्वर्य के हेतु पुत्र-पति को छोड़ दिया, भला वह दूसरे का त्याग क्या न कर देगी? हम अपने पुत्रों की शपथ करके कहती हैं कि जीते-जी हम इस राज्य में कैकेयी की दासी बनके न रहेंगी। उसने निर्दय होकर राजेन्द्र दशरथ के पुत्र को वनवास दिया है।...... ऐसे आदर्श और लक्ष्मण के साथ राम स्वयं ही वन चले गये और हम भरत के हाथ ऐसे सौंपे गये हैं जैसे घातक को पशु दे दिये जाते हैं। हाँ, रामचन्द्र महानुभाव, चन्द्रवदन, जितेन्द्रिय, पहले बोलने वाले, कोमल, सत्यवादी,

ध और चन्द्रमा के तुल्य प्रिय-दर्शन, पुरुष-श्रेष्ठ, मत्तगजेन्द्रगामी और

प्रकार नगर की स्त्रियाँ अनेक तरह से विलाप करने लगीं। यह वर्णन
ो राज्य के योग्य राम के निर्वासित किये जाने पर जनता की प्रतिक्रिया
ालता है। अन्य रामायणों में इस तरह विस्तार के साथ जनता की भावना
ी किया गया है। 'अध्यात्म रामायण' में तो भगवान् और भक्त के सम्बन्धों
। भावनाओं को व्यक्त किया गया है और 'मानस' में राम के प्रति जनता
म है जिसमें कुछ तो उनके भगवान्-स्वरूप के कारण और कुछ कैकेयी के
न्याय की प्रतिक्रिया के कारण जनता को उनके विरह में रोता दिखाया

राम-कथाओं में केवल संकेत ही के द्वारा यह प्रसंग व्यक्त होता है।
ा नदी पार करने के पश्चात् राम की वन-यात्रा 'वाल्मीकीय रामायण'
है :

ल देश की सीमा पार करके श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने सुमन्त्र के
नामक महानदी को पार किया और वे दक्षिण दिशा को चले। बहुत
चलकर वे गोमती नदी पर पहुँचे और उसको पार किया। जब वे कौशल
ा को लाँघ गये तो उन्होंने एक देश देखा जो धनधान्य से पूर्ण, अच्छी
था। यहाँ स्थान-स्थान पर चैत्य और यूप सुशोभित हैं। इसके अलावा
रेशों का राज्य उन्हें और मिला। इसके बाद वे गंगा के तट पर पहुँचे।
र का राजा गुह अपने वृद्ध मन्त्रियों और जाति भाइयों के साथ रामचन्द्र
ाया। यहाँ सुमन्त्र अभी राम के साथ हैं लेकिन 'अध्यात्म रामायण' में
सुमन्त्र को विदा कर देते हैं। उसमें किन्हीं नदियों के पार करने का
बल्कि तमसा नदी को पार करके राम बड़े समृद्धि-युक्त देशों को देखते
के पास गंगा-तीर पर पहुँचे। निषाद मनुष्यों से यह सुनकर कि राम
ने से फल, मधु, पुष्प आदि भेंट ले परम भक्ति के साथ अपने सखा से
पाकर उसने पृथ्वी में लेटकर राम को दण्डवत प्रणाम किया। इससे
ट होता है कि निषाद राजा अवश्य है क्योंकि तभी वह राम का सखा
किन अधिकतर उसका वर्णन भक्तिपूर्ण है। 'वाल्मीकीय रामायण' में
ा सखा नहीं बल्कि एक स्वतंत्र राजा है जिसको मालूम होता है मानों
ा है।

' के 'रामचरित मानस' में भी तमसा नदी पार करने के पश्चात् राम
हुँचने तक मार्ग में किन्हीं नदियों का वर्णन नहीं है। शृंगवेरपुर में
अपने बन्धु-बान्धवों के साथ फल-मूलादि की भेंट देने गया। राम के

ाकर वह कहने लगा—आज मैं धन्य हो गया, मेरी गिनती भाग्यवान् पुरुषों में जो आपके दर्शन प्राप्त हुए। यह पृथ्वी, धन और राज्य आपका है। मैं तो र-सहित आपका नीच सेवक हूँ।

'मानस' में यह अंतिम पंक्ति महत्वपूर्ण है। 'वाल्मीकीय रामायण' में गुह एक राजा के गौरव से राम से मिला था। उसके साथ वृद्ध मन्त्री और निषादगण थे। 'अध्यात्म रामायण' में भी वह पहले से राम को सखा सम्बोधित करता है। ' में वह पहले अपनी नीचता प्रदर्शित करता है। इस कथन में तुलसीदास का अपना जिक दृष्टिकोण निहित है। अपने 'मानस' में कवि ने जिनको नीच-वर्ण माना हैं अपने काव्य में नीच कहा है और उच्च-वर्णों के प्रति उनकी अनन्य भक्ति त की है। यही तो उनकी मर्यादा की रेखा है। दूसरी तरफ उच्च-वर्णों का कात्मक दृष्टिकोण (Patronizing attitude) दिखाया है जिससे राम उस दराज गुह को सखा कहते हैं लेकिन तुलसी की दृष्टि में राम के सखा कहने से वह उच्च-वर्णों की कोटि में आ पाया? क्या वेद की मर्यादा में उसे कोई स्थान मिल ? नहीं—'मानस' में ही दूसरे स्थान पर तुलसी गुह से कहलाते हैं :

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥

उच्च-वर्णों का नीच वर्णों के प्रति दया का दृष्टिकोण इससे स्पष्ट हो ा है।*

शृंगवेरपुर एक रात ठहर कर सबने प्रातःकाल गंगा नदी पार की। राम ने त को अयोध्या वापस भेज दिया। इसके पश्चात् वन-मार्ग में अनेकों गाँव उन्हें । 'मानस' में ग्रामीण पुरुषों और स्त्रियों के हृदयों में राम-सीता-लक्ष्मण के प्रति सद्भावनाएँ उठती हैं उनका बड़ा रोचक वर्णन है, ऐसा वर्णन 'वाल्मीकीय ायण' में भी नहीं है।

शृंगवेरपुर से चलकर भरद्वाज, वाल्मीकि आदि ऋषियों के आश्रमों पर ठहर- राम चित्रकूट पहुँचे।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित प्रसंग के अनुकूल जब राम, लक्ष्मण और सीता षियों के आश्रमों पर पहुँचते हैं तो ऋषि उनका मानवोचित आतिथ्य-सत्कार ते हैं लेकिन 'अध्यात्म रामायण' में तो ऋषि यह जानकर कि भगवान् राम आये हैं

* जहाँ एक तरफ तो नीच-वर्णों का स्थान वही वेद-बहिष्कृत रहा और दूसरी फ उच्च-वर्णों का उन पर सहिष्णु हाथ इसलिये रहा जिससे उन नीच वर्णों को नकी छाया-मात्र से उच्च वर्ण भ्रष्ट हो जाते हैं किसी तरह अपनी हीन अवस्था पर न्तोष न हो। उनके हृदय में वेद-सम्मत मार्ग के प्रति विद्रोह न उठ पाये।

जो करते हैं इसी प्रकार 'मानस' के प्रसंग में भी। जब राम वाल्मीकि जी से
[रहने] के योग्य स्थान के बारे में पूछते हैं तो *'अध्यात्म रामायण' में वाल्मीकि*
[कहते] हैं—हे भगवान्! आप सर्वज्ञ हैं, मुझ से नाहक उपहास क्यों करते हैं, आप
त्रिकालदर्शी हैं, मैं आपको क्या स्थान बताऊँगा। इसी प्रकार का भाव,
में व्यक्त है।

पुराणों में वर्णित 'रामकथा' में भी विषय की तरफ यही आध्यात्मिक दृष्टि-
[कोण प्र]धान है।

'जैन पद्मपुराण' में तो इन ऋषियों के आश्रमों का नाम नहीं है।

[दशरथ क]ा स्वर्गवास

[']वाल्मीकीय रामायण' में राजा अन्त:पुर में पड़े पुत्र-वियोग में शोक से व्याकुल थे
[तो कौश]ल्या ने उनसे कुछ कटु वचन कहे। संक्षेप में वे इस प्रकार है—हे महाराज!
[रा]म, सीता और लक्ष्मण को निर्वासित करके न करने योग्य काम को किया है।
[भ]रत को राज्य तो दे दिया है लेकिन पन्द्रवें वर्ष राघव यदि वन से लौटेंगे
[तो नि]श्चय कि भरत राज्य छोड़ देंगे, मुझे इसमें कुछ विश्वास नहीं है। आप तो
द्विजों के आचरित धर्म को सत्य मानते हैं तो ऐसे धर्मनिष्ठ पुत्र को वनवास
[दिया]। आपने हमको सब प्रकार से नष्ट कर दिया। आपका तो एक भरत ही पुत्र
[और कै]केयी भार्या है। अब मेरा पुत्र राघव इस भुक्त राज्य को आकर भी स्वीकार
[करेग]ा जैसे सिंह कभी दूसरे द्वारा मारे शिकार को नहीं खाता है।

[र]ाजा से ये वचन कौशल्या ने अति स्वाभाविक रूप से अपने पुत्र राम के प्रेम
[से] होकर ही कहे। *'वाल्मीकीय रामायण' के ६२वें सर्ग में कौशल्या इसको*
है। यद्यपि वह मर्यादा तथा स्त्रियोचित धर्म की याद करके पति से कटु वचन
पश्चात्ताप करती है लेकिन उसकी भावनाओं का उतार-चढ़ाव व्यक्त पढ़ना
की कठोर सीमाओं में बद्ध नहीं है बल्कि अति प्राचीनकाल से आर्य पति-
[स्त्र]ी भावना का स्वाभाविक आवरण लिये है। कथा के सौन्दर्य के लिये पात्रों
[स्वाभावि]क स्वभावगत चेतना को बिना अपनी तरफ के आध्यात्मिक अथवा नैतिक
उस पर आरोप करके व्यक्त करना ही श्रेष्ठ रहता है। क्योंकि दशरथ पति
[कौश]ल्या स्त्री होकर उनके सामने कठोर वचन कैसे बोल सकती है। *यह विचार*
[ए]क झूठी अथवा अस्वाभाविक अभिव्यक्ति हो सकती है।

[']रामचरित मानस' में तो कौशल्या कोई कटु वचन नहीं बोलतीं बल्कि वे तो
अधिकतर धर्म कहकर स्वीकार कर लेती है तभी तो जब उन्होंने राम के
[वन] गमाचार सुना था तो उनकी गति साँप-छछूँदर की-सी हो गई थी कि पिता
के सामने मैं क्या करूँ। राजा जब अधिक व्याकुल होते हैं तो कौशल्या

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ।।
जौं जियँ धरिअ बिनय मोरी । रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ।।

तुलसीदास जी अपने 'मानस' में दशरथ के एक मर्यादायुक्त परिवार का
करते हैं। वाल्मीकि जीवन की स्वाभाविकता लिये एक राजा के परिवार का
चित्रण करते हैं।

× × ×

राजा की मृत्यु के पश्चात् जब राज्य का उत्तरदायी अयोध्या में कोई भी
तो सूर्योदय के समय राजाधिकारी ब्राह्मण लोग इकट्ठे होकर सभा मे
मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कत्यायन, गौतम, जाबालि ने सब
को तरफ देखकर राजपुरोहित वसिष्ठ से कहा—यह समय हमारे संकट
यहाँ कोई भी नहीं है, इसीलिए इक्ष्वाकुवंशीय किसी पुरुष को राज्य-
पर बैठाना चाहिए नहीं तो राजा बिना हमारा राष्ट्र नष्ट हो जायगा।
देश में राजा नहीं होता है वहाँ विद्युन्माला-युक्त मेघ महास्वन से पृथ्वी
जल नहीं बरसाते, न बीज बोया जाता है, न पुत्र पिता के वंश मे
और न भार्या पति के वश में रहती है। राजा-रहित देश में न धन सुरक्षित
है और न भार्या रहती है। राजा-रहित राष्ट्र में प्रजाजन न तो सभा का, न
वाटिका का और न पवित्र गृहो का निर्माण करते हैं और न कठोर व्रतयुक्त
-लोग यज्ञों तथा सत्रों का आरम्भ करते हैं। राजाहीन देश में व्यवहार वालों
दुकानदारों का—मनोरथ पूर्ण नहीं हो सकता। अराजक राष्ट्र में धनवान और
और गौ इत्यादि की रक्षा करने वाले हैं वे अपने द्वार खुले छोड़ कर सुख की
ही सो सकते। अराजक जनपद में कभी भी लोग अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर
मे बैठ जंगल में विहार करने नहीं जा सकते। अराजक देश में कोई धनुर्विद्या
यास नहीं करता। अराजक देश में दूर जाने वाले व्यापारी विक्रय-योग्य सामग्री
कुशलपूर्वक मार्ग में नहीं चल सकते। अराजक देश में आत्मा से आत्मा को
करने वाले अर्थात् ब्रह्म का ध्यान करने वाले जितेन्द्रिय और मुनि लोग नहीं
कर सकते। अराजक देश संग्राम में शत्रु का सामना भी नहीं कर सकता है।
क देश मे शास्त्रज्ञ लोग वनों और उपवनों में निधड़क शास्त्र का विचार नहीं
कते। देवपूजक लोग स्वतन्त्रतापूर्वक उपासना भी नहीं कर सकते।

मुनियों ने विस्तार के साथ अराजक देश का चित्र इस वर्णन में उपस्थित
है। यह विश्लेषण अन्य रामायणों में नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि
ोकीय रामायण' में राजनीति-विषयक पक्ष को भी कथा में उचित स्थान मिला
र घटनाओं में राज्यतन्त्र-सम्बन्धी विश्लेषण मिलता है। लेकिन अन्य रामायणों

भक्ति-पक्ष के समक्ष राजनीति सम्बन्धी तथ्यों को उचित स्थान नहीं मिला है इससे
ा का ऐतिहासिक दृष्टिकोण पूरी तरह नहीं सुलझ पाता ।

× × ×

रत का अयोध्या में आगमन

जब भरत ने अयोध्या आकर यह सुना कि पिता का स्वर्गवास हो चुका है
र राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गये हैं तो उन्हें अपार दुःख हुआ और
होने इसके लिए अपनी माता कैकेयी को बहुत कठोर शब्द कहे। इसके पश्चात् वे
नी विमाता कौशल्या के पास गये। कौशल्या को अति दुःखित और कान्तिहीन देख-
र भरत रोने लगे। उसी समय कौशल्या ने भरत से कहा :

हे पुत्र, जिसकी तुमको आकांक्षा थी वह राज्य कैकेयी के क्रूर-कर्म से शीघ्र ही
कंटक रूप से प्राप्त हुआ। हा ! बड़े खेद की बात है कि यह क्रूरदर्शिनी कैकेयी मेरे
र को चीर पहना कर और वनवासी करके क्या फल चाहती है। अब कैकेयी हमको
ी वनवास दे दे तो अच्छा है। मैं भी अपने पुत्र के पास चली जाऊँ अथवा मैं आप
सुमित्रा को साथ ले और अग्निहोत्र को आगे कर वहाँ चली जाऊँगी जहाँ राघव हैं
वा तू ही मुझे वहाँ पहुँचा दे जहाँ वह पुरुषश्रेष्ठ मेरा पुत्र तप कर रहा है। यह
ज्य धन-धान्य से भरा और हाथी, घोड़ों तथा रथों से सम्पूर्ण, यह तेरे लिए कैकेयी
इकट्ठा कर दिया है। तू इसका भोग कर।

(वाल्मीकीय रामायण, ७५ वाँ सर्ग)

'रामचरित मानस' में जब भरत जी कौशल्या के पास आते हैं तो रोते हुए
म्न शब्द कहते हैं :

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकेई कत जनमी जग माझा। जौं जनमि त भई काहे न बाँझा ॥
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥

भरत के प्रति कोमल वचन सुन कर कौशल्या ने भरत को हृदय से लगा लिया
र उनके आँसू पोंछ कर कहने लगीं :

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥
काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥

पितु आयस भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ॥

'वाल्मीकीय रामायण' में कौशल्या भरत को अनेक कठोर शब्द कहती हुई उन्हें ठहराती है। 'मानस' में तो दोषी भरत नहीं है बल्कि विधाता ही वाम हो गया 'मानस' के वर्णन में भाग्यवाद का सहारा लेकर एक आदर्श अथवा मर्यादा को ा गया है। 'वाल्मीकीय रामायण' में स्त्री-स्वभाव एवम् वात्सल्य-प्रेम में निहित ोचित स्वार्थ की ओर पूरी दृष्टि रखकर चरित्र का विकास किया गया है। पहले में कौशल्या भरत पर राज्य की आकांक्षा का दोष लगाती है, दूसरे में उसके हृदय त के बारे में ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि भरत के आदर्श भ्रातृ-प्रेम को ऐसा होता है, वह पहले ही जानती है और उसके सामने कठोर-से-कठोर परिस्थिति अन्यथा भाव उत्पन्न नहीं कर सकती।

माता कौशल्या के कठोर वचन सुनकर भरत ने अपने को निरपराध घोषित हुए ये शब्द कहे :

हे देवि ! जिसकी अनुमति से राम को वनवास मिला हो उसको वह अधर्म जो अधर्म उस स्वामी को लगता है जो भृत्य से कोई बड़ा काम करवाकर उसे न दे। वह उस पाप को भोगे जो पुत्र की तरह प्रजापालन करने वाले राजा ोही भोगता है। उसको वह अधर्म हो जो अधर्म छठा अंश कर लेकर प्रजा का न करने से राजा को होता है। हे आर्ये ! यज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा देने की ा करके जो दक्षिणा नहीं देता उसको जो पाप लगता है वह पाप उसको हो की अनुमति से राम वन को गये हों। उसको वह पाप लगे जो संग्राम में हाथी, और रथों के झुंड में शस्त्र-प्रहार होता देख सद्वीरों के धर्म का पालन नहीं करता उसको वह प्रायश्चित्त करना पड़े जो कि श्राद्धादि निमित्त के बिना निर्लज्ज होकर और तिल-मूंग मिला हुआ भात और बकरे का मांस खाने वाले मनुष्य को ा पड़ता है।

हे माता, वह पुरुष लाक्षा, मधु, मांस, लोहा और विष को बेच कर सर्वदा ो कुटुम्ब का पालन करे जिसकी अनुमति से राम वन को गये हों। उसको वह लगे जो कि राजा, स्त्री, बालक और वृद्ध का वध करने से लगता है और जो भृत्य को त्याग देने से लगता है। जो ब्राह्मण की प्रतिष्ठा का नाश करने और वत्स वाली गाय को मर्यादा से अधिक दुहने वाले अजितेन्द्रिय पुरुष को जो पाप ा है वह उस मनुष्य को हो जिसकी अनुमति से राम वन गये हों।

'वाल्मीकीय रामायण' के ७५ वें सर्ग में भरत ने अनेक प्रकार के पापों का न किया है। हमने मोटे तौर पर उपर्युक्त को ही लिया है जो उस युग के समाज प्रकाश डालते हैं।

'अध्यात्म रामायण' में केवल ब्रह्महत्या के पाप को ही भरत इस प्रसंग में ते हैं।

'मानस' में भरत जी ने माता कौशल्या तथा सुमित्रा को पुराण और वेदों की सुन्दर कथायें कह कर धैर्य बंधाया और कहा :

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाइ गोठ महि सुर पुर जारें॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥
जे परिहरि हरि हर चरन, भजहि भूतगन घोर।
तेहि कह गति मोहि देउ बिधि, जौ जननी मत मोर॥

बेचहि बेदु धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥
जे नहीं साधु संग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥
तजि श्रुतिपंथु, बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥

तुलसीदास जी का यह दृष्टिकोण समाज-व्यवस्था पर प्रकाश अवश्य डालता है परन्तु इसमें उनकी आत्मपरकता अधिक है जिससे श्रुतिमार्ग का विरोध, वामपंथ, हरि और हर की भक्ति का विरोध ही पाप दीख पड़ते हैं। वैसे तो समाज में पापों के बारे में कथाकार का दृष्टिकोण आत्मपरक ही होता है लेकिन जो कथाकार किसी सम्प्रदाय विशेष की छाया में खड़ा होकर समाज को देखता है तो उसकी दृष्टि संकुचित हो उस सम्प्रदाय के विरोध पर ही केन्द्रित रहती है और वह उसे ही अपने युग का घोर पाप समझता है,'समाज का यथार्थ सत्य जो आत्मपरक दृष्टि से बाह्य परिस्थिति का सामंजस्य स्थापित करके प्रकट हो सकता है, उसका इस प्रकार के कथाकारों में अभाव रहता है।

'तुलसी' अपने समय के समाज में उठी उच्छृङ्खलता का मूल कारण श्रुतिमार्ग का विरोध ही समझते थे जब कि वाल्मीकि ने राजा-प्रजा सम्बन्ध, भृत्य-स्वामी सम्बन्ध में पाप और पुण्य का मूल्यांकन भी किया है। यह उनकी बाह्यपरक दृष्टि पर ही प्रकाश डालता है।

× × ×

'वाल्मीकीय रामायण' के ७७वें सर्ग में एक विचित्र बात मिलती है। राजा की मृत्यु के १३ वें दिन वसिष्ठ भरत से राजा की अस्थि-संचयन के बारे में कहते हैं। वर्तमान हिन्दू प्रथा के अनुसार तीसरे दिन ही अस्थि-संचय होता है, सम्भव हो सकता है कि प्राचीन काल में अस्थि-संचय तेरहवें दिन ही होता हो और वर्तमान

परवर्ती विकास हो। अन्य राम-कथाओं में तेरहवें दिन के अस्थि-संचयन का न नहीं मिलता है।

× × ×

चरित्र-चित्रण का यह मूल नियम होता है कि जब किसी पात्र को कथा में न दिया जाता है तो उसके व्यक्तित्व का विकास ही कथा की रोचकता र सौन्दर्य को बढ़ाता है। रामकथा में शत्रुघ्न एक पात्र है लेकिन किसी कथाकार भी उसके चरित्र के विकास पर ध्यान नहीं दिया। तुलसीदास जी के 'रामचरित-मानस' में तो वह एक शब्द भी नहीं बोलता। उसकी मूक भावना की अभिव्यक्ति में चौपाई अयोध्याकाण्ड में है—जिस समय कुटिल मथरा आई तो :

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भर महि करत पुकारा॥

'अध्यात्म रामायण' में तो इतना भी नहीं मिलता और अन्य राम-कथाएँ करण-मात्र होने से शत्रुघ्न के चरित्र के बारे में प्रायः मौन हैं।

'वाल्मीकीय रामायण' मे अवश्य शत्रुघ्न अपने मुँह से कुछ बोलते हैं। इसमें मण के समान ही चरित्र की विशेषता उनमें है। वे भी उसी प्रकार क्रोधी और घ्र भावावेश में आ जाने वाले हैं। जब भरत जी राम के विरह मे विलाप कर थे तो शत्रुघ्न ने कहा :

हे भ्राता! जो रामचन्द्र प्राणियों के गतिरूप और सामर्थ्ययुक्त होकर भी ी-सहित वन में निकाल दिये गये तो अपने दुःखों की क्या कथा है। भला बलवान् र वीर्य्य-सम्पन्न लक्ष्मण ने पिता का निग्रह करके उनको बचाया क्यों नहीं? क्यों- जो राजा नारी के वश में होकर अन्याय-मार्ग पर आरूढ़ हुए थे तो नीति-अनीति विचार करके पहले ही निग्रह करना योग्य था।

इसी बीच उस कुलघातिनी मंथरा दीख पड़ी। उसके केश पकड़ कर शत्रुघ्न खींचना प्रारम्भ कर दिया और पुकार कर कहा—देखो! जिसने हमारे सब भाइयों र पिता के महा दुःख को उत्पन्न किया वही घात करने वाली अपने कर्म का फल रही है।

रत मिलाप

राजा की मृत्यु के चौदहवें दिन राजकाज-कर्त्ता लोग इकट्ठे होकर भरत से ले—हे प्रभो! महाराज दशरथ ज्येष्ठ पुत्र राम को वनवास देकर परलोक सिधार ए हैं, अब आप राज्य के अधिकारी है अतः राज्य को ग्रहण कीजिए और अपना भिषेक करवाकर हमारी रक्षा कीजिये।

यह सुनकर भरत ने राज्यधर्म के अनुसार उचित भाषण दिया और वन में

जाकर राज्य के अधिकारी ज्येष्ठ भ्राता को लौटा कर राज्य पर सुशोभित करने का निश्चय किया।उन्होंने चतुरंगिणी सेना, मंत्री आदि सबको वन चलने की आज्ञा दी। 'रामचरित मानस' में पारिवारिक धर्म की मर्यादा तथा अभिन्न मातृ-प्रेम के वशीभूत होकर ही भरत राज्य नहीं संभालते, 'अध्यात्म रामायण' में भगवान् की अनुपस्थिति में भरत कैसे राज्य संभाल सकते थे।

जब भरत ने चित्रकूट भाई से मिलने जाने का निश्चय किया तो उन्होंने चित्रकूट तक एक सड़क बनाये जाने की आज्ञा दी, जिसे राज्य के कुशल शिल्पियों ने बनाकर तैयार कर दिया। सड़क का वर्णन अन्य रामायणों में नहीं मिलता है।

भरत-शत्रुघ्न असंख्य प्रजा के लोगों, कर्मचारियों तथा माताओं के साथ चित्रकूट की ओर चल दिये। शृंगवेरपुर पहुँचने पर गुह से वे मिले। 'वाल्मीकीय-रामयण' में गुह के हृदय में थोड़ा शक पैदा होता है जिससे वह अपने मल्लाहों को सावधान रहने के लिए कहकर भरत को भेंट देने जाता है जिससे सारा राज मालूम हो सके परन्तु 'रामचरित मानस' में तो एक बार ऐसा मालूम होता है कि उसने लड़ाई की सारी तैयारी कर ली और वह कूच करने वाला है कि कोई अचानक छींक उठा। तभी किसी साधु पुरुष ने कहा कि भरत का राज पहले जान लो फिर उन पर आक्रमण करो। तब गुह भेंट लेकर भरत के पास जाता है।

शृंगवेरपुर से भरत प्रयाग भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे। यहाँ ऋषि ने उनके इस भक्तिपूर्ण आदर्श भ्रातृ-प्रेम की प्रशंसा की। 'मानस' में तो ऋषि स्वयं राम के दर्शन पाकर गद्‌गद हो गये थे उन्होंने कहा :

जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥

'वाल्मीकीय रामायण' में जब भरत भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे तो ऋषि का हृदय सशंकित हुआ। उन्होंने भरत से पूछा—हे राजकुमार,! तुम तो राज्यशासन कर रहे हो। भला यहाँ तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है? अनुग्रह करके मुझसे कहिये मेरा मन शुद्ध नहीं होता। स्त्री के कहने पर राजा ने राम को भार्या सहित चौदह वर्ष का वनवास दिया। उस निष्पाप के विषय में और उसके अनुज के विषय में अकण्टक राज्य भोगने की इच्छा से आप कुछ पाप बुद्धि तो नहीं करना चाहते।

यह सुनकर भरत अपना सही मंतव्य बताकर रो उठे।

'मानस' में जब भरत भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे तो मन में सोचने लगे कि ऋषि कुछ पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा लेकिन ऋषि ने तो कुछ शंका नहीं की बल्कि सबका ज्ञाता होकर कहा :

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥

'अध्यात्म रामायण' में भरद्वाज भरत पर सन्देह तो नहीं करते हैं।

रत के आने पर वे कौतूहलवश प्रश्न अवश्य पूछते हैं कि हे भरत, मुनियों के वन में
प्रकार यहाँ वल्कलादि युक्त आने का आपका क्या तात्पर्य है ?

बातचीत होने के पश्चात् भरद्वाज मुनि ने अपनी कामधेनु गाय के प्रभाव से
रत को सेना और परिवार-सहित दावत दी। 'मानस' में भरद्वाज ने ऋद्धि तथा
द्धियों की सहायता से वह काम किया। 'वाल्मीकीय रामायण' में दावत में मांस-
दिरा आदि का भी वर्णन है अन्य राम-कथाओं में नहीं।

दूसरे दिन सब चित्रकूट की ओर चल दिये।

चित्रकूट पर भरतमिलाप का दृश्य प्रायः सभी रामायणों में एक-सा है। 'वाल्मी-
य रामायण' में व्यवस्थित सभा के बारे में नहीं लिखा है। 'मानस' व अध्यात्म रामा-
ण' में पूरी सभा चित्रकूट पर बैठती है और सभा-तुल्य ही कार्यवाही वहाँ होती है।

'वाल्मीकीय रामायण' में जब भरत पहले-पहल राम से मिलते हैं तो राम कुशल
छते हुए उन्हें राज्य-धर्म की शिक्षा देते हैं उसका रूप यद्यपि उपदेशात्मक नहीं है
न्होंने तो राज्य की व्यवस्था के बारे में पूछा था। १०० वें सर्ग में यह पूरा वर्णन है,
न्य राम-कथाओं में राम के अनन्य भ्रातृप्रेम पर ही प्रकाश डाला गया है। राज्यतन्त्र
बारे में राम की चिन्ता को प्रदर्शित नहीं किया है।

'वाल्मीकीय रामायण' में चित्रकूट में जाबालि मुनि भी राम से नास्तिक विचार
हते हैं लेकिन यह सब उनके प्रेम में उनको लौटा ले जाने के लिए ही कहते हैं।
मानस' में मुनि का वर्णन नहीं है, 'अध्यात्म रामायण' में भी जाबालि का नाम नहीं
मलता। इसमें तो भरत को अन्त में यह ज्ञात हो जाता है कि यह सब तो भगवान्
ी माया है।

भरत अति विनय करके भी राम को नहीं लौटा सके। अन्त में उनकी चरण-
ादुका लेकर वापस सब-के-सब अयोध्या आ गये। भरतमिलाप का वर्णन 'वाल्मीकीय-
ामायण' तथा 'मानस' में अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। दोनों कवियों ने अपनी गहरी अनु-
ूति से इस चित्र को अति कुशल लेखनी से चित्रित किया है। 'अध्यात्म रामायण' में
ह वर्णन इतनी अधिक भावमयी अनुभूति द्वारा व्यक्त नहीं हुआ है जितना
ाध्यात्मिक चेतना के साथ।

'अद्भुत रामायण' में यह प्रसंग नहीं है।

'सूरसागर' में कुछ पदों में भरतमिलाप का वर्णन है लेकिन वह इतना संक्षिप्त
है कि इसमें 'मानस' की-सी वेदना नहीं मिलती बल्कि राम-कथा की एक घटना को
स्तुत करना ही इसका उद्देश्य लगता है।

अन्य राम-कथा-सम्बन्धी ग्रंथों में भरत के चित्रकूट जाकर चरणपादुका लेकर
लौट आने का वर्णन ही है।

लेकिन इन सबके अलावा 'जैन पद्मपुराण' में भरतमिलाप का प्रसंग तो है

लेकिन उसकी पृष्ठभूमि भी अलग है और साथ में घटना का रूप भी अन्य राम-कथाओं से भिन्न है। पहले हम भरत के राज्य मिलने, तथा राम वनगमन के प्रसंगों का वर्णन जैन-कथा के अनुसार कर चुके हैं। भरत ने राम के कहने से तथा पिता के उपदेश से राज्य स्वीकार अवश्य कर लिया था लेकिन उनके चित्त में वैराग्य फिर भी रहा। अब कैसे भरत के हृदय में राम से मिलने की अभिलाषा हुई वह कथा निम्न प्रकार है :

राजा दशरथ भरत का राज्याभिषेक करके राम के वियोग से अति दुःखित हुए। अन्तःपुर में रानियाँ भी विलाप कर रही थीं। राजा उन्हें सांत्वना दे वन को चले गये। वहाँ वह परम शुक्ल ध्यान की अभिलाषा करने लगे लेकिन पुत्र-शोक के कारण उनका चित्त स्थिर नहीं रह सका, आखिर उन्होंने विचार किया कि संसार में दुःख का मूल कारण मोह ही है, इसे धिक्कार है। मैंने जीव-रूप में अनेक योनियों में भ्रमण किया है, अनेक प्रकार के भोग भोगे हैं, अनेक बार नरक में गया हूँ, अनेक बार मैंने सुर-गति पाई है। अपने कर्मों के अनुसार इस संसार में मैंने क्या-क्या नहीं देखा। तीनों लोकों में ऐसा कोई जीव न होगा जिससे कभी मेरे सम्बन्ध न जुड़े हों, ये पुत्र मेरे कई बार पिता हुए होंगे, माता, शत्रु, मित्रादि सब-कुछ हुए होंगे। यह चतुर्गति-रूप संसार दुःख का निवास है। मैं सदा अकेला हूँ। यह काया अशुचि और मिथ्या है, तप करने से ही यह पवित्र हो सकती है। इस संसार में आत्म-ज्ञान प्राप्त करना अति दुर्लभ है। ये मुनि धन्य हैं जिनके उपदेश से मैंने यह मोक्ष-मार्ग प्राप्त किया है इसलिए अब पुत्रों की क्या चिन्ता करनी चाहिए।

ऐसा सोचकर राजा पूरी तरह निर्मोही हो गये। जिन देशों में पहले वे राजा के योग्य वैभव से आते थे उनमें ही अब निर्ग्रंथ दशा धारण किये बाईस परीषह जीतते शान्तिभाव संयुक्त होकर विहार करने लगे। पति के वैरागी होने पर और पुत्रों के वन जाने पर कौशल्या और सुमित्रा के हृदय को महान् शोक हुआ। वे निरन्तर रोती रहतीं। भरत उन्हें देखकर राज्य को विष के तुल्य समझने लगा। कैकेयी का हृदय भी उनके दुःख को देखकर करुणा से द्रवित हो गया। वह अपने पुत्र से कहने लगी—हे पुत्र! तूने राज्य पा लिया और बड़े-बड़े राजा तेरी सेवा करते हैं लेकिन राम और लक्ष्मण के बिना इस राज्य की शोभा नहीं है। उन दोनों महाविनयवान भाइयों के बिना क्या राज्य, क्या सुख, क्या देश की शोभा और क्या तेरी धर्मज्ञता? वे दोनों कुमार और राजकुमारी सीता जो सदा सुख भोगने वाले हैं कैसे उस पथरीले मार्ग पर चलेंगे। उन गुण के समुद्र पुत्रों के लिए ये दोनों माताएँ निरन्तर रुदन करती हैं और इस तरह मर जायेंगी इसीलिए तुम शीघ्रगामी तुरंग पर चढ़ कर शिताबी जाओ और उनको ले आओ। उनके साथ चिरकाल तक तुम राज्य करना। मैं तेरे पीछे से ही उनके पास आती हूँ।

माता की यह आज्ञा सुन चित्त में अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ भरत हजार अश्वों-सहित राम के पास चलने लगा। साथ मे उसने उन लोगों को भी ले लिया जो पहले राम ने अपने साथ से लौटा दिये थे। रास्ते मे उन्हें एक तेज बहती हुई नदी मिली जिसमें से वे वृक्षों के लट्ठे बांध कर धरनई बना कर पार हो गये। रास्ते में वे नर-नारियों से पूछते जाते थे कि राम कहाँ हैं। वे कहते थे कि अति निकट ही हैं। भरत एकाग्रचित हो सबको साथ लेकर उस सघन वन में चले और वहाँ एक सरोवर-तट पर दोनों भाई राम-लक्ष्मण को सीता सहित बैठे देखा। भरत ६ दिन के पश्चात् यहाँ तक आ पहुँचा। राम को देखकर भरत अश्व से उतर कर पैदल ही चलने लगा और पास जाकर पैरों पर गिर कर मूर्छित हो गया। थोड़ी देर बाद सचेत होकर हाथ जोड़ कर राम से विनती करने लगा :

हे नाथ ! आपने मुझे राज्य देकर क्या विडम्बना की है। आप सर्व-न्याय-मार्ग जानने वाले महाप्रवीण हैं, आपके होते हुए मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है। आपके बिना तो मैं जीवित भी नहीं रहना चाहता। आप ही मेरे प्राणों के आधार हो। उठो, अपने नगर को चलो। मुझ पर कृपा करके राज्य आप करो, आप ही राज्य के योग्य हो। मैं तो आपके सिर पर छत्र फेरता खड़ा रहूँगा और शत्रुघ्न चंवर ढारेगा, लक्ष्मण मन्त्री-पद लेगा। मेरी माता पश्चात्ताप करके अग्नि में जलना चाहती है। तुम्हारी और लक्ष्मण की माता तुम्हारे वियोग में विलाप कर रही हैं।

जिस समय भरत ये बातें कह रहा था उसी समय कैकेयी अति-शोक से भरी हुई वहाँ आ गई। उसके साथ अनेक सामन्त थे। वह राम और लक्ष्मण को हृदय से लगाकर बहुत रुदन करने लगी। राम ने माता को धैर्य बंधाया। कैकेयी कहने लगी :

हे पुत्र ! उठो, अयोध्या चलो, वहाँ राज्य करो। तुम्हारे बिना मेरा घर नगर वन के समान है। तुम महा बुद्धिमान हो, हम स्त्रियों की बुद्धि तो विनाशकारी है इसलिए मेरे अपराध को तुम क्षमा करो।

राम कहने लगे—हे माता ! तुम तो सब बातों में प्रवीण हो। तुम जानती हो कि क्षत्रियों का यही धर्म है कि जिस काम को विचारें उससे अन्यथा न करें। हमारे तात ने जो वचन कहा है वह तुम को और हमको निबाहना चाहिए। इससे भरत की अपकीर्ति न होगी।

राम ने भरत से कहा—हे भाई ! तू चिन्ता मत कर। राज्य लेकर तुझे अनाचार की शंका है लेकिन पिता की आज्ञा और हमारी आज्ञा पालने में अनाचार नहीं है।

ऐसा कहकर राम ने वन मे ही सब राजाओं के सामने भरत का राज्याभिषेक कर दिया और कैकेयी को प्रणाम कर, भरत को हृदय से लगा कर उन्होंने सबको विदा किया। कैकेयी और भरत सब राजाओं के साथ अयोध्या चल दिये।

अयोध्या में राम की आज्ञा से भरत निष्कंटक राज्य करने लगे। सारी प्रजा सुखी थी लेकिन भरत के हृदय में शान्ति नहीं थी। वे तीनों काल श्री जिननाथ की वन्दना करते रहते और मुनियों के मुँह से धर्म श्रवण करते रहते। अनेक मुनियों से सेवित द्युति भट्टारक नामक मुनि के पास जाकर भरत ने यह नियम लिया कि मैं राम के दर्शन प्राप्त करके मुनि-व्रत धारण करूँगा।

मुनि कहने लगे—हे भव्य ! जब तक राम वापस न आयें तब तक तुम गृहस्थ-व्रत का पालन करो। जब वृद्धावस्था आवेगी तो तप करना। महा अमोलक यति के धर्म की महिमा अपार है। श्रावक का धर्म तो यति के धर्म से नीचा है यदि यह प्रमाद-रहित होकर पालन किया जाय तो। जिनधर्म-नियम रत्नों के द्वीप के समान है, जो सत्य-व्रत को धारण कर भाव-रूप पुष्पों की माला बना कर जिनेश्वर को पूजता है उसकी कीर्ति पृथ्वी पर फैलती है।

इस प्रकार जिनधर्म का उपदेश देकर मुनि भरत से कहने लगे—हे भरत ! जिनेन्द्र की भक्ति से कर्म क्षय होते हैं और मनुष्य अक्षयपद प्राप्त करता है।

मुनि के ये वचन सुनकर भरत ने श्रावक-व्रत अंगीकार कर लिया और रात-दिन जैन पुराणादि ग्रंथों के श्रवण में आसक्त हो जिन-शासन का पालन करने लगा।

अन्य रामायणों में भी भरत का नन्दि ग्राम में मुनिव्रत लेकर रहने का उल्लेख है। उन्होंने चरणपादुकाएं सिंहासन पर रख दी थीं और शत्रुघ्न को अपनी तरफ से राज्य का नियंता नियुक्त कर दिया था।

उपर्युक्त जैन-कथा में राम की चरणपादुकाओं का वर्णन नहीं है। चित्रकूट का नाम इस प्रसंग में नहीं है बल्कि राम-लक्ष्मण और सीता के ठहरने के स्थान का नाम सिताबी कहा गया है। राम के पास हुई सभा का भी वर्णन नहीं है और न कौशल्या तथा सुमित्रा के भरत के साथ जाने का वर्णन है। वशिष्ठ मुनि को तो सम्भवतया जैन-कथा में कोई स्थान नहीं है।

उपर्युक्त जैन-कथा सार-रूप में तो अन्य राम-कथाओं के केन्द्रबिन्दु के इर्द-गिर्द ही घूमती है लेकिन इसका स्वरूप पूरी तरह जैन है, ब्राह्मणवाद की परम्परा तो इसको छू तक नहीं गई है। यहाँ तक कि भरत को तो कथा में श्रावक स्वीकार कर लिया है जो नित्य जैन पुराणादि सुनते हैं। आश्चर्य है कि त्रेतायुग के भरत कलियुग में ईसा के बाद जैन पुराणों को कैसे सुन पाये लेकिन इस प्रकार का तर्क ऐसे साम्प्रदायिक ग्रन्थों के विषय में सर्वथा अनावश्यक है क्योंकि इस प्रकार के उपदेशात्मक ग्रंथों में ऐतिहासिक दृष्टि तो नहीं के बराबर रहती है।

× × ×

उपर्युक्त कथा में यह बात ध्यान देने योग्य है कि राम या भरत या

दशरथ ने किसी के अलौकिक रूप की प्रतिष्ठापना नहीं की है बल्कि इन्हें श्री अरिनाथ की पूजा करने वाले, सदैव जिनशासन के अनुकूल चलने वाले जैन महापुरुष के रूप में लिया गया है। जैनों की कथा में राम पृथ्वी पर पैदा हुए जैन तीर्थंकरों से बड़े कभी नहीं दिखाये गये। एकाध जगह उन्हें अवतार के रूप में मान लिया गया है इसीलिये उनके जितने भी कार्यकलाप या उनसे सम्बन्धित स्थान हैं उनमे विशेष चमत्कारमयी ढंग से अलौकिक का आरोपण नहीं किया गया है।

'मानस' में या 'अध्यात्म रामायण' मे तथा अन्य ब्राह्मणों की उपासना-सम्बन्धी राम-कथाओं में यह स्पष्टतया मिलता है। प्रमाणस्वरूप हम चित्रकूट के वर्णन को ही लें। 'जैन पद्मपुराण' में चित्रकूट अत्यंत भयानक पर्वत बताया गया है, वहाँ होकर राम, लक्ष्मण और सीता गये थे लेकिन 'मानस' में तो राम के पहुँचने से उस बाग की शोभा और बढ़ गई।

जब देवताओं ने यह जान लिया कि राम को यह स्थान पसन्द आ गया तो देवताओं के प्रधान थवई[1] मकान बनाने वाले विश्वकर्मा को साथ लेकर चले और फिर :

कोल किरात बेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥
× × ×
बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥
× × ×
परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥

'वाल्मीकीय रामायण' में पर्णकुटी स्वयं लक्ष्मण ने बनाई और उसके बाद उन्होंने काले मृग का मांस पकाकर यज्ञ किया। इस वर्णन में किसी तरह का चमत्कार या अलौकिकता नहीं है।

---

१. यह महाभारत में भी भवन और यज्ञ-मण्डप-निर्माण करने वाले के रूप में आया है।

भरतमिलाप से वालि-वध तक

जब भरत चरणपादुका लेकर वापस अयोध्या चले आये तो रामचन्द्र ने वहाँ के तपस्वियों का उद्वेग और दूसरे स्थान पर जाने की उनकी उत्कंठा देखी। उनको जाते देख रामचन्द्रजी को अपने बारे में शंका हुई। उन्होंने हाथ जोड़कर आश्रम के अध्यक्ष ऋषि से कहा :

भगवन् ! क्या मुझ में राजा का आचरण नहीं ? किसी प्रकार का कुछ विकार दीख पड़ता है, जिससे तपस्वी लोग विकार को प्राप्त हो रहे हैं ? अथवा मेरे छोटे भाई को भूल से कुछ अनुचित आचरण करते ऋषि लोगों ने देखा है ? अथवा मेरी शुश्रूषा में रहने वाली सीता ने आप लोगों की सेवा करने में तो कुछ अनुचित व्यवहार नहीं किया ?

राम का यह विनीत स्वर सुनकर वह वृद्ध ऋषि कहने लगा—हे तात ! शुद्ध अन्तःकरण वाली सीता का व्यवहार ऋषियों के विरुद्ध क्यों होगा। सारे तपस्वी यहाँ रावण के छोटे भाई खर नामक राक्षस से पीड़ित हैं। वह जनस्थान में रहता है और यहाँ तपस्वियों को हर प्रकार के दुःख देता है। उसके साथ असंख्य राक्षस हैं जो पुरुष-भक्षक, महापापी और घमंडी हैं। वे हमारे यज्ञ को भ्रष्ट कर देते हैं। हम यहाँ से अश्व नामक ऋषि के आश्रम में जाकर बसेंगे। आप भी यहाँ से हमारे साथ चलिये। आपके साथ स्त्री है इसलिये आपका ऐसे स्थान पर रहना ठीक नहीं है।

राम उन तपस्वियों के साथ नहीं गये।

इस तरह का वर्णन केवल 'वाल्मीकीय रामायण' में ही मिलता है जब चित्रकूट के तपस्वी अपने आश्रमों को छोड़कर चले जाते हैं। 'मानस' में तो ऋषिगण भगवान् के प्रकट होने पर आनन्द से फूले नहीं समाते हैं, भला उन्हें इस प्रकार का क्या भय सता सकता था। इसके अलावा चित्रकूट पर इस प्रकार के भय का वर्णन भी अन्यत्र नहीं है। खर नामक राक्षस का परिचय भी राम को सबसे पहले इसी रामायण में चित्रकूट पर मिलता है। इन सबके अलावा ऋषियों के सामने अत्यंत दीन होकर वचन भी राम ने यहीं बोले हैं और उस पर भी ऋषि यहाँ उनके भगवान् स्वरूप को नहीं पहचान पाये हैं बल्कि अपने निश्चयानुसार ऋषि अश्व के आश्रम में चले गये हैं। उन्होंने उन्हें भी स्त्री के कारण आश्रम छोड़ देने की सलाह दी थी।

यह वर्णन पूरी तरह राम के लौकिक स्वरूप को ही व्यक्त करता है क्योंकि अलौकिक स्वरूप का ज्ञान सबसे पहले ऋषियों को होता है, वह 'मानस' की तरह यहाँ नहीं हुआ है।

चित्रकूट पर्वत से चलकर राम ऋषि अत्रि के आश्रम में आये। ऋषि ने उनका स्वागत किया। 'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' में अनेक प्रकार से स्तुति की। वही स्तोत्र भक्तों के लिये श्रेष्ठ हो गया। अत्रि की स्त्री अनुसुइयाजी ने सीता को पातिव्रत धर्म की शिक्षा दी। पातिव्रत धर्म का आदर्श भारतीय संस्कृति में अत्यत प्राचीन है इसलिये प्रत्येक राम-कथा में प्रायः एक ही प्रकार का उपदेश है।

अत्रि के आश्रम से राम दण्डकारण्य की तरफ चले। वहाँ उन्हे अनेक ऋषि तपस्या करते मिले। महर्षियों ने इन तीनों का स्वागत किया और एक पर्णकुटी में टिका दिया, फिर वे सब आकर कहने लगे—हे राघव ! देखो धर्मपालक और जनों का शरणदाता, महायशस्वी और प्रजारक्षक जो दण्डधारी राजा है वह प्रजा के लिये पिता के तुल्य है। ऐसा राजा इन्द्र के चतुर्थ भाग का रूप है। इसलिये वह पूजा के योग्य है और मान्य है। इसीलिये वह श्रेष्ठ और रमणीय पदार्थों का भोग करता है और लोगों से नमस्कृत रहता है। इस दृष्टि से हमारी रक्षा करना आपके योग्य है क्योंकि हम आपकी ही रक्षा में रहते हैं। आप नगर में रहिये या वन में परन्तु हैं तो आप हमारे राजा ही।

'रामचरित मानस' में ऋषि मुनियों की हड्डियों के ढेर को दिखाकर राम से कहते हैं :

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सब दरसी तुम अन्तरजामी।

राम के पूछने पर ऋषि उस हड्डियों के ढेर को दिखाकर यह नहीं कहते कि तुम हमारे राजा हो, तुम्हारा कर्त्तव्य है कि ऋषि-मुनियों के कष्टों का निवारण करो बल्कि उन्हें तो अन्तर्यामी समझ कर ऋषि सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया है।

'अध्यात्म रामायण' में भी यही दृष्टिकोण है।

'वाल्मीकीय रामायण' का दृष्टिकोण एक ऐतिहासिक सत्य को व्यक्त करता है। प्राचीन काल में जब सतयुग के अन्त में ब्राह्मण अपनी सत्ता खो बैठा और क्षत्रिय ने अपने सत्तागत स्वार्थ के लिये युद्ध करके सत्ता हथिया ली तो ब्राह्मण ने अपने गौरव को बनाये रखने के लिये क्षत्रिय का सहयोग ही श्रेष्ठ समझा और उसको राजा स्वीकार कर लिया। त्रेता में यह क्षत्रिय राजा ऋषि-मुनि तथा प्रजागणों की रक्षा करने वाला था जो राक्षस अथवा अनार्य जातियों से युद्ध करता और वन में रहने वाले तपस्वियों को शान्ति का प्रबन्ध करता। राम भी इसी प्रकार के शासक थे इसीलिये ऋषियों ने उन्हें राजा कहकर ही अपने कर्त्तव्य का ध्यान दिलाया है। यह प्रसंग यह स्पष्ट करता है कि यह संवाद प्राचीन है जबकि राम के अवतारवाद की कल्पना समाज में पूरी तरह

भरतमिलाप से वालि-वध तक

जब भरत चरणपादुका लेकर वापस अयोध्या चले आये तो रामचन्द्र ने वहाँ के तपस्वियों का उद्वेग और दूसरे स्थान पर जाने की उनकी उत्कंठा देखी। उनको जाते देख रामचन्द्रजी को अपने बारे में शंका हुई। उन्होंने हाथ जोड़कर आश्रम के अध्यक्ष ऋषि से कहा :

भगवन् ! क्या मुझ में राजा का आचरण नहीं ? किसी प्रकार का कुछ विकार दीख पड़ता है, जिससे तपस्वी लोग विकार को प्राप्त हो रहे हैं ? अथवा मेरे छोटे भाई को भूल से कुछ अनुचित आचरण करते ऋषि लोगों ने देखा है ? अथवा मेरी शुश्रूषा में रहने वाली सीता ने आप लोगों की सेवा करने में तो कुछ अनुचित व्यवहार नहीं किया ?

राम का यह विनीत स्वर सुनकर वह वृद्ध ऋषि कहने लगा—हे तात ! शुद्ध अन्तःकरण वाली सीता का व्यवहार ऋषियों के विरुद्ध क्यों होगा। सारे तपस्वी यहाँ रावण के छोटे भाई खर नामक राक्षस से पीड़ित हैं। वह जनस्थान में रहता है और यहाँ तपस्वियों को हर प्रकार के दुःख देता है। उसके साथ असंख्य राक्षस हैं जो पुरुष-भक्षक, महापापी और घमंडी हैं। वे हमारे यज्ञ को भ्रष्ट कर देते हैं। हम यहाँ से अश्व नामक ऋषि के आश्रम में जाकर बसेंगे। आप भी यहाँ से हमारे साथ चलिये। आपके साथ स्त्री है इसलिये आपका ऐसे स्थान पर रहना ठीक नहीं है।

राम उन तपस्वियों के साथ नहीं गये।

इस तरह का वर्णन केवल 'वाल्मीकीय रामायण' में ही मिलता है जब चित्रकूट के तपस्वी अपने आश्रमों को छोड़कर चले जाते हैं। 'मानस' में तो ऋषिगण भगवान् के प्रकट होने पर आनन्द से फूले नहीं समाते हैं, भला उन्हें इस प्रकार का क्या भय सता सकता था। इसके अलावा चित्रकूट पर इस प्रकार के भय का वर्णन भी अन्यत्र नहीं है। खर नामक राक्षस का परिचय भी राम को सबसे पहले इसी रामायण में चित्रकूट पर मिलता है। इन सबके अलावा ऋषियों के सामने अत्यंत दीन होकर वचन भी राम ने यहीं बोले हैं और उस पर भी ऋषि यहाँ उनके भगवान् स्वरूप को नहीं पहचान पाये हैं बल्कि अपने निश्चयानुसार ऋषि अश्व के आश्रम में चले गये हैं। उन्होंने उन्हें भी स्त्री के कारण आश्रम छोड़ देने की सलाह दी थी।

यह वर्णन पूरी तरह राम के लौकिक स्वरूप को ही व्यक्त करता है क्योंकि अलौकिक स्वरूप का ज्ञान सबसे पहले ऋषियों को होता है, वह 'मानस' की तरह यहाँ नहीं हुआ है।

चित्रकूट पर्वत से चलकर राम ऋषि अत्रि के आश्रम में आये। ऋषि ने उनका स्वागत किया। 'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' में अनेक प्रकार से स्तुति की। वही स्तोत्र भक्तों के लिये श्रेष्ठ हो गया। अत्रि की स्त्री अनुसुइयाजी ने सीता को पातिव्रत धर्म की शिक्षा दी। पातिव्रत धर्म का आदर्श भारतीय संस्कृति मे अत्यंत प्राचीन है इसलिये प्रत्येक राम-कथा में प्रायः एक ही प्रकार का उपदेश है।

अत्रि के आश्रम से राम दण्डकारण्य की तरफ चले। वहाँ उन्हें अनेक ऋषि तपस्या करते मिले। महर्षियों ने इन तीनों का स्वागत किया और एक पर्णकुटी में टिका दिया, फिर वे सब आकर कहने लगे—हे राघव! देखो धर्मपालक और जनों का शरणदाता, महायशस्वी और प्रजारक्षक जो दण्डधारी राजा है वह प्रजा के लिये पिता के तुल्य है। ऐसा राजा इन्द्र के चतुर्थ भाग का रूप है। इसलिये वह पूजा के योग्य है और मान्य है। इसीलिये वह श्रेष्ठ और रमणीय पदार्थों का भोग करता है और लोगों से नमस्कृत रहता है। इस दृष्टि से हमारी रक्षा करना आपके योग्य है क्योंकि हम आपकी ही रक्षा में रहते हैं। आप नगर में रहिये या वन में परन्तु हैं तो आप हमारे राजा ही।

'रामचरित मानस' में ऋषि मुनियों की हड्डियो के ढेर को दिखाकर राम से कहते हैं:

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सब दरसी तुम अन्तरजामी।

राम के पूछने पर ऋषि उस हड्डियों के ढेर को दिखाकर यह नहीं कहते कि तुम हमारे राजा हो, तुम्हारा कर्तव्य है कि ऋषि-मुनियों के कष्टों का निवारण करो बल्कि उन्हें तो अन्तर्यामी समझ कर ऋषि सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया है।

'अध्यात्म रामायण' में भी यही दृष्टिकोण है।

'वाल्मीकीय रामायण' का दृष्टिकोण एक ऐतिहासिक सत्य को व्यक्त करता है। प्राचीन काल में जब सत्ययुग के अन्त में ब्राह्मण अपनी सत्ता खो बैठा और क्षत्रिय ने अपने सत्तागत स्वार्थ के लिये युद्ध करके सत्ता हथिया ली तो ब्राह्मण ने अपने गौरव को बनाये रखने के लिये क्षत्रिय का सहयोग ही श्रेष्ठ समझा और उसको राजा स्वीकार कर लिया। त्रेता में यह क्षत्रिय राजा ऋषि-मुनि तथा प्रजागणों की रक्षा करने वाला था जो राक्षस अथवा अनार्य जातियों से युद्ध करता और वन में रहने वाले तपस्वियों की शान्ति का प्रबन्ध करता। राम भी इसी प्रकार के शासक थे इसीलिये ऋषियों ने उन्हें राजा कहकर ही अपने कर्तव्य का ध्यान दिलाया है। यह प्रसंग यह स्पष्ट करता है कि यह संवाद प्राचीन है जबकि राम के अवतारवाद की कल्पना समाज में पूरी तरह

नहीं उतर पाई थी। अन्य राम-कथाओं का वर्णन परवर्ती धार्मिक विश्वासों में रंग गया है।

विराध राक्षस का वध

विराध राक्षस के बारे में 'रामचरित मानस' में केवल इतना मिलता है :

मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहिं रघुबीर निपाता॥

वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है या यों कहें भगवान् राम की अलौकिक शक्ति के सामने विराध का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना गोस्वामी जी को कहाँ तक मान्य था।

'अध्यात्म रामायण' में इससे थोड़ा अधिक वर्णन है। विराध आकर सीता जी को माँगता है, युद्ध होता है और युद्ध में वह मारा जाता है।

'वाल्मीकीय रामायण' में यह वर्णन तीन सर्गों में है। यद्यपि इसमें अन्त में तो राम के अलौकिक रूप की ओर संकेत कर दिया गया है लेकिन युद्ध के वर्णन में एक तरफ तो कवि ने राक्षस की प्रचण्ड शक्ति बताई है और दूसरी ओर राम की दयनीयता भी बताने में कथाकार नहीं हिचकिचाया है। कथा इस प्रकार है :

जब रामचन्द्र मुनियों का आश्रम छोड़कर आगे वन में चले तो वहाँ एक राक्षस पर्वतशृंग के तुल्य विशाल दीख पड़ा। गहरी-गहरी उसकी आँखें थीं। मुख उसका बड़ा विकट, कराल उदर, घिनौनी आकृति, टेढ़ा-मेढ़ा बड़ा विकराल और भयंकर रूप था। वह व्याघ्र के ऐसे चर्म को पहने था जो रुधिर से गीला था। वह सब प्राणियों को डराने वाला राक्षस काल की तरह मुँह फाड़े हुए था। वह तीन सिंहों, चार व्याघ्रों, दो हुँडारों, दस मृगों और दन्तसहित मज्जा में भरे हुए बड़े हाथी के मस्तक को बड़े शूल में गोदे हुए नाद करता और चिल्लाता था। इन तीनों को देखकर वह काल की तरह इन पर झपटा और बड़ा घोर शब्द करता हुआ पृथ्वी को कँपाकर सीता को गोद में उठाकर ले गया और कहने लगा—मैं विराध नामक राक्षस हूँ, तुम यहाँ स्त्री को लेकर क्यों आये हो, अब मैं तुम दोनों का रुधिर पीऊँगा और तुम्हारी स्त्री मेरी स्त्री होगी।

यह सुनकर सीता भय से काँपने लगीं और राम अप्रतिम होकर शुष्क मुँह से कहने लगे—हे लक्ष्मण! देखो, यह मेरी भार्या, जनक की पुत्री सुआचार युक्त है। यह इस विराध के फन्दे में जा पड़ी है। अत्यन्त सुख भोगने वाली यशस्विनी राजपुत्री की यह दशा हुई। हे लक्ष्मण! हमारे विषय में कैकेयी का जो अभिप्राय था और वर के द्वारा उसको जो इष्ट था वह आज पूरा हुआ। वह कैकेयी इस अवस्था में पुत्र के लिये पाकर सन्तुष्ट नहीं होती और उसने मुझे ऐसे सब जीवों से घिरे वन में निकलवा आज इस घड़ी उसका मनोरथ पूर्ण हुआ। हे सौमित्रे! इस समय सीता को

ऐसी दशा में देखने से मुझ को जैसा दुःख हो रहा है वैसा न मुझे पिता के मरने पर हुआ और न राजपाट छूटने पर।

यह सुनकर लक्ष्मण की आँखें शोक से डबडबा आई और वह क्रोधित होकर कहने लगा—हे काकुत्स्थ! मेरे ऐसे अनुचर के रहते, सब प्राणियों के स्वामी, और इन्द्र के तुल्य आप अनाथ की भाँति क्यों संताप करते हैं। मैं इस राक्षस को अभी मार गिराता हूँ।

इसके पश्चात् राम-लक्ष्मण का विराध से युद्ध हुआ। दोनों राजकुमारों ने भरसक प्रयत्न कर लिया लेकिन वह राक्षस मर नहीं सका बल्कि वह तो राम और लक्ष्मण दोनों को उठा कर भाग गया। यह देखकर सीता विलाप करने लगी—हा! यह राक्षस राजा दशरथ के पुत्र सत्यधारी, शीलवान और पवित्रमूर्ति रामचन्द्र को और लक्ष्मण को भी हरे लिया जाता है। अब मुझे ये वनैले सिंह और व्याघ्र भक्षण कर लेंगे। हे राक्षसोत्तम! मैं तुझे नमस्कार करती हूँ। तू इनको छोड़ दे, मुझे भले ही हरण कर ले।

सीता की करुण वाणी सुनकर दोनों भाइयों ने विराध की दोनों भुजाएं काट डालीं और उसे पृथ्वी पर पटक दिया और जिन्दा ही पृथ्वी में गाड़ दिया।

तब वह राक्षस बोला—हे पुरुषश्रेष्ठ! इन्द्रतुल्य बलधारी आपने मुझे मार लिया। मैंने पहले मोहवश आपको नहीं पहचाना था। अब मैं जान गया हूँ कि आप कौशल्या के पुत्र हैं। हे रामचन्द्र! मैं पूर्व-जन्म में तुम्बरू गन्धर्व था, शाप से ही मेरी यह गति हुई है।

उपर्युक्त वर्णन राम के मानवीय गुण और दोषों को अपने यथार्थ रूप में प्रकट करता है। राम के युग में राक्षसों के द्वारा इस तरह का भीषण युद्ध अति सम्भव है क्योंकि आर्यों के समान राक्षस भी अत्यन्त शक्तिशाली थे और राम के समय तक वे आर्यों से किसी तरह दबते नहीं थे। जनस्थान तक उनके साम्राज्य का विस्तार था। विराध नामक राक्षस कोई अत्यन्त प्रतापी राजा होगा जो राम की स्त्री को भी छीन ले गया और राम उसके सामने अति दयनीय अवस्था में विलाप करने लग गये। अन्य रामायणों में तो इस राक्षस के इतने गौरव का वर्णन मर्यादा की सीमाओं के भीतर दबकर नहीं हो सका जिससे एक ऐतिहासिक सत्य को आसानी से झुठला दिया गया।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में विराध राक्षस का नाम नहीं है। अन्य रामकथाओं में भी प्रायः एकाध में ही यह मिलता है।

× × ×

विराध राक्षस को मारकर राम शरभंग ऋषि के आश्रम में गये। 'वाल्मीकीय-

रामायण' और 'मानस' में जो ऋषि तथा उनके आश्रम का वर्णन है वह अलग-अलग है।

'वाल्मीकीय रामायण' में राम ने दूर से ऋषि के आश्रम में एक बड़ा चमत्कार देखा। साक्षात् देवराज इन्द्र वहाँ आये थे। उनका शरीर सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान था। देवता लोग उनके अनुगामी होकर चलते थे। उनका रथ पृथ्वी पर नहीं आकाश में जा रहा था। उसमें हरे घोड़े जुते हुए थे। उसी प्रकार मुनि भी अनेक महात्माओं से पूजित थे। उनके मस्तक पर तरुण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान, श्वेत मेघ के तुल्य, और चन्द्रमण्डल के सदृश विमल छत्र लगा था। उनके दोनों ओर श्रेष्ठ देवांगनायें चँवर डुला रही थीं। देव, गन्धर्व, सिद्ध और बहुत से महर्षि लोग श्रेष्ठ वाक्यों से उनकी स्तुति कर रहे थे।

यह सबकुछ देखने के पश्चात् राम ने लक्ष्मण को प्रभा और श्री से युक्त, तपते हुए सूर्य के तुल्य एक आकाशचारी रथ को दिखाया। यह इन्द्र का ही रथ था। इन्द्र मुनि को सदेह ब्रह्मलोक को ले जाने आया था क्योंकि उनके तप ने उन्हें इसका अधिकारी बना दिया था। राम के पूछने पर मुनि ने कहा—हे नर व्याघ्र ! लेकिन मैं तुमको पास आया देखकर इन्द्र के साथ नहीं गया क्योंकि आप-जैसे महात्मा और धार्मिक अतिथि का उचित सत्कार किये बिना मैं कैसे जा सकता था। हे नरश्रेष्ठ ! मैंने जिन अक्षय और मनोहर अनेक लोकों को जीत रखा है उन सबको तुम ग्रहण करो।

सब शास्त्रों के ज्ञाता राम ने कहा—हे मुनि ! मैं स्वयं इन लोकों का सम्पादन करूँगा।

'मानस' में ऋषि के आश्रम में इन्द्र के आगमन का वर्णन नहीं है। इसके अलावा मुनि तो यहाँ दिन-रात भगवान् राम के दर्शनों के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे। वे कहते हैं :

> कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला।
> जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥
> चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
> नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

यहाँ तो ऋषि अतिथिसत्कार के निमित्त नहीं रुके बल्कि राम की भक्ति का वर माँगने के लिये ही ठहरे और फिर ब्रह्मलोक जाते समय यह ही कहते गये :

> सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
> मम हियें बसहु निरंतर सगुन रूप श्री राम॥

दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त चमत्कार भरे गये हैं लेकिन यहाँ इनको गुनना करने का हमारा तात्पर्य यह है कि मूल कथा में किस तरह समय-समय पर चमत्कार आये हैं

और किस तरह विभिन्न कवियों ने अपनी धारणा के अनुसार उन्हें बदला है। जहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' में शरभंग ऋषि केवल आतिथ्य-सत्कार का भाव ही राम के प्रति दिखाते हैं, वहाँ 'मानस' में वे उनके अनन्य भक्त हो जाते हैं और उनकी सगुण मूर्ति को हृदय में निरंतर बसने का वर मांगते हैं। दोनों ही वर्णन परवर्ती हैं लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' का वर्णन अवश्य अपने बाह्यावरण के होते हुए भी अन्दर से झिलमिलाते सत्य को दबा नहीं पाता।

इसके पश्चात् राम को विभिन्न प्रकार के ऋषि मिले।

'वाल्मीकीय रामायण' में उनका नाम गिनाया है :

(१) वैखानस (२) वालखिल्य (३) संप्रक्षाल (४) मरीचप (५) अश्मकुट्ट (६) पत्राहार (७) दन्तोलूखली (८) उन्मज्जक (९) गात्रशय्य (१०) अशय्य (११) अनवकाशिक (१२) केवल जल पीकर रहने वाले (१३) वायु भोजन करने वाले (१४) छाया रहित स्थान पर रहने वाले (१५) लीपी हुई पवित्र भूमि पर सोने वाले (१६) पर्वत के शिखर इत्यादि ऊर्ध्व स्थान पर रहने वाले (१७) गीले चीर वस्त्र पहनने वाले (१८) सदा जप में तत्पर (१९) सदा तप करने वाले (२०) पञ्चाग्नि तापने वाले।

अन्य किसी राम-कथा में इतने विस्तार से इन विभिन्न तपस्याओं के रूप को अपनाये हुए ऋषियों का वर्णन नहीं है।

इन ऋषियों ने आकर राम से यह नहीं कहा कि हे भगवान्! आप त्राणकर्त्ता हैं, सर्वज्ञाता हैं, आप राक्षसों से हमारी रक्षा करें। इस सबको छोड़कर ऋषि राम से कहने लगे :

हे रामचन्द्र, आप इक्ष्वाकुवंशीय राजा हैं। आप इन्द्र की तरह शत्रुओं को नष्ट करने वाले हैं। आप तीनों लोकों में विख्यात और बहुत ही पवित्र हैं। आप बड़े योद्धा हैं। आप सत्यप्रतिज्ञ हैं। हे धर्मज्ञ! हे धर्मरक्षक! हम याचक बनकर आपसे कहते हैं उसे कृपापूर्वक सुनिये क्योंकि आप अभय के दाता हैं। हे नाथ! उस राजा को बड़ा अधर्म लगता है जो छठवाँ अंश लेकर भी प्रजा का पुत्र की तरह पालन नहीं करता है। जो राजा यत्नपूर्वक सावधानी से पुत्रों की भाँति अपने राजवासियों की अपने प्राणों की नाईं सदा रक्षा करता है उसकी इस लोक में बहुत दिन तक कीर्ति होती है और वह ब्रह्मलोक में वास करता है। फल-मूल खाकर मुनि लोग जिस धर्म का आचरण करते हैं उसका चतुर्थांश उस राजा का होता है जो धर्म से प्रजा-पालन करता है।

इस प्रकार राज्य-धर्म की ओर इंगित करके उन ऋषियों ने राजा राम से उनकी राक्षसों से रक्षा करने की प्रार्थना की। इसके बाद उन ऋषियों ने उन मुनियों के शरीर दिखाये। जिन्हें राक्षसों ने मार डाला था। 'मानस' में ऋषि स्वर्गवासी मुनियों

की हड्डियाँ राम को दिखाते हैं लेकिन वहाँ राम के पूछने पर मुनियों ने उन्हें राज्य-धर्म की याद दिलाकर एक राजा के नाते उनकी रक्षा करने के लिए नहीं कहा बल्कि कहा :

जानत हूँ पूछिअ कस स्वामी । सब दरसी तुम अन्तरजामी ॥

अर्थात् भगवान् राम तो अन्तर्यामी हैं उन्हें क्या बताया जाय कि किसने इन मुनियों का वध किया और उनका इस परिस्थिति में क्या कर्तव्य है ।

'अध्यात्म रामायण' में भी राम ने ऋषियों की दयनीय अवस्था देखकर प्रतिज्ञा की कि वे एक भी राक्षस को जीवित नहीं छोड़ेंगे ।

अन्य राम-कथाओं में भी वे इसी प्रकार निश्चय करते हैं ।

इसके पश्चात् राम सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गये । 'मानस' में राम ने उन्हें समाधिस्थ पाया, फिर उन्होंने उनके अन्तर में पहले अपना रूप दिखाया फिर चतुर्भुज रूप दिखाकर उन्हें जगाया । सुतीक्ष्ण जाग कर साक्षात् भगवान् को आया देख उनकी वन्दना करने लगे ।

'अध्यात्म रामायण' में चतुर्भुज स्वरूप दिखाने तथा समाधि का वर्णन नहीं है बल्कि जाग्रत अवस्था में ही वे राम को देखकर स्तुति करने लग गये—हे परमेश्वर ! अंत में आपके दर्शनों से सनाथ हो गया—मनुष्य मायावश ही आपके रूप को नहीं जान पाता है । आपके दर्शनों से मेरी तो मुक्ति हो गई ।

'वाल्मीकीय रामायण' में साधारणतया मुनि ने राम का स्वागत किया है ।

'वाल्मीकीय रामायण' में राम अगस्त्य ऋषि के भ्राता के आश्रम पर और गये थे । जहाँ इल्वल और वातापि दो राक्षसों के अत्याचार का वर्णन उन्होंने सुना । इल्वल और वातापि की कथा अन्य रामायणों में नहीं है इसे हम अन्तर्कथाओं वाले अध्याय में लेंगे ।

इसके पश्चात् अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर होकर वे पंचवटी पहुँचे जहाँ उन्होंने कुछ दिन रहने का निश्चय कर लिया । यहाँ तक के वर्णन में रामायणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

× × ×

सीता-हरण

पंचवटी में राम, लक्ष्मण और सीता के पास रावण की विधवा बहन शूर्पणखा आई । वह राम और लक्ष्मण को विवाह के लिए लुभाने लगी और अन्त में काम बनता न देखकर उन्हें भयभीत करने लगी । तब राम के इशारे से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये वह बिल्लाती हुई अपने भाई जनस्थान के राजा खर के पास गई । खर ने अत्यन्त क्रोधित होते हुए अपनी विराट् राक्षसों की सेना-सहित राम पर

आक्रमण कर दिया। राम के कहने से लक्ष्मण सीता को लेकर पहाड़ की कन्दरा में चले गये। अब एक तरफ तो अकेले राम थे और दूसरी ओर अपार राक्षसों की सेना थी जिनके पास अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे। उन सबके होते हुए भी राम युद्ध में जीते और सब राक्षस मारे गये।

'मानस' में युद्ध का वर्णन अधिक विस्तार के साथ नहीं है क्योंकि भगवान् राम के साथ कवि को युद्ध के उतार-चढ़ाव दिखाना कहाँ तक उचित था, उसने तो सब कुछ मानो पहले ही कल्पित किया हुआ वहाँ रख दिया है। युद्ध में राक्षसों के पराक्रम की ओर गोस्वामी जी ने थोड़ा भी इंगित नहीं किया है, सम्भव है इससे भगवान् राम के गौरव पर आँच आ जाती। 'वाल्मीकीय रामायण' में युद्ध का वर्णन अरण्यकाण्ड के बाईस से लेकर तीसवें सर्ग तक है। उस समय पूरी तरह युद्ध का उतार-चढ़ाव मिलता है फिर भी चूँकि रामायण का रूप परवर्ती है इसलिए राम की अलौकिक शक्ति का अप्रत्यक्ष प्रभाव इस पर दीखता है।

सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि हजारों की संख्या की विराट् राक्षसों की सेना का विध्वंस क्या अकेला राम कर पाया होगा, यह सब-कुछ मानवीय सामर्थ्य के बाहर एक चमत्कारक कल्पनामात्र है। हो सकता है राम के साथ राक्षसों के विरुद्ध आर्य या उनके सहयोगी उस स्थान पर लड़े हों क्योंकि मुनियों ने इधर-उधर घूमकर अवश्य इसकी पृष्ठभूमि तैयार कर ली होगी और फिर राक्षसों के भीषण अत्याचार से तंग आई आसपास के प्रदेशों की जनता राम के साथ युद्ध में लड़ी होगी तभी वह इतने अधिक राक्षसों को परास्त कर पाये नहीं' तो क्या कारण था कि अपार सैन्य के होते हुए भी उसी इक्ष्वाकुवंश के राजा दशरथ और अनरण्य राक्षस रावण से नहीं जीत पाये थे।

अन्य रामकथाओं में भी राम के द्वारा खर-दूषण का वध एक कठपुतली के तमाशे की भाँति ही दिखाया गया है।

जब सब राक्षस जनस्थान में मारे गये तो अकंपन नामक राक्षस वहाँ से बच निकला और लंका में रावण से उसने सारा वृत्तान्त कहा। उसने राम के शौर्य्य की रावण से बहुत प्रशंसा की और कहा—हे दशग्रीव! तुममें यह सामर्थ्य नहीं कि उन को रण में जीत सको; चाहे तुम सब राक्षसों को साथ ले जाओ परन्तु उनका सामना करना कठिन है। मैं तो उनका पराक्रम देखकर यही मानता हूँ कि उन्हें तो देवता भी नहीं मार सकते और न असुर उनका कुछ बिगाड़ सकते हैं। परन्तु उनके वध का मैं एक उपाय बताता हूँ। उनकी सीता नाम की अत्यन्त सुन्दरी भार्या है, अगर तुम उसका हरण करके ले आओ तो उन्हें मरा ही समझो।

थोड़ी देर विचार करके रावण ने कहा—मैं सवेरे ही जाकर वैदेही को हर लाऊँगा।

अकंपन को विदा कर वह गधों के रथ पर सवार होकर मारीच के आश्रम की ओर चला। वहाँ उसने मारीच से कहा—हे तात! राम ने मेरे सारे समाज को जन-स्थान में नष्ट कर दिया है; इसलिये मैं राम की भार्या का हरण करना चाहता हूँ। तुम मेरी सहायता करो।

इस पर मारीच ने उत्तर दिया—हे राक्षसराज! किस मित्र-रूप शत्रु ने तुम्हें सीता का नाम बताया है, किसने इस तरह की कुलघातक सलाह तुम्हें दी है। वह राम सिंह के समान हैं, राक्षसों की सेना को मृगसमूह के समान नष्ट कर डालेंगे। इसलिये तुम वापस लंका चले जाओ। तुम उनका विरोध करने में समर्थ नहीं हो। अपने हृदय से सीता-हरण का विचार निकाल दो।

यह सुनकर रावण चुपचाप लंका लौट आया और अपने राजमन्दिर में रहने लगा। इसके पश्चात् शूर्पणखा रोती-चिल्लाती लंका में आई और उसने रावण को सारा समाचार सुनाकर उसे बार-बार धिक्कारा, उसके पौरुष को जगाया। रावण शूर्पणखा की जली-कटी बातें बरदाश्त न कर सका और फिर अपने पूर्व विचार को पुनः सफलीभूत करने के लिये एक बार पुनः मारीच के पास गया।

मारीच ने अनेक उदाहरण देकर उसे समझाया लेकिन रावण अपमान की अग्नि से जल रहा था। वह मारीच की सलाह को इस बार स्वीकार न कर सका और उसने उसे अधर्मी बताया क्योंकि वह राक्षसराज की आज्ञा पालन नहीं करता था। रावण ने उसे मृत्यु की धमकी दी। फिर भी मारीच ने बड़ी कठोर वाणी बोलकर उसका विरोध किया, आखिर मृत्यु के भय से उस नीच काम के लिये वह तैय्यार हो गया।

उपर्युक्त वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' का है। अन्य राम-कथाओं से इसमें कुछ भेद है। उनमें अकंपन आकर पहले रावण से यह सारा समाचार नहीं कहता बल्कि शूर्पणखा ही आकर सारा वृत्तान्त कहती है। अपनी बहन की दयनीय अवस्था देखकर ही रावण सीता-हरण के बारे में विचार करता है, किसी ने उसे सलाह नहीं दी थी जैसे उपर्युक्त कथा में अकंपन की सलाह का वर्णन है। अन्य कथाओं में एक बार रावण का मारीच के पास जाकर लौट आने का भी वर्णन नहीं है और न रावण और मारीच का इतना लम्बा संवाद मिलता है। उन कथाओं में रावण इतने धैर्य के साथ मारीच की बातों को सुनता ही नहीं और न मारीच ही इतने दृढ़-संकल्प का है जो रावण का अन्त तक विरोध करता रहे।

इसके अलावा 'अध्यात्म रामायण' और 'मानस' में तो रावण को ऐसा दिखाया गया है जैसे वह भगवान् विष्णु के अवतार राम के इस सृष्टि में प्रकट होने का रहस्य ... की मृत्यु से जान गया था और उनसे मृत्यु पाकर अपनी मोक्ष-साधना के ...ने यह सारा उपद्रव पैदा किया था।

'मानस' के अरण्यकाण्ड में कथा इस प्रकार है।

खर-दूषण की मृत्यु पर रावण कहता है :

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर, दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हइ को मारइ बिनु भगवंता॥
सुर रंजन भंजन महिभारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैर हरि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौं नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥

वस्तु-सत्य पर अध्यात्मवाद का आवरण पहनाने वाले ग्रंथों में सीता-हरण का यह रहस्य है। इससे आगे का सारा राम-रावण-विरोध अपने कथा के स्वाभावि गुण औद्भुत्य (Strangeness) और औत्सुक्य (Suspense) को खोकर एक कठपुतल का तमाशा जैसा लगता है जिसमें एक भक्त ही भगवान् की अलौकिक महिमा में डूब आनन्द ले सकता है, ऐतिहासिक पदार्थ की खोज करने वाला विद्यार्थी नहीं।

'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' में सीता-हरण की बात को राम भी पहले से ही जानते थे और उन्होंने सीता का इसलिये अग्नि-प्रवेश करा दिया था।

'मानस' में वर्णन इस प्रकार है। राम सीता से कहते हैं :

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनिल समानी॥
निज प्रतिबिम्ब राखि तहँ सीता। तैसेइ सील रूप सुबिनीता॥

इसी प्रकार 'अध्यात्म रामायण' में राम सीता से कहते हैं :

हे जानकी! मेरे वचन सुनो। रावण संन्यासी का रूप रख कर तेरे समीप आयेगा और तुम अपनी छाया का रूप अपना-सा ही करके इस पर्णकुटि में प्रवेश करो। मेरी आज्ञा से तुम एक वर्ष तक अदृश्य होकर अग्नि में स्थित हो जाओ, फि रावण के वध के बाद मैं तुम्हें सच्चे स्वरूप में प्राप्त कर लूँगा।

यह सुन कर सीता अग्नि में प्रवेश कर गई और उसमें से एक माया-रूप सीता निकली।

'वाल्मीकीय रामायण' में इस प्रकार का चमत्कारमयी वर्णन नहीं है। उसमें राम सीता से इस तरह रूप बदल कर नाटक के से अभिनय के लिये नहीं कहते बल्कि कथा सुस्पष्ट गति से बिना अपना औत्सुक्य खोये हुए आगे बढ़ती है।

थोड़ी देर बाद मारीच राक्षस सुनहरी वर्ण वाले मृग की आकृति में पंचवटी पर आया। सीता उस नाना रंगों से चित्रित मृग को देख कर उसके चर्म की आकांक्षा करने लगी। राम यह समझ गये थे कि यह कोई राक्षस माया रचकर यहाँ आया है

लेकिन फिर भी सीता की इच्छा को संतुष्ट करने के लिये वे धनुष-बाण लेकर उस मृग को मारने के लिये दौड़ पड़े। चलते वक्त राम लक्ष्मण से कह गये थे कि जब तक मैं इस मृग को मारकर वापस न आ जाऊँ तब तक सीता के साथ तुम यहीं रहना। सीता की रक्षा के लिये इस बुद्धिमान्, चतुर और बली जटायु पक्षी को भी सावधान करना। तुम भी प्रतिक्षण चौकन्ने रहना।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जटायु इस समय आश्रम में किसी रामायण के वर्णन मे नहीं है, हाँ, दण्डकारण्य में प्रवेश करते समय तो राम को जटायु मिला था। उसके बाद वह कब छोड़ कर चला गया यह कुछ पता नहीं लगता। थोड़ी देर पश्चात् सीता-हरण के बाद वही जटायु रावण को मार्ग में मिलता है।

राम ने मृग को मार गिराया तब वह राक्षस 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' चिल्लाने लगा। यह सुन कर सीता का हृदय भयभीत हो गया। उसने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण! जाओ रामचन्द्र को तो देखो। इस घड़ी मेरा मन ठिकाने नहीं है। वन मे इस तरह आर्त्तनाद करने वाले अपने भाई की रक्षार्थ तुम जाओ।

लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार वहाँ से नहीं गये। तब सीता ने उनसे कुछ कटु वचन कहे। 'रामचरित मानस' मे वे कटु वचन मर्यादा के उल्लंघन के भय से नहीं दिये गये हैं क्योंकि इससे सीता की महानता पर आँच आती है। सीता ने इस अवसर पर पीड़ित होकर लक्ष्मण से कहा—हे सौमित्रे! तुम भाई के मित्र-रूप शत्रु हो। मेरे लिये तुम अपने भाई का नाश चाहते हो और अवश्य तुम मेरे लोभ से रामचन्द्र के पास नहीं जाना चाहते। तुमको रामचन्द्र का दुःख ही प्रिय है। भाई पर तुम्हारा स्नेह नहीं है क्योंकि इसी कारण तुम महाद्युतिमान रामचन्द्र के बिना निश्चिंत बैठे हो। सुनो, यदि रामचन्द्र को कुछ हो गया तो मैं जी कर क्या करूँगी।

यह कहकर सीता रोने लगी। लक्ष्मण ने धैर्य्य बंधाते हुए कहा—हे सीते! देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, किन्नर और मृगों में तथा भयंकर दानवों में ऐसा कोई नहीं जो राम के सम्मुख आ खड़ा हो या उनका सामना करे, इसलिये तुम्हें यह कहना उचित नहीं है। मैं तुम्हें इस वन में अकेली छोड़ जाने की इच्छा नहीं करता। राक्षस लोग नाना प्रकार की बोली बोलते हैं इसलिये तुम चिन्तित न हो।

लक्ष्मण की यह बात सुन कर सीता क्रुद्ध हो गईं और लाल-लाल आँखें करते हुए लक्ष्मण से बोलीं :

निन्दित करतूत करने वाले, घातक, हे कुलनाशक! मैं जानती हूँ कि तुमको राम का महा दुःख प्यारा लगता है। राम का दुःख देख कर तुम ये बातें कह रहे हो। हे लक्ष्मण! तुम्हारे सदृश घातक और सदा छिपे-छिपे व्यवहार करने वाले शत्रुओं को जो ऐसी पापबुद्धि हो तो इसमें आश्चर्य क्या। हे लक्ष्मण! तू बड़ा दुष्ट हृदय है। इसीलिये तो तू राम के साथ वन में अकेला आया है अथवा मेरे लिये भरत

ने तुझे गुप्त रूप से भेजा है। सो हे सौमित्रे! यह बात तुम्हारी न तो सिद्ध हो सकती है और न भरत की, क्योंकि नीलकमल श्याम और कमल-सदृश नेत्रों वाले रामचन्द्र पति को छोड़कर अन्य व्यक्ति को मैं क्यों चाहूँगी। मैं तेरे सामने ही प्राण त्याग कर दूँगी। राम के बिना मैं क्षण-भर भी इस भूतल पर जीवित न रहूँगी।

सीता की इन कठोर बातों को सुनकर लक्ष्मण कहने लगे :

मैथिली! तुम मेरे लिये देवी हो, इसलिये मैं उत्तर नहीं दे सकता। स्त्रियों का ऐसा अनुचित बोलना कुछ नई बात नहीं क्योंकि उनका तो यही स्वभाव है। संसार में देख पड़ता है कि स्त्रियाँ धर्म छोड़ देती हैं। वे चञ्चल होती हैं। स्वभाव उनका तीक्ष्ण होता है। वे आपस में भेद करा देती हैं। हे वैदेहि! तुम्हारे ये वचन मेरे कानों में तपाये हुए स्वर्ण के तुल्य लगे हैं, इनको मैं न सहूँगा। मेरे साक्षी ये वन-चर लोग तुम्हारे इस कठोर वचन को सुनें। न्याय-वचन कहने पर भी तुमने जली-कटी बातें कह कर मेरा कैसा तिरस्कार किया है। हे सीते! तुझे धिक्कार है! अब तू विनष्ट होने वाली है तभी तो मेरे ऊपर ऐसी शंका करती है। तू स्त्री का दुष्ट स्वभाव दिखाती है। मैं तो गुरु-रूप रामचन्द्र के वचन पर स्थित था, परन्तु अब मैं उनके पास जाता हूँ। हे वरानने! तेरा मङ्गल हो; हे विशालनयने! ये सम्पूर्ण वन-देवता तेरी रक्षा करें। इस समय ये घोर निमित्त उत्पन्न हो रहे हैं। इनसे मुझे ऐसी आशंका हो रही है कि रामचन्द्र के साथ आश्रम में लौटकर फिर तुमको कुशल से देखूँ तब जानूँ।

यह सुन कर रोती हुई जानकी फिर कठोर वचन बोली—हे लक्ष्मण! राम के बिना मैं गोदावरी में डूब मरूँगी, गले में फाँसी लगा लूँगी या ऊँचे पर्वत के शिखर से गिर कर प्राण दे दूँगी अथवा तीक्ष्ण विष पी लूँगी। मैं खुशी से अग्नि में प्रवेश करूँगी परन्तु राघव से भिन्न पुरुष को स्पर्श न करूँगी।

लक्ष्मण से यह कहकर सीता शोक-पीड़ित हो दोनों हाथों से पेट पीट-पीट कर रोने लगी।

'अध्यात्म रामायण' में साररूप से संक्षिप्त रूप में ये ही कटु वचन सीता लक्ष्मण से कहती है और लक्ष्मण भी उत्तर में इसी तरह सीता को धिक्कारते हैं।

'वाल्मीकीय रामायण' तथा उसीके अनुकरणगत 'अध्यात्म रामायण' का वर्णन हमें नग्न-रूप में मनुष्य की परिस्थितिजन्य कमजोरियों को सामने रखता है, उन्हें मर्यादा के आवरण में छिपाने का प्रयत्न नहीं करता। उसके अलावा यह भी प्रकट करता है कि राजघराने की स्त्रियों में जैसी साधारण चेतना होती है वही सीता में थी। राम के निर्वासित होने का कारण वह भरत को समझती है और हर समय इस की जलन उसके अन्तर में सुपुप्त अवस्था में रहती है, कभी उबाल खाकर सहसा निकल पड़ती है जैसा वह उक्त प्रसंग में कहती है कि हे लक्ष्मण! मालूम होता है भरत ने तुझे षड्यन्त्र रचकर मुझे हथिया लेने के लिए भेजा है।

यही सीता परवर्ती रानियों में साक्षात् योगमाया का अवतार बनकर भक्तों की आराध्य देवी के रूप में रामायण में उपस्थित हुई।

अन्य राम-कथाओं में इस प्रसंग का इतने विस्तार के साथ वर्णन नहीं है। 'अद्भुत रामायण' में तो सीताहरण के प्रसंग में यह सीता-लक्ष्मण संवाद है ही नहीं। महाभारत के 'रामोपाख्यान' में यह संवाद है जो साररूप में वही है।

जब लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले तो वे वन और दिशाओं के देवताओं को उसे सौंपकर चले गये। सभी राम-कथाओं में इसी तरह का वर्णन है लेकिन 'रामचरितमानस' में लंकाकाण्ड की एक चौपाई से यह विदित होता है कि लक्ष्मण चलते समय एक रेखा कुटिया के चारों ओर खींच गये थे जिसके अन्दर अगर कोई प्रवेश करता तो जलकर भस्म हो जाता।

मन्दोदरी रावण को समझा रही है :

कंत समुझि मन तजहु कुमति ही। सोह न समर तुम्हहि रघुपति ही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥

'अध्यात्म रामायण' में रेखा का वर्णन तो नहीं है लेकिन सीता का ऐसा प्रभाव अवश्य दिखाया गया है कि यदि पृथ्वी पर से कोई उसे छूकर उठायेगा तो वह जलकर भस्म हो जायगा। इसीलिए जब रावण उसे हरकर ले गया था तो पहले उसने अपने अंगूठे से मिट्टी कुरेदकर सीता को अधर कर दिया था और फिर गोद में उठाकर ले गया। 'वाल्मीकीय रामायण' में इस तरह की रेखा का कोई संकेत नहीं है।

अन्य राम-कथाओं में भी रेखा का वर्णन नहीं है।

आश्रम को सूना देखकर रावण संन्यासी के वेष में सीता के पास आया और अनेक प्रकार की सुन्दर बातें कहकर फिर राजनीति, भय और प्रेम दिखाने लगा। सीता के रोकने पर उसने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और सीता को उठाकर आकाश-मार्ग से ले गया।

रास्ते में रावण को गृध्रराज जटायु मिला जो अपने को राम के पिता दशरथ का मित्र कहता था। उसने रावण को रोका और जानकी को जो दशरथ की पुत्रवधू होने के नाते उसकी भी पुत्रवधू थी, छोड़ देने के लिए कहा। जब रावण ने सीता को नहीं छोड़ा तो जटायु ने उसके साथ युद्ध किया और अपने पंजों तथा चोंच के प्रहारों से रावण को बेहोश कर दिया, उसके रथ को तोड़ डाला और उसके बाल पकड़कर उसे रथ से नीचे खींच लिया। थोड़ी देर बाद जब रावण को होश आया तो उसने अपनी तलवार से जटायु के पंख काट डाले। जटायु घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और रावण सीता को लेकर आगे बढ़ गया।

उपर्युक्त वर्णन के अन्तर्गत जटायु को एक पक्षी (गृध्र) के रूप में ही प्रत्येक राम-कथा में लिया गया है लेकिन इस तरह का विश्वास चमत्कारवाद की चरमसीमा पर ही अपना आश्रय ढूंढता है। औचित्य की सीमाओं में मनुष्य की तर्कमयी बुद्धि इससे समझौता नहीं कर सकती। गृध्र पक्षियों का राजा जटायु जो स्वयं पक्षी था, वह राजा दशरथ का मित्र था, उसने रावण-जैसे पराक्रमी राक्षस को युद्ध में विचलित कर दिया, इतना ही नहीं उसके केश पकड़कर उसे वह पृथ्वी पर घसीट लाया, उसके रथ को उसने ध्वंस कर दिया। एक पक्षी के बारे में इस तरह सामर्थ्य की कल्पना उपहासास्पद है और आज तक यह वर्णन तर्क की कसौटी पर नहीं परखा जा सका। यह जनता में जमी हुई घोर अन्धविश्वास की जड़ों को व्यक्त करता है। इसके अलावा उस पक्षी में केवल रूप को छोड़ कर जितनी भी चेतना है वह मानवीय है, दशरथ की पुत्रवधू को वह मानवीय सम्बन्धों के अन्तर्गत अपनी पुत्रवधू मानता है ये सब बातें स्पष्ट करती हैं कि गृध्रराज जटायु कोई पक्षी नहीं था। वह किसी गृध्र टॉटम मानने वाली जाति का राजा था जो इक्ष्वाकुवंशीय राजा दशरथ का मित्र था। वह अवश्य कोई पराक्रमी राजा होगा तभी रावण को रणभूमि में एक बार गिरा पाया। कथा का ऐतिहासिक दृष्टि से अनुशीलन करते समय हम विभिन्न जातियों जैसे नाग, सुपर्ण, वानर, रिक्ष, गरुड़, गृध्र आदि के सम्बन्ध में 'टॉटम' विचारधारा को दृष्टिगत रख कर अध्ययन करेंगे। उससे इन जातियों की सारी स्थिति स्पष्ट हो जायेगी और भारतीय साहित्य में आई इस तरह की चमत्कारमयी और अन्धविश्वास से जकड़ी उक्तियाँ ठोस ऐतिहासिक आधार-भूमि पर अपना अवैज्ञानिक रूप खोकर कथा को अधिक स्पष्ट कर पायेंगी।

'वाल्मीकीय रामायण' में भी जटायु का एक पक्षी के रूप में ही वर्णन है लेकिन उस वर्णन में कहीं-कहीं अन्तर्विरोध है जैसे जब सीता को रावण ले जा रहा था तो सीता ने गृध्रराज जटायु को 'आर्य जटायु' कह कर पुकारा था। सोचने की बात है कि सीता क्या एक पक्षी को आर्य कह कर पुकारती। दूसरे, युद्ध का वर्णन ऐसा भीषण है जिसमें रावण के सामने एक पक्षी के इतने प्रचण्ड पराक्रम के साथ लड़ने की कल्पना नहीं की जा सकती। तार्किक बुद्धि से पूरे प्रसंग को परखा जाय तो ऐसे अनेकों प्रमाण दिये जा सकते हैं। अब तो आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य में ऐसी चीजों का औचित्यीकरण कर लेना चाहिये और तब जनता के सामने सही रूप में कथा को रखना चाहिये। इस तरह के प्रयास ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लाभदायक रहेंगे।

अब हम 'जैन पद्मपुराण' की सीताहरण की कथा को लेते हैं जो उपर्युक्त रामायणों की कथा से भिन्न है, यद्यपि उसकी पृष्ठभूमि थोड़े हद तक वही है।

सीताहरण के प्रसंग में सबसे पहले हमें देखना चाहिये कि जैन-स्रोत जटायु के बारे में क्या कहते हैं।

जब राम-लक्ष्मण सीता सहित रामगिरि पर्वत से दक्षिण दिशा में समुद्र की ओर चले तो उन्हें बहुत से नगर और ग्राम रास्ते में मिले। नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित वन पार करते हुए वे नर्मदा नदी के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक रमणीक वन देखा जिसमें पक्के फल और फूलों से लदे अनेक वृक्ष थे। वहाँ सीता ने रसोई के अनेक उपकरण, मिट्टी के तथा बाँस के नाना प्रकार के बर्तन बनाये। उनसे महा स्वादिष्ट सुन्दर सुगन्धियुक्त वन के धान का भोजन बनाया, उसी समय दो चारणमुनि सुगुप्ति और गुप्ति वहाँ आये। वे तपस्वी महाव्रत के धारक सारी वस्तुओं की अभिलाषा से रहित निर्मल थे।

सीता ने उन्हें देखकर राम से कहा—हे नरश्रेष्ठ ! देखिये, दो दिगम्बर तपस्वी आये हैं।

राम ने उन्हें देख कर सीता से कहा—हे पण्डिते ! सुन्दर मूर्ति ! तू धन्य है जो तूने निर्ग्रंथ युगल देखे जिनके दर्शन से जन्म-जन्म के पाप धुल जाते हैं।

राम ने सीता-सहित सामने जाकर उन मुनियों को नमस्कार किया और उन्हें भोजन कराया। जब राम ने अपनी स्त्री-सहित भक्ति से उन मुनियों को भोजन दिया तब पंचाश्चर्य हुए। रत्नों की तथा पुष्पों की वर्षा होने लगी, शीतल मंद सुगन्ध पवन चलने लगी और दुंदभी बजने लगी। चारों ओर से जय-जयकार का शब्द गूँज उठा। उसी समय उस वन में एक गृध्र पक्षी एक पेड़ पर बैठा था। जब उसने उन मुनियों के दर्शन किये तो उसे अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया। वह पूर्व जन्म में एक अविवेकी, घमण्डी मनुष्य था जो तप और संयम के विरुद्ध था और अज्ञानवश होकर धर्म को नहीं पहचानता था। पूर्व जन्म के उन्हीं पापों के फलस्वरूप उसे यह पक्षी-योनि प्राप्त हुई थी। पूर्व-जन्म के अधार्मिक जीवन के प्रति उसके हृदय में विषाद बढ़ता जा रहा था परन्तु साधुओं के दर्शन से तत्काल हर्षित होकर वह अपने दोनों पंख फैलाकर उनके चरणों में आ पड़ा। उस महा भारी पक्षी के गिरने से जो कठोर शब्द हुआ उससे वन के जीव, हाथी, सिंहादि भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उस पक्षी ने उन साधुओं के चरण धोकर चरणोदक पिया, उससे उसका शरीर रत्नों की राशि के समान नाना प्रकार के तेज से मण्डित हो गया, स्वर्ण की-सी प्रभा उसके दोनों पंखों में आ गई, दोनों पैर वैडूर्य मणि के समान हो गये, देह नाना प्रकार के रत्नों से जड़ी हुई मालूम होने लगी। चोंच मूँगा के समान आरक्त हो गई।

पक्षी अपने बदले हुए रूप को देख कर हर्ष से नाचने लगा। राम पक्षी को देख कर परम आश्चर्य करने लगे और मुनि से पूछने लगे :

हे भगवन् ! महा कुरूप अंग का यह दुष्ट मांसाहारी गृध्र पक्षी कैसे आपके चरणों के निकट इतना सुन्दर हो गया।

सुगुप्ति नामक मुनि ने कहा—हे राजन् ! पहले इस स्थान पर दण्डक नामक

एक देश था जहाँ अनेक ग्राम, नगर, पट्टण, संवाहण, मटंब, घोष, खेट, कर्वट और द्रोणमुख थे।

(१) बाड़ि से युक्त वह तो गाँव।

(२) कोट, खाई, और दरवाजों से युक्त वह नगर।

(३) जहाँ रत्नों की खान वह पट्टण।

(४) जो पर्वत के ऊपर वह संवाहण।

(५) जिससे ५०० ग्राम लगे हैं वह मटंब।

(६) गायों और ग्वालों के निवास-स्थान वे घोष।

(७) जिसके आगे नदी वह खेट।

(८) जिसके पीछे पर्वत वह कर्वट।

(९) जो समुद्र के समीप वह द्रोणमुख।

अनेक रचनाओं से शोभित वहाँ कर्णकुंडल नामक महा मनोहर नगर था उसमें इस पक्षी का जीव दंडक नामक राजा हुआ। वह महा पराक्रमी और प्रतापी था लेकिन अधर्म में उसकी रुचि थी। उसने घोररूप मिथ्या शास्त्र बनाया। उसकी स्त्री दंडियों की सेवक थी, वही मार्ग इस राजा ने अपनाया। एक दिन वह नगर के बाहर गया। वन में कायोत्सर्ग धारण किये मुनि उसने देखे, तब इस निर्दयी ने मुनि के कंठ में मरा हुआ सांप डाल दिया। जब मुनि का ध्यान खुला तो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक कोई इस सर्प को मेरे कंठ से दूर नहीं करेगा तब तक मैं योगरूप हो इस स्थान से नहीं हिलूँगा। किसी मनुष्य ने वह सर्प दूर नहीं किया। मुनि वहीं खड़े रहे। बहुत दिन बाद राजा एक दिन उसी मार्ग से आया, उसी समय किसी भले आदमी ने मुनि के कंठ से सांप निकाल दिया। राजा यह देख कर पूछने लगा—किसने और कब यह सांप मुनि के कंठ से निकाला। उस आदमी ने कहा—हे नरेन्द्र! किसी नरकगामी ने ध्यानारूढ़ मुनि के कंठ में मरा हुआ सांप डाल दिया था, मुनि को इससे अत्यन्त दु:ख हो रहा था, मैंने उस सांप को निकाल दिया।

राजा उस मुनि को शांतचित्त और कायोत्सर्गयुक्त देखकर अपने स्थान को चला गया। उसी दिन से वह मुनियों का भक्त हो गया। जब रानी ने दंडियों के मुँह से यह सुना कि राजा जिनधर्म का अनुयायी हो गया है तब उन दंडियों ने मुनियों के मारने का उपाय किया। उन दंडियों ने अपने गुरु से कहा—तुम निर्ग्रन्थ मुनि का रूप धर कर मेरे महल में आना और कोई विकार-चेष्टा करना। उसने इसी तरह किया। राजा ने यह वृत्तान्त जानकर मुनियों पर बहुत क्रोध किया, अन्य दुष्ट हृदय मंत्री आदि क्रोधी ने राजा को और भड़काया। इसलिए इस पापी राजा ने मुनियों को घानी में पेलने की आज्ञा दी। सब मुनि पकड़कर घानी में पेल दिये गये।

एक साधु जो बाहर गया हुआ था पीछे आ रहा था। किसी दयावान ने उससे भाग जाने को कहा। जब उस साधु ने संघ के विनाश का समाचार सुना तो वह एक साथ वज्रस्तंभ के समान निश्चल हो गया। पहले तो उसे मुनियों की मृत्यु पर अपार दुःख हुआ, फिर एक क्षण में उसके समभाव-रूपी गुफा से क्रोध-रूपी केहरी सिंह निकला। आरक्त अशोक वृक्ष के समान उसके नेत्र लाल हो गए। कोप से तप्त उस साधु के शरीर पर पसीने की बूँदें चमचमाने लगीं। वह कालाग्नि के समान प्रज्वलित अग्नि-पुतले की तरह निकला जिससे धरती और आकाश चारों ओर मानो आग-ही-आग फैल गई। सब लोग हाहाकार करते मरने लगे। बाँसों के वन भस्म होने लगे। न राजा, न अन्तःपुर, न पुर, न ग्राम, न पर्वत, न नदी, न वन, न कोई प्राणी कुछ भी देश में नहीं बचा। महावैराग्य के योग से बहुत समय में मुनि ने समभाव-रूपी जो धन उपार्जित किया था वह क्रोध-रूपी अग्नि में नष्ट हो गया। दंडक देश में प्रलयकाल आ गया और इस देश का राजा अपने पूरे देश के साथ नष्ट हो गया, इसी से अब यह दण्डक वन कहलाता है।

बहुत दिन तक तो यहाँ तृण भी पैदा नहीं हुआ, फिर एक लम्बे अरसे के बाद यहाँ मुनियों का विहार हुआ जिसके प्रभाव से वृक्षादि पैदा हुए। यह वन देवों को भी भयंकर है, सिंह, व्याघ्र, अष्टापदादि अनेक जीवों से भरा है। नाना प्रकार के पक्षी यहाँ बोलते हैं और अनेक प्रकार के धन और धान्य से यह पूर्ण है।

वही महाप्रतापी राजा दण्डक अपने पापों के कारण बहुत समय तक नरक में वास करके इस जन्म में गृध्र पक्षी हुआ है। अब हमारे दर्शन करके इसके पाप नष्ट हो गए हैं और इसे अपने पूर्व जन्म की बात याद हो आई है।

मुनियों ने उस पक्षी को सांत्वना देते हुए कहा—हे भव्य! अब तू भय मत कर, कर्म की गति अति विचित्र है, जो जैसा करता है, उसको उसका फल तो भोगना ही पड़ता है, इसलिये अपने पूर्व जन्म के पापों पर तेरा प्रायश्चित करना व्यर्थ है।

इसके पश्चात् राम को उत्सुकता जानकर और पक्षी के प्रतिबोध के लिए उन मुनियों ने अपने वैराग्य का कारण सुनाया। अन्त में उन्होंने कहा—मोह के उदय होने से प्राणियों को इस भवसागर में थपेड़े सहने पड़ते हैं। सद्गुरु के प्रभाव से अनाचार नष्ट हो जाता है। संसार असार है, माता-पिता, बांधव-मित्र, स्त्री-संतानादि तथा सुख-दुःख हो विनश्वर हैं।

यह सुनकर पक्षी भव-दुःख से भयभीत होकर धर्म ग्रहण की इच्छा करने लगा। तब गुरु ने कहा—हे भद्र! तू भय मत कर, श्रावक का व्रत ले फिर तेरे सारे दुःख नष्ट हो जायेंगे। अब तू शांत भाव धारण करके किसी प्राणी को कष्ट मत दे। अहिंसा व्रत ले, मृषा वाणी का त्याग कर, परवस्तु का ग्रहण, तृष्णा, रात्रि-भोजन, अभक्ष्य आहार, इन सबका त्याग कर दे और सत्यव्रत, ब्रह्मचर्य, संतोष और

उत्तम चेष्टाओं को धारण कर। त्रिकाल संध्या में जिनेन्द्र का ध्यान धर। हे सुबुद्धि ! उपवासादि तप कर, नाना प्रकार के नियम अंगीकार कर, प्रमादरहित होकर अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, साधुओं की भक्ति कर, देव अरहंत गुरु निर्ग्रन्थ की भक्ति कर और दयामयी धर्म कर।

इस तरह मुनि के उपदेश सुन गृध्र पक्षी उन्हें बार-बार नमस्कार करने लगा और उसने श्रावक का व्रत धारण कर लिया। सीता ने यह जानकर कि यह श्रावक हो गया है उसे बहुत प्यार किया। गुरु के कहने से सीता उसकी रक्षा करने लगी। राम-लक्ष्मण पक्षी को जिनधर्मी जान अत्यंत अनुराग से उसे पालने लगे। उन्होंने दोनों मुनियों की स्तुति की। वे दोनों चारण मुनि आकाश-मार्ग से चले गये। वह ज्ञानी पक्षी मुनि की आज्ञा से यथाविधि अणुव्रत पालने लगा। राम के अनुग्रह से वह दृढ़व्रती और महा श्रद्धावान हो गया। वह पक्षी जिसके शरीर से रत्नों की किरणों की जटा पैदा हो रही थी उसका नाम श्रीराम ने जटायु रखा। यह व्रती तीनों सध्या में सीता के साथ भक्ति से नम्रीभूत हुआ अरहन्त सिद्ध साधु की वन्दना करने लगा।

उपर्युक्त वृत्तान्त गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक से कहा था।

(जैन पद्मपुराण, ४१ वां पर्व)

इससे हमें जटायु पक्षी के साथ-साथ दण्डक-वन की कथा भी प्राप्त होती है। दण्डक-वन के विषय में 'वाल्मीकीय रामायण' में भी कथा है, उसे भी हम तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत करते हैं।

रामचन्द्र अगस्त्य मुनि से दण्डकारण्य के निर्जन होने का कारण पूछने लगे। अगस्त्य ने कहा—हे रामचन्द्र ! पहले सत्ययुग में राजा मनु इस पृथ्वी पर शासन करते थे। उनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। मनु ने अपने पुत्र से कहा—हे पुत्र ! तुम राजा होकर इस पृथ्वी पर राजवंशों की प्रतिष्ठा करो। मैं यह भी समझता हूँ कि तुम दण्ड द्वारा प्रजा की रक्षा करोगे। परन्तु किसी को अकारण दण्ड न देना। पिता के चले जाने पर इक्ष्वाकु ने पुत्र की इच्छा से अनेक तरह के यज्ञ, दान और तप किये जिससे उसके १०० पुत्र पैदा हुए। वे सब देवों के पुत्रों के समान थे लेकिन सबसे छोटा बड़ा मूर्ख और विद्यारहित था। पिता ने उसका नाम 'दण्ड' रखा। राजा ने विन्ध्य और शैवल के बीच वाले भयानक देश का उसे राजा बना दिया। वहाँ उसने एक बढ़िया नगर बसाया और उसका नाम मधुमन्त रखा। उसने भार्गव मुनि को अपना पुरोहित बनाया। बहुत वर्षों तक वह राजा दण्ड जितेन्द्रियता के साथ राज्य करता रहा। एक दिन वह भार्गव ऋषि के आश्रम पर गया। वहाँ उनकी सुन्दरी कन्या को देखकर उस पर आसक्त हो गया। कन्या उसकी कामपीड़ा देखकर कहने

सखी—हे राजा ! तू मुझसे बलात्कार न करना, नहीं तो मेरे पिता तुझे अपने क्रोध से भस्म कर देंगे। तू मेरे पिता से विनय करके धर्म-मार्ग से मुझे माँग ले।

राजा काम से अन्धा हो रहा था, उसे धर्म-अधर्म कुछ सूझ नहीं पड़ता था। उसने कन्या के बार-बार मना करने पर भी उसके साथ बलात्कार किया और फिर मधुमन्त नगर को चला गया।

जब भार्गव ऋषि ने धूल से भरी हुई प्रातःकालीन फीकी चन्द्रिका के समान अपनी कन्या को देखा और सारा हाल सुना तो उनका क्रोध प्रचण्ड अग्नि की तरह भभक उठा। वे ऐसे क्रुद्ध थे मानों तीनों लोकों को भस्म कर देंगे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा—इस दुरात्मा राजा दण्ड ने जलती हुई आग की लौ को अपने हाथ से पकड़ा है इसलिए इस पापी का अन्त समय अब समीप आ पहुँचा है। सात रात में यह पापी राजा पुत्र, सेना और वाहनों सहित नष्ट हो जायगा। इन्द्र इसके राज्य के सौ योजन तक धूलि की वर्षा कर इसके राज्य को ध्वस्त कर देगा। इसके राज्य में जितने स्थावर और जंगम जीव हैं सब उस धूलि की वर्षा से मर जायेंगे। 'दण्ड' का जितना देश है वह सब सात दिन में चौपट हो जायगा।

क्रोध से लाल आँखें करके ऋषि ने आश्रमवासियों से तत्काल आश्रम छोड़ देने को कहा और अपनी पुत्री अरजा से कहा—हे मूर्खा ! तू इसी आश्रम में रह और यह जो योजन-भर का सुन्दर तालाब है उसका तू निश्चित होकर भोग कर।

इसके पश्चात् सात दिन-रात तक उस दण्ड के देश पर धूलि की वर्षा हुई। सब-कुछ नष्ट हो गया और उसी समय से विन्ध्य और शैवल के बीच की पृथ्वी दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध हुई।

(वा० रा०, उत्तरकाण्ड ४२,४३,४४वें सर्ग)

दण्डक-वन के सम्बन्ध में दोनों कथाओं के मूल में तो अन्तर नहीं है। जैन-कथा में दण्डक नामक राजा ने पाप किया था, जैन-मुनियों का वध किया था तब एक जैन मुनि ने शाप से उस राजा के देश को और उसको नष्ट कर दिया। तब वह निर्जन देश दण्डक-वन कहलाया। 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा में दण्ड नामक राजा को उसके पाप के कारण ऋषि भार्गव ने शाप दिया था, उससे उसका देश नष्ट होकर दण्डकारण्य कहलाया। जैन सम्प्रदाय ने अपने दृष्टिकोण से कथा को गढ़ा है, ब्राह्मणों ने अपने दृष्टिकोण से कथा की सृष्टि की है। 'वाल्मीकीय रामायण' 'जैन पद्म पुराण' से पुराना ग्रंथ है, इसके अलावा यह कथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आई ब्राह्मणों के ग्रंथों में स्थान पहले पा गई है। इससे यह विदित होता है कि जैनों ने उसी कथा को अपने सम्प्रदाय का आवरण पहना कर प्रस्तुत किया है।

जटायु की वंशावलि भी 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित है जिसे जटायु अपने मुँह से सुनाता है। जैन स्रोत में जटायु के पूर्व-जन्म पर प्रकाश डाला गया है।

अब हम जैन स्रोतों से सीताहरण की कथा को रखते हैं :

दण्डक-वन में विचरते हुए राम, लक्ष्मण और सीता जटायु के साथ वन के मध्य भाग में पहुँचे। वहाँ विचित्र शिखरों के पर्वत थे और नाना प्रकार के फल और फूलों से आच्छादित वृक्ष थे। वह सुन्दर वन नन्दन-वन के सदृश मालूम पड़ता था। शीतल-मंद-सुगंध हवा वहाँ चल रही थी और अनेक प्रकार के पक्षी, हंस और सारस मधुर ध्वनि से बोल रहे थे। सरोवरों में श्याम, श्वेत और अरुण कमल के फूल खिल रहे थे। राम सीता को उस वन का सौन्दर्य दिखा रहे थे। वर्षा ऋतु का समय था।

जिस वन के सौन्दर्य का वर्णन राम ऋष्यमूक पर्वत पर सीता जी से अन्य रामायणों में करते हैं वही वर्णन दण्डक-वन में यहाँ राम सीता से करते हैं।

शरद् ऋतु आई। लक्ष्मण बड़े भाई की आज्ञा से एक दिन वन देखने को गये। आगे बढ़ते ही उन्हें सुगन्धित पवन स्पर्श कर गई। लक्ष्मण बड़े कौतूहल से सोचने लगे कि यह पवन कहाँ से आई है? वे आगे बढ़े।

क्रोंचवा नदी के उत्तर तीर बाँस के बीड़ों में रावण की बहन चन्द्रनखा का एक पुत्र शंबूक सूर्यहास खड्ग को साधने के लिए तप कर रहा था। वह ब्रह्मचारी एक ही अन्न का आहार करता। चन्द्रनखा अपने पुत्र की तपस्या से फूली नहीं समाती थी। उस खड्ग की सिद्धि के बाद जो कोई शंबूक के सामने आयेगा वह उसे मार सकेगा। वह देवपुनीत खड्ग महासुगन्ध, दिव्य गन्धादि से लिप्त कल्पवृक्षों के पुष्पों की मालाओं से युक्त था। वही सुगन्ध लक्ष्मण को खींचे ले आ रही थी। वे वहाँ आये और वृक्षों से आच्छादित उस विषम स्थल में बेंतों के समूह से घिरी हुई ऊँची पाषाण-भूमि पर श्री विचित्ररथ मुनि का निर्वाण-क्षेत्र देखा। वहाँ एक बाँसों का बीड़ा था उसके ऊपर खड्ग था जिसकी किरणों से वह बीड़ा प्रकाशित हो रहा था। लक्ष्मण ने आश्चर्यचकित होते हुए निश्शंक होकर वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णता जानने के लिए बाँस के बीड़े पर प्रहार किया जिससे बाँस के साथ शंबूक का सिर धड़ से अलग होकर गिर पड़ा।

खड्ग के रक्षक सहस्रों देव लक्ष्मण के हाथ में खड्ग आया जान उनसे कहने लगे—तुम हमारे स्वामी हो।

जब लक्ष्मण को बहुत देर हो गई तो राम चिन्ता करने लगे और उन्होंने जटायु को उन्हें देखने भेजा। लक्ष्मण अपने हाथ में एक अद्भुत प्रकाशयुक्त खड्ग लिये आये। राम को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने लक्ष्मण को हृदय से लगाकर सारा वृत्तान्त पूछा। लक्ष्मण ने सारी बात कह दी।

उधर चन्द्रनखा अपने पुत्र का कटा मस्तक देखकर शोक से हाहाकार कर उठी। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी और वह उस वन में दुःखी हो

भाँति पुकारने लगी—हा पुत्र ! बारह वर्ष और चार दिन यहाँ व्यतीत हुए इसी तरह तीन दिन और क्यों नहीं निकल गये। हा ! मेरे पुत्र को किसने निरपराध मारा। जिस दुष्ट ने तेरी हत्या की है वह अब जीता नहीं बच सकेगा।

इस तरह बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती हुई चन्द्रनखा पुत्र का मस्तक गोद में रख चूमने लगी। आरक्त नेत्रों से ज्वाला बिखेरती हुई अत्यन्त क्रोधयुक्त हो वह शत्रु को मारने के लिये दौड़ी और उस स्थान पर आई जहाँ राम और लक्ष्मण सीता और जटायु के साथ बैठे थे। दोनों राजकुमारों के अनुपम सौन्दर्य को देखकर वह अपना क्रोध तो भूल गई और कामासक्त हो उन्हें मोहने की इच्छा करने लगी। वह एक वृक्ष के नीचे बैठकर अत्यन्त दुःखी हो रोने लगी; उसका शरीर धूलि-धूसरित हो रहा था। सीता दया करके उसके समीप आईं और उसके दुःख का कारण पूछने लगीं। उसे धैर्य बँधाकर वह राम के पास लाईं। राम ने उसका परिचय पूछा।

चन्द्रनखा बोली—हे पुरुषोत्तम ! मेरी माता मेरे बचपन में ही स्वर्ग को सिधार गईं, उसी के शोक में पिता भी इस दुनिया से चल बसे। अपने पूर्व पापों के फल से मैं इस दण्डक-वन में आई हूँ। आपके दर्शनों से मेरे सारे पाप नष्ट हो गये हैं। अब मेरे प्राण छूटने से पहले आप मेरा वरण कीजिये। मैं कुलवंती और शीलवन्ती हूँ। राम-लक्ष्मण ने उसे स्वीकार नहीं किया, तब वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र अपने पति के पास गई।

अपने मन की इच्छा को इस तरह नष्ट होती देख चन्द्रनखा क्रुद्ध, अतिव्याकुल होकर विलाप करने लगी। उसका धैर्य नष्ट हो गया। उसे अपने शरीर की सुध-बुध भी नहीं रही। उसकी सारी लावण्यता नष्ट हो गई।

पति धैर्य बँधा कर चन्द्रनखा से पूछने लगा—हे कान्ते ! किस दुष्ट ने तेरी यह अवस्था की है। वह मूढ़ अवश्य आज मेरी क्रोध-रूपी अग्नि में पतंगे के समान जलकर क्षार-क्षार हो जायेगा। तू शोक मत कर।

चन्द्रनखा ने कहा—हे नाथ ! शंबूक दण्डक-वन में सूर्यहास खड्ग को सिद्ध करने के लिए तपस्या कर रहा था। वहाँ बाँस के बीड़ में एक पापी ने मेरे पुत्र का सिर काट दिया और स्वयं खड्ग को ले गया। जब मैंने पुत्र का मस्तक रुधिर से लथपथ हुआ पृथ्वी पर पड़ा देखा तो मैं उसे गोद में रखकर विलाप करने लगी। उसी समय वह पापी आया और उसने मेरे साथ बलात्कार करने की इच्छा प्रकट की। उसने मेरी बाँह पकड़ ली। मैं अबला स्त्री, न जाने कैसे अपने धर्म की रक्षा करके यहाँ आई हूँ। मुझे आश्चर्य है कि रावण-जैसे भाई के रहते और खरदूषण-जैसे पति के रहते वह पापी इतना साहस कैसे कर पाया।

चन्द्रनखा के इन शब्दों को सुनकर खरदूषण क्रोध से आग-बबूला होकर अपने पुत्र के मृतक शरीर को देखने गया और वापस आकर अपने कुटुम्ब वालों से तथा

मन्त्रियों से मन्त्रणा करने लगा। कुछ मन्त्री कहने लगे—हे देव ! जिसने सूर्यहास खड्ग प्राप्त कर लिया है, उसे ढीला छोड़ना उचित नहीं है, नहीं तो न जाने वह क्या अनर्थ करेगा।

कुछ मंत्री लंका के राजा रावण को बुलाने की बात करने लगे। एक शीघ्र-गामी तरुण-दूत रावण के पास भेजा गया। इसी बीच खरदूषण ने अपने पौरुष का भरोसा करते हुए १४००० वीरों की सेना से दण्डक-वन पर आक्रमण किया। जब इस सेना का दुर्धर शब्द सीता के कानों मे पड़ा तो वह भयभीत होकर राम से पूछने लगी। पहले तो राम ने कुछ अन्यथा बात समझी लेकिन जब सेना पास आ गई तो वे दोनों भाई शीघ्र आई किसी विपत्ति का सामना करने के लिये अपने धनुष-बाण संभालने लगे। उन्होंने अपने कवचादि पहन लिये। जब राम युद्ध के लिये चलने को उद्यत हुए तो लक्ष्मण ने कहा—हे देव ! मेरे होते आपको कहाँ तक उचित है कि आप स्वयं लड़ने जायें। आप तो सीता की रक्षा कीजिये और मैं स्वयं शत्रु का सामना करने जाता हूँ।

लक्ष्मण अकेला उन १४००० विद्याधरों की सेना से जा भिड़ा। शक्ति, मुद्-गर, सामान्य चक्र, बरछी और बाण इत्यादि की उस पर वर्षा होने लगी। वह भी सबको काटता हुआ शत्रु को अपने तीखे बाणों से विचलित करने लगा। उसने अकेले उस विशाल सेना के वेग को रोक लिया।

उसी समय आकाश-मार्ग से चन्द्रनखा का भाई रावण शत्रु पर कोप करता हुआ आया; लेकिन जब उसने सीता को देखा तो उसका सारा क्रोध जाता रहा और वह उस सुन्दरी पर आसक्त हो उसे प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। वह इसका उपाय सोचने लगा। उसने विचार किया कि सीता को छिपाकर हर ले जाऊँगा। उसने अपनी अवलोकन विद्या से सीता, राम व लक्ष्मण का सारा वृत्तान्त जान लिया और यह भी जान लिया कि चलते समय लक्ष्मण राम से कह गया था कि जब भी मैं आपत्ति में हूँगा तो सिंहनाद करूँगा तब तुम मेरी सहायतार्थ आना।

खरदूषण और लक्ष्मण के बीच घोरयुद्ध हो रहा था उसी समय रावण ने सिंहनाद किया और उनमे बार-बार 'राम, राम' पुकारा। यह आवाज सुनकर राम समझने लगे कि लक्ष्मण इस समय आपत्ति मे है। वे सीता से बोले—हे प्रिये ! तुम भयभीत न होना। मैं युद्ध में जा रहा हूँ, लक्ष्मण के ऊपर आपत्ति है।

चलते समय राम ने जटायु से सीता की रक्षा करने के लिए कहा। उसी समय अपशकुन होने लगे। जैसे राम युद्धभूमि की ओर बढ़े रावण चुपके-से आया और जैसे मतवाला हाथी कमलिनी को उठा लेता है उसी प्रकार कामासक्त हो धर्म-अधर्म का विचार न करते हुए वह पुष्पक विमान में सीता को उठाकर रखने लगा। उसी समय जटायु पक्षी स्वामी की स्त्री को इस दशा में देखकर अति वेग से रावण पर

झपटा और अपनी चोंच से उसके उरस्थल को रक्तरंजित कर दिया, अपने पंखों से रावण के वस्त्र फाड़ डाले।

लंका के उस पराक्रमी राजा ने जब यह देखा कि यह पक्षी सीता के लिए अधिक झगड़ा करेगा उसे अपने हाथ के झपाटे से पृथ्वी पर पटक दिया। जटायु मूर्च्छित हो गया। अब रावण पति के वियोग से विलाप करती सीता को लेकर लंका की तरफ चला। वह जानता था कि यह सर्वथा अधर्म है और इसीलिये उस परायी स्त्री को बलपूर्वक नहीं वरण करना चाहता था वरन् उसको प्रसन्न करना चाहता था।

उधर राम को आया देख लक्ष्मण कहने लगा—हे भाई! आप सीता को अकेली छोड़ यहाँ क्यों आये हैं।

राम ने 'सिंहनाद' के बारे में कहा तो लक्ष्मण कहने लगा—मैंने सिंहनाद नहीं किया था। तुम्हें सीता को अकेला छोड़कर नहीं आना चाहिये था।

राम को चिन्ता हो गई। वे वापस लौटे तो सीता को वहाँ न पाकर अत्यंत दुःखी हो विलाप करने लगे। लक्ष्मण उधर खरदूषण से युद्ध करता रहा।

उपर्युक्त कथा अन्य रामायणों की कथा से नहीं मिलती। इसमें मारीच का मृग बनकर आने का वर्णन नहीं है और अन्य कथाओं में तो लक्ष्मण सीता को अकेला छोड़कर राम की सहायतार्थ आये थे पर यहाँ राम स्वयं लक्ष्मण की सहायतार्थ आये थे। इसके अलावा खरदूषण से युद्ध भी अभी समाप्त नहीं हुआ है जबकि अन्य कथाओं में खरदूषण और त्रिशिरा की मृत्यु के पश्चात् रावण क्रोध से प्रतिहिंसा की भावना से सीता को हर ले गया। अन्य कथाओं में खर-दूषण रावण के भाई हैं लेकिन जैन-कथा में वह रावण का केवल एक बहनोई है। चन्द्रनखा का नाम भी शूर्पणखा है, उसके शंबूक और सुन्दर दो पुत्रों का उल्लेख अन्य राम-कथाओं में नहीं मिलता, वहाँ तो इतना मिलता है कि रावण ने स्वयं उसके पति, याने अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को मार डाला था तभी से शूर्पणखा विधवा हो गई थी।

अन्य राम-कथाओं में शंबूक एक शूद्र है जो राम के राज्याभिषेक के पश्चात् मर्यादा तोड़कर उलटा लटक कर वन में तपस्या कर रहा था। शूद्र को उस समय तप करने का अधिकार नहीं था और वह पाप समझा जाता था। उस पाप से ही राम के राज्य में एक किशोर ब्राह्मण बालक की मृत्यु हो गई थी, ब्राह्मण रोते-चिल्लाते राम के पास आये और धर्म की रक्षा करने के लिए प्रार्थना करने लगे। राम स्वयं शंबूक का वध करने के लिए वन में गये और उसको इस तरह तत्कालीन सामाजिक नियम के विरुद्ध तप करता देख उन्होंने उसका सिर काट डाला।

शंबूक के बारे में यह कथा कुछ अंश तक तो जैन स्रोत से मिलती है क्योंकि जैन-कथा में भी शंबूक इस प्रकार सूर्यहास-खड्ग प्राप्त करने के लिए तप करता है लेकिन अन्य सब बातें अलग हैं। जैन-कथा में शंबूक चन्द्रनखा का पुत्र है और

अन्य राम-कथाओं में एक शूद्र। अगर ब्राह्मण की राम-कथाओं पर गम्भीर दृष्टिपात किया जाय तो हमें ऐसा लगता है कि शंबूक अवश्य कोई एक शूद्र नहीं था जो व्यक्तिगत रूप से तप कर रहा था बल्कि वह शूद्रों में उठे ब्राह्मणों के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का कोई प्रतिनिधि रहा होगा और समाज में उसका कोई जबरदस्त स्थान रहा होगा। तभी ब्राह्मण स्वयं समाज की उच्छृंखलता से भयभीत होकर राजा राम के पास आये वरना वह ब्राह्मण जो इन्द्र-जैसे पराक्रमी सम्राट् को भी अपने शापों से नष्ट करने की शक्ति रखता था वह एक शूद्र की तपस्या से इतना भयभीत हो गया कि राम के पास सारे ब्राह्मण पुकारते आये और फिर स्वयं सम्राट् राम को उसका वध करने जाना पड़ा जबकि अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा तक के लिए शत्रुघ्न चला गया।

ये सारी बातें यह बताती हैं कि शंबूक निम्न शूद्र एवम् अनार्य वर्गों में उठे विद्रोह का प्रतीक था जिसे दबाकर और ब्राह्मण-व्यवस्था अर्थात् तत्कालीन धर्म की रक्षा करते हुए राम ने उसे मारा। कहाँ तक यह विचार सत्य है इसे तो इतिहास का गम्भीर अध्ययन ही स्पष्ट कर सकेगा लेकिन इतना अवश्य है कि शंबूक-वध की कथा किसी एक व्यक्ति के वध की कथा नहीं है बल्कि वह भारतीय इतिहास के मोड़ की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

सीता-हरण विषयक प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन हमने उपस्थित किया। जैन-कथा में यह विशेषता है कि किसी तरह के अलौकिक रूप में राम को बाँध कर कथा की सृष्टि नहीं की गई है।

× × ×

सीताहरण के बाद

रावण सीता को आकाश-मार्ग से लंका में ले गया। पहले उसने सीता को अपने रनवास में रखा और उसे अपना सारा वैभव दिखाकर लुभाने की चेष्टा की। उसने साम, दाम, दण्ड हर तरह से सीता को वश में करने का प्रयत्न किया लेकिन सीता अन्त तक उसे धिक्कारती रही। अन्त में वर्ष-भर का समय देकर रावण ने उसे राक्षसियों के साथ अशोक वाटिका भेज दिया और राक्षसियों से उसे वश में करने की आज्ञा दी। यह 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार है, अन्य राम-कथाओं के अनुसार रावण सीधा सीता को अशोक वाटिका में ले गया था और उस समय उसकी अधिक बातें भी उससे नहीं हुई थीं।

उधर जब राम मृग का वध करके वापस कुटिया पर लौटे तो सीता को वहाँ न पाकर अनेक तरह से विलाप करने लगे। वे सीता के लिए इस प्रकार व्याकुल हो गये जैसे मृत्यु को सामने देखकर अन्तिम श्वासें लेता व्यक्ति जीवन के लिए व्याकुल

हो जाता है। वे असहाय होकर वन-वन में रोते फिरे, उन्होंने प्रत्येक लता, वृक्ष, पशु और पक्षी से सीता का पता पूछा लेकिन किसी ने नहीं बताया। राम का यह हृदय-विदारक रुदन 'वाल्मीकीय रामायण' में वेदना की जिस चरम सीमा को प्रकट करता है वैसा अन्य राम-कथाओं में नहीं, दूसरी राम-कथाओं में तो इस महान् काव्य के इस प्रसंग का अनुकरण मात्र ही सामने आता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में रामचन्द्र विलाप के पश्चात् क्रोध करते हैं।

जैन-राम-कथा में श्रीराम का विलाप मानव-वेदना के भावों को झनझनाता है लेकिन वह 'वाल्मीकीय रामायण' की तुलना में अधिक भावमयी नहीं ठहरता।

सीता की खोज में भटकते हुए राम को मूर्च्छित जटायु मिला जो खून से लथपथ हुआ पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। जैसे ही राम ने उस पक्षिराज जटायु को देखा तो वे कहने लगे—अवश्य इस दुष्ट ने ही सीता को खाया है। यह गृध्ररूपधारी कोई राक्षस है और इसी वन में घूमता फिरता है। यही सीता को भक्षण करके चुपचाप बैठा है। अब मैं इसका अपने तीक्ष्ण बाणों से वध करता हूँ।

यह कहकर धनुष पर बाण चढ़ाकर रामचन्द्र क्रोध से समुद्रान्त को कंपाते हुए उसके पास आये। उनको आते देख वह घायल पक्षी मुँह से फेनयुक्त रक्त निकालता हुआ दीन वचन बोला—हे आयुष्मान्! आप जिस सीता को ढूँढते फिर रहे हो उसे और मेरे प्राणों को राक्षस रावण हर ले गया। मैंने उसके साथ घोर युद्ध किया लेकिन वह पापी मेरे पंखों को काट गया है, अब मरे हुए को आप क्यों मारते हैं।

राम उसके यह वचन सुनकर एक साथ रो उठे और उसको अपनी गोद में उठाकर सीता का समाचार पूछने लगे। जटायु ने सारा समाचार कह सुनाया। कहते-कहते उसका श्वास रुक गया और उसके प्राण पक्षी की भाँति आकाश में उड़ गये। राम ने अनेक तरह अपने भाग्य को कोसते हुए और करुण स्वर से विलाप करते हुए उस पक्षी का अन्तिम संस्कार किया। जंगल से लकड़ियाँ इकट्ठी करवा कर उसका दाह-संस्कार किया, फिर उन्होंने उसको पिण्डदान दिया। यह सब करने के बाद राम और लक्ष्मण फिर वन-वन, पहाड़-पहाड़ सीता की खोज में भटकते फिरे।

जटायु के अन्तिम समय राम से मिलने की कथा अन्य रामायणों में अलौकिक आवरण पहन कर उपस्थित हुई है। 'मानस' में राम जटायु की विशाल काया को देखकर उसे राक्षस नहीं समझे थे बल्कि वह गृध्रराज तो निरन्तर राम-नाम का ही अपने हृदय में स्मरण कर रहा था। उसने तो राम के दर्शनार्थ ही अपने प्राण रोक रखे थे। राम के हाथ फेरने से ही उसके शरीर की सारी पीड़ा जाती रही। जब जटायु ने राम से कहा कि उसके प्राण अब निकलने वाले हैं तो राम ने पक्षीराज से अपने शरीर को बनाये रखने की प्रार्थना की लेकिन जटायु ने कहा :

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खांगें॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई॥
× × ×
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरन कामा॥

इस प्रकार भगवान् राम ने परहित के पुरस्कार-स्वरूप जटायु को अपना धाम अर्थात् स्वर्ग बताया। जब जटायु ने अपना देह त्यागा तो उसने हरि का रूप धारण किया। बहुत से अनुपम आभूषण और पीताम्बर पहने विशाल चार भुजाओं से युक्त होकर वह नेत्रों मे आँसू भरे भगवान् राम की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगा और अन्त मे अखण्ड भक्ति का वर माँग कर श्री हरि के परम धाम चला गया। राम ने उस पक्षीराज की अन्तिम-दाह क्रिया की।

तुलसीदास जी उस पक्षी की गति के बारे मे कहते हैं :

गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी॥

'अध्यात्म रामायण' में भी गोस्वामीजी की तरह कथा का अलौकीकरण कर लिया गया है। 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में जटायु की कथा अपने अलौकिक रूप में नहीं है और उसकी समस्त पृष्ठभूमि 'वाल्मीकीय रामायण' के प्रसंग की है।

जैन स्रोत के अनुसार जब राम कुटिया मे वापस आये तो सीता को वहाँ नही पाया परन्तु घायल जटायु पक्षी वहाँ अपनी अन्तिम श्वासें लेता पड़ा हुआ था। पक्षी को देख अत्यन्त दुखित होकर राम उसके पास बैठ गये और उसको नमोकार मन्त्र दिया। उन्होंने दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप ये चार आराधनायें सुनाईं और अरहंत सिद्ध साधु केवली प्रणति धर्म की उसको शरण दिलाई। श्रावक व्रत धारण करने वाला पक्षी श्रीराम के अनुग्रह से समाधि-मरण से स्वर्ग में जाकर देव बन गया।

जैन स्रोत के अनुसार लक्ष्मण का खरदूषण से युद्ध सीताहरण के बाद होता रहा। राम लौट गये थे। इसी बीच खरदूषण का शत्रु विराधत नामक विद्याधर लक्ष्मण से आ मिला और खरदूषण की सेवा से युद्ध करने लगा। राजा चन्द्रोदय का वह पराक्रमी पुत्र अपने पिता के वैर का बदला खरदूषण से लेने आया था। घोर युद्ध हुआ, चारों ओर वाणों की वर्षा होने लगी।

लक्ष्मण जाकर सीधा खरदूषण से युद्ध करने लगा। खरदूषण अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने के लिये बार-बार भीषण गर्जना करता हुआ लक्ष्मण को मारने दौड़ता लेकिन लक्ष्मण उसके सब वारों को बचा जाता। अन्त में सूर्यहास खड्ग से लक्ष्मण ने खरदूषण का सिर काटकर गिरा दिया। देव पुष्प-वृष्टि करने लगे और चारों ओर से 'धन्य-धन्य' का स्वर गूँज उठा।

इसके पश्चात् खरदूषण का सेनापति दूषण विराधत को रथ से रहित करने के लिये दौड़ा तभी लक्ष्मण ने उसके मर्मस्थल पर बाण मारा और उसको घायल कर दिया। लक्ष्मण ने खरदूषण के सारे समुदाय, कटक, पाताल-लंकापुरी विराधत को दे दिये और राम के पास आ गये। लक्ष्मण ने विराधत के बारे में राम से कहा—हे नाथ! यह चन्द्रोदय विद्याधर का पुत्र विराधत है, इसने युद्ध में मेरी बड़ी मदद की है।

विराधत ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और फिर राम की जय-जयकार करते हुए अपने मंत्रियों सहित विनती करता हुआ बोला—आप हमारे स्वामी हैं और हम सेवक हैं। जो भी कार्य हो, हमको आज्ञा दीजिये।

लक्ष्मण ने सीताहरण की बात विराधत को सुनाई। विराधत सुनकर बहुत दुःखी हुआ और उसने सीता को खोजने का दृढ़ संकल्प करते हुए अपने मंत्रियों से कहा—पुरुषोत्तम की स्त्री पृथ्वी पर जहाँ भी हो, जल, स्थल, आकाश, पुर, वन, गिरि ग्रामादि में प्रयत्न करके तलाश करो। अगर कोई यह कार्य कर पायेगा तो मनवांछित फल पायेगा।

जैन स्रोत में यह कथा सीताहरण के पश्चात् की है, इसमें विद्याधर विराधत राम का शरणागत है और अपने मन्त्री, सेना के लोगों को सीता की तलाश करने भेजता है, अन्य राम-कथाओं में सुग्रीव का चरित्र कुछ इससे मिलता-जुलता है लेकिन जैन-कथा ने सुग्रीव की कथा को भी राम-कथा के अन्तर्गत किया है, उसे हम आगे लेंगे।

इस कथा में एक बात और महत्वपूर्ण मिलती है कि लक्ष्मण ने विराधत को पाताल-लंका का राज्य भी दे दिया। यह पाताल-लंका ही अन्य राम-कथाओं में जनस्थान के नाम से विख्यात है जहाँ रावण का भाई खर राज्य करता था लेकिन उनमें राम ने किसी को जनस्थान का राज्य नहीं दिया था।

अन्य राम-कथाओं के अनुसार रावण ने सीता को ले जाते हुए रास्ते में जटायु से युद्ध किया था, जैन-स्रोत के अनुसार जटायु ने उसी समय युद्ध दिया था जब रावण ने सीता को उठाया था। इसके बाद रावण का रास्ते में रत्नजटी से और युद्ध होता है। वह कथा इस प्रकार है :

जब रत्नजटी ने रावण के साथ सीता को 'हाय राम, हाय लक्ष्मण' कहकर विलाप करते हुए देखा तो उसने क्रुद्ध होकर रावण से कहा—हे पापी दुष्ट विद्याधर! ऐसा अपराध करके तू कहाँ जायगा। यह राम की स्त्री सीता भामण्डल की बहन है। मैं भामण्डल का सेवक हूँ। हे दुर्बुद्धे! अगर जीना चाहता है तो इसे छोड़ दे।

रावण क्रुद्ध होकर युद्ध करने का विचार करने लगा लेकिन उसे डर था कि कहीं सीता युद्ध में मर न जाय इसलिये उसने रत्नजटी की विद्या नष्ट कर दी जिससे

वह आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपनी आकाशविचरण की विद्या खोकर रत्न-जटी विमान पर बैठ कर अपने घर चला गया। इसके पश्चात् अनेकों विद्याधर सब दिशाओं से नाना प्रकार के वेष बनाये हुए सीता को खोजने कम्बू पर्वत पर आये लेकिन सीता को न पाकर निराश राम के पास लौट गये।

राम ने दुःखी होकर कहा—हे विद्याधरो! तुमने हमारे काम के लिये बहुत यत्न किया अब अपने-अपने स्थान को जाओ। हमें तो अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। हमारा तो सब-कुछ नष्ट हो गया। कुटुम्ब भी छूट गया, और यहाँ वन में प्राणप्रिये सीता का हरण हुआ।

यह कहकर राम रोने लगे। उनके धैर्य्य बंधाते हुए विराधत ने कहा—हे देव! आप इतना विषाद न करिये। शीघ्र ही आप जनकसुता को देखेंगे। हे प्रभो! यह शोक महाशत्रु है और शरीर का नाश करता है। धैर्य्य ही महापुरुषों का सर्वस्व है। यह समय विषाद का नहीं है। ध्यान देकर सुनिये, आपके छोटे भाई ने खरदूषण को मारा है, इसका परिणाम बड़ा भयंकर हो सकता है क्योंकि किष्किंधापुरी का धनी राजा सुग्रीव और इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, त्रिशिर, अक्षोभ, भीम, क्रूरकर्मा, महोदर अनेक महायोद्धा विद्याधर खरदूषण के मित्र हैं। इसकी मृत्यु से सभी को बड़ा दुःख हुआ है। वैताढ्य पर्वत के अनेक विद्याधर खरदूषण के मित्र हैं। पवनञ्जय का पुत्र हनुमान जिसे देखकर ही अच्छे योद्धा डर कर भाग जाते हैं वह खरदूषण का जामाता है, वह भी इसकी मृत्यु पर क्रुद्ध होगा। इसलिये इस वन में रहना अब ठीक नहीं है। पाताल-लंका में अलंकारोदय नामक नगर में चलिये और भामण्डल को समाचार भेज दीजिये। वह नगर महा दुर्गम है, वहाँ से निश्चिन्त हो हम सारा कार्य करेंगे।

दोनों भाई चार घोड़ों के रथ पर बैठ कर चले। रास्ते में चन्द्रनखा का दूसरा पुत्र सुन्दर लड़ने के लिये आया। उसे हराकर राम-लक्ष्मण विराधत के साथ नगर में चले गये और वहाँ खरदूषण के विशाल भवन में रहने लगे। सुन्दर भाग गया। खरदूषण के महल में जिन-मन्दिर देखकर राम ने उसमें प्रवेश किया और अरहंत की प्रतिमा देखकर उसकी अर्चना करने लगे। जहाँ-जहाँ भगवान् के चैत्यालय थे वहाँ राम ने पूजा की और उस आनन्द में एक क्षण को तो अपना सारा दुःख भूल गये।

चन्द्रनखा, सुन्दर के साथ अपने पति और पुत्र का शोक करती हुई लंका चली गई।

× × ×

जैन लोक के अनुसार रावण रत्नजटी को पराजयी करने के पश्चात् वापिस जाकर सीता को लेकर एक ऊँचे पर्वत की चोटी पर बैठ गया और सीता को देखकर काम के बाणों से बिंधा हुआ अत्यन्त दीन होकर बोला—हे सुन्दरी! तेरे मुख पर क्रोध

की अग्नि जल रही है लेकिन फिर भी यह सुन्दर दीखता है, प्रसन्न होकर एक बार मेरी ओर दृष्टि फेर। हे कृशोदरी! विमान के शिखर पर बैठी सर्वदिशाओं को देख, मैं तुझे सूर्य के ऊपर आकाश में लाया हूँ। अपने हृदय में मुझे स्थान दे।

रावण के ये वचन सुनकर सीता रावण को अनेक प्रकार से धिक्कारने लगी। रावण हर तरह सीता को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा था लेकिन सीता ने इसकी ओर नहीं देखा। रावण लंका में आया। चारों ओर जय-जयकार होने लगा। रावण सीता को देवारण्य नामक उपवन में ले गया वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे उसको बैठा दिया। सीता ने प्रतिज्ञा की कि जब तक रामचन्द्र की कुशल-क्षेम की वार्ता मैं न सुनूँगी तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूँगी।

उसी समय रावण की बहन चन्द्रनखा लंका में आई और भाई रावण को उसने खरदूषण की मृत्यु का समाचार सुनाया। यह सुन कर रावण के साथ उसकी १८००० रानियाँ भी विलाप करने लगीं। चन्द्रनखा रावण की गोद में पड़ी रोने लगी।

रावण सबको सांत्वना देते हुए कहने लगा—रोने से क्या लाभ है। बिना काल कोई वज्र से भी नहीं मर सकता। कहाँ वे भूमिगोचरी राम और कहाँ तेरा पति विद्याधर दैत्यों का अधिपति खरदूषण, राम ने उसे मार दिया, यह काल ही का कारण है। जिसने तेरा पति मारा है उसको मैं अवश्य मारूँगा। यह कहकर रावण चिन्तित होकर महल के भीतर चला गया। मन्दोदरी ने रावण को व्याकुल देखकर पूछा—हे नाथ! खरदूषण की मृत्यु से आप इतने व्याकुल क्यों हैं। आप तो कभी शोक नहीं करते। पहले इन्द्र ने युद्ध में तुम्हारे काका श्रीमाली को मार दिया था और अनेक बंधु-बांधव युद्ध में मारे गये थे तब भी आप दुःखी नहीं हुए थे।

रावण कहने लगा—हे रानी! मेरी चिन्ता का दूसरा कारण है, अगर तुम कुछ कर सको तो मैं तुमसे कहूँ।

मन्दोदरी ने उत्सुकता प्रकट की।

रावण कहने लगा—सीता नाम की परम सुन्दरी मेरे चित्त को व्याकुल कर रही है, मैं उसकी इच्छा करता हूँ लेकिन वह मेरी ओर देखती तक नहीं। उसके बिना मेरा जीवन नहीं बच सकता।

मन्दोदरी कहने लगी—हे देव! वह स्त्री अवश्य कोई मन्दभागिनी है जो आप जैसे पुरुषरत्न को नहीं चाहती। आप उसके साथ बलात्कार क्यों नहीं करते।

रावण ने कहा—मैं उस सुन्दरी के साथ बलात्कार नहीं कर सकता हूँ। उस का कारण सुनो—अनंतवीर्य केवली के निकट मैंने एक व्रत लिया था। देव इन्द्रादिक के द्वारा वन्दनीय वे भगवान् कहने लगे—नियम पालन करने से ही मनुष्य के दुःख

और पापों की निवृत्ति हो सकती है। जो मोक्ष के कारण नियमों का पालन नही करते हैं ऐसे मनुष्यों में और पशुओं में कोई भेद नहीं है। इसलिए पापों को छोड़कर सुकृत-रूप धन को अंगीकार करो और संसार-रूपी अंधकूप में न गिरो। भगवान् के इन वचनों को सुनकर कई मनुष्य तो मुनि हो गये, कई अल्पशक्ति वाले अणुव्रत धारण करके श्रावक हो गये।

उसी समय भगवान् केवली के समीप एक साधु मुझसे कहने लगे—हे दशानन! तुम भी कुछ नियम लो। तुम दया-धर्म-रूपी रत्न नदी में आये हो इसलिये गुणरूपी रत्नों के संग्रह के बिना खाली मत जाओ, तब मैंने देव, असुर, विद्याधर और मुनि सबको साक्षी करके व्रत लिया कि जो परनारी मेरी इच्छा न करेगी मैं उसके साथ बलात्कार न करूँगा। राजाओं की यह नीति है कि जो वचन कह दिये उन्हे उलट नहीं सकते। इसलिए अगर मैं सीता को प्रसन्न न कर सका तो प्राण त्याग दूँगा।

रावण के ये शब्द सुनकर मन्दोदरी अट्ठारह हजार रानियों के साथ देवारण्य नामक उद्यान में सीता के पास गई। उन सबने सीता के हृदय को रावण के वश मे करने का भरसक प्रयत्न किया लेकिन सीता उनकी किसी बात से नहीं डिगी। उसी समय रावण आया और सीता से अत्यंत दीन वाणी बोलता हुआ उसे स्पर्श करने के लिए बढ़ा। सीता ने क्रुद्ध होकर रावण से अनेक कठोर वचन कहे। जब रावण ने अपने आप को इतना तिरस्कृत पाया तो उसने माया रची। अट्ठारह हजार रानियाँ वापस चली गईं।

माया से सूर्य ग्रस्त हो गया। हाथियों की एक घटा-सी आई जिनके सिर से मद टपक रहा था। सीता भयभीत हो गई। अग्नि के शोले बरसने लगे। जीभों को निकालते हुए अनेकों सूर्य आये फिर भी सीता रावण की शरण न गई। मुख फाड़े हुए बहुत से क्रूर वानर आये जिन्होने उछल-उछलकर महाभयानक शब्द किये। अग्नि की ज्वाला के समान चपल जिह्वा वाले माया के अजगर सर्प आये लेकिन सीता रावण की शरण नहीं गई। अन्धकार के समान काले ऊँचे व्यंतर हुँकार करते आये लेकिन सीता भयभीत न हुई। नाना प्रकार की माया रावण ने रची लेकिन वह सीता के हृदय को वश में नहीं कर सका।

रात्रि बीत गई। जिनमन्दिरों में वाद्यों का घोष हुआ, कपाट खुले। पूर्व दिशा आरक्त हो गई और चन्द्रमा को प्रभारहित करके सूर्य उदय हुआ। उसी समय सीता के रुदन के शब्द सुनकर विभीषणादि रावण के भाई जो वहाँ खरदूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर आये थे पूछने लगे कि यह कौन स्त्री है?

विभीषण ने कहा—हे बहन! तू कौन है? ऐसा लगता है कि तू अपने पति के विरह में रुदन कर रही है।

। ने कहा—मैं राजा जनक की पुत्री भामण्डल की बहन हूँ। मैं राम की
रथ मेरे श्वसुर हैं और लक्ष्मण मेरे देवर हैं। वह खरदूषण से लड़ने गया
त भी गये थे, उसी बीच यह दुष्ट बुद्धि रावण मुझे हर लाया है। मेरे
पति अवश्य प्राण त्याग देंगे। हे भाई! मुझे शीघ्र मेरे पति के पास

ोता के ये करुण वचन सुनकर विभीषण रावण से बोला—हे देव! यह
ग्नि की ज्वाला है। यह सर्प के फन के समान भयंकर है। आप इसे क्यों
शीघ्र ही जहाँ से इसे लाये हो वहीं भेज दो। हे स्वामी! मेरी बालबुद्धि है
पका अपयश न हो इसलिये मैं यह सलाह दे रहा हूँ। परस्त्री की इच्छा करना
दोनों लोकों को नष्ट कर देता है, उत्तम पुरुषों को ऐसी अनीति का कार्य
ना चाहिये जिसमें आप तो मर्यादा के पालन करने वाले विद्याधरों के महेश्वर
ह जलता हुआ अंगारा आप अपने हृदय से क्यों लगाते हैं। जो पापी परस्त्री का
ए करते हैं वे नरक में पड़ते हैं।

रावण ने कहा—हे भाई! पृथ्वी पर जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं उनका मैं अधि-
हूँ। सब मेरी ही वस्तु हैं, यह परवस्तु कहाँ से हो गई।

इसी बीच महाबुद्धिमान मारीच ने भी रावण को सलाह दी लेकिन रावण ने
उत्तर नहीं दिया और अपनी विशाल सेना को लेकर वापस उस उपवन से लंका
। गया। सीता अशोक वृक्ष के नीचे बैठी दिन-दिन पति के वियोग में कृश होती
। अनेक विद्याधरी सीता के मन को लुभाने की चेष्टा करती लेकिन उस पतिव्रता
के हृदय पर राम के अलावा किसी अन्य पुरुष का चित्र नहीं खिंच सका।

जैन-स्रोत के अलावा राम-कथाओं में रत्नजटी जैसे व्यक्ति या मार्ग रोक कर
ने का वर्णन नहीं है। उनमें तो जटायु से युद्ध करने के पश्चात् रावण ऋष्यमूक
त पर होकर गया था। वहाँ सीता ने कुछ आभूषण डाल दिए थे जिन्हें सुग्रीव की
रक्षता में रहने वाले वानरों ने उठा लिया था। जैन-कथा में रावण इस मार्ग से नहीं
या है। जैन-कथा में अनेक विद्याधर विराधत के कहने से सर्व दिशाओं में सीता की
खोज करने गये, अन्य राम-कथाओं में इस तरह का उल्लेख सुग्रीव द्वारा भेजे हुए
वानरों के सम्बन्ध में है। उनमें रावण लंका में पहुँचते ही सीता को अपनी माया से
डराने का प्रयत्न नहीं करता। शूर्पणखा (चन्द्रनखा) सीताहरण के पहले ही लंका में
पहुँच गई थी और उसी के कारण ही तो रावण ने बदला लेने के लिए सीता का
हरण किया था। चन्द्रनखा के नाक-कान काटने का भी वर्णन जैन-कथा में नहीं है।

रावण मन्दोदरी से सीता पर बलात्कार न करने के सम्बन्ध में जो कथा कहता
है वह अन्य रामायणों से भिन्न है। 'वाल्मीकीय रामायण' के उत्तरकाण्ड से प्रक्षिप्त
रूप में हम उस कथा को भी तुलनात्मक रूप से देखते हैं :

जिस समय रावण सुरपुर विजय करने के लिए जा रहा था तो कैलाश पर्वत पर उसने अपनी सेना टिका दी। वहाँ अप्सरा रम्भा अपने पति नलकूबर के पास जा रही थी। रावण ने उस परमसुन्दरी अप्सरा को देखा और काम के वशीभूत होकर उससे सम्भोग करने की इच्छा करने लगा। रम्भा ने बहुत मना किया लेकिन रावण ने उसके साथ बलात्कार किया। जब रम्भा अपने पति के पास पहुँची तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। नलकूबर के पूछने पर उसने सारा हाल कहकर सुना दिया। नलकूबर क्रोध से जल उठा। उसने अपने हाथ में जल लिया और फिर सब इन्द्रियाँ छूकर रावण को शाप देने लगा—हे भद्रे ! तेरी इच्छा के बिना उसने तेरे साथ बलात्कार किया है इसलिये फिर वह दूसरी स्त्री पर इस तरह हाथ न डाल सकेगा। यदि फिर वह किसी अकामा स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करेगा तो उसके सिर के सात टुकड़े होकर चूर-चूर हो जायेंगे।

उसी शाप के भय से रावण ने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया। अन्य रामायणों में यद्यपि यह नलकूबर के शाप की अन्तंकथा नहीं है फिर भी इसका सांकेतिक रूप में वर्णन मिलता है कि रावण शाप के भय से सीता को अपने महल में नहीं रख सका।

× × ×

जटायु का अन्तिम संस्कार करने के बाद राम सीता को ढूँढते हुए चले। रास्ते में कबन्ध नामक राक्षस मिला जिसका मुँह पेट में धँसा हुआ था और भुजायें लम्बी थीं। राम ने उसे मार दिया। 'रामचरित मानस' में तो कबन्ध-वध के लिए एक चौपाई दी है, उसके रूप को तुलसीदास जी ने नहीं बताया है लेकिन 'वाल्मीकीय' तथा 'अध्यात्म रामयण' में कबन्ध के रूप का वर्णन है। जब अपने को अवध्य जानकर उसने इन्द्र पर आक्रमण किया था तो इन्द्र ने उसके सिर पर वज्र मारा था जिससे उसका सिर पेट में धँस गया लेकिन फिर भी वह इन्द्र के वरदान से जीवित रहा। 'मानस' में कबन्ध दुर्वासा ऋषि के शाप से गन्धर्व से राक्षस हो गया था लेकिन 'अध्यात्म-रामायण' में दुर्वासा के स्थान पर अष्टावक्र ऋषि के अपमान का वर्णन है। 'मानस' में कबन्ध अपने गन्धर्व-रूप को लेकर भगवान् राम से भागवत धर्म की शिक्षा पाकर आकाश को चला गया। इसके अलावा जब उसने शाप का हाल श्री राम को सुनाया तो राम तुलसीदास जी के निगमागमसम्मत वेद-मार्ग पर चलने वाले शब्द उससे बोले :

सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥

ब्राह्मणों का विरोधी तुलसीदास के राम के लिये विशेष रूप से अप्रिय था। तुलसी के इस ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण की इस रूप में अभिव्यक्ति अन्य रामायणों में

नहीं है। 'अध्यात्म रामायण' में तो राम इस प्रसंग में तुलसी के इस ब्राह्मणवादी पक्ष का विवेचन कबन्ध के सामने नहीं करते और न 'वाल्मीकीय रामायण' में ही ऐसा है। इसके अलावा 'वाल्मीकय' तथा 'अध्यात्म रामायण' में कबन्ध से राम के युद्ध का वर्णन है जिसमें कबन्ध ने अपनी विशाल भुजाओं से एक बार तो राम-लक्ष्मण को बाँध लिया था, फिर दोनों ने उसकी भुजायें काट डालीं।

'अध्यात्म रामायण' में कबन्ध राम की एक लम्बी स्तुति करता है जिसका सारांश है—हे राम! आप आदि अन्त के रहित, मन-वाणी के अगोचर और अनन्त हैं। आप साक्षात् ब्रह्म हैं। अज्ञानवश सम्पूर्ण जगत् माया में भटक रहा है, आपके विराट् स्वरूप को नहीं पहचान पा रहा है। हे भगवान्! आपका यही रूप मेरे अन्तर में हमेशा बसे।

इस तरह यह पूरा भक्ति का स्तोत्र है। 'वाल्मीकीय रामायण' में राम को कबन्ध से पहले एक महाविशाल, विकराल मुखवाली, तीक्ष्ण रूपा, लम्बे पेटवाली जिसके पैने दाँत थे और उसकी त्वचा रूखी थी ऐसी एक भयानक राक्षसी मिली जिसने लक्ष्मण से कहा—आओ, हम विहार करें। लक्ष्मण ने उसके नाक, कान और स्तन काट डाले। कबन्ध के हाथों पड़ जाने से लक्ष्मण बड़े दीन होकर भाई को पुकारते हैं। यहाँ कबन्ध ही राम को सुग्रीव का पता बताता है जिससे सीता का पता लग सके। 'वाल्मीकीय रामायण' में कबन्ध को ऋषि स्थूलशिर ने शाप दिया है। राम के अलौकिक रूप की झाँकी भी इसमें मिलती है जिससे इन्द्र के वरदान से कबन्ध राम के दर्शन पाकर स्वर्ग चला गया।

इसके बाद राम शबरी के आश्रम में आते हैं। वह निम्न वर्ण की महिला थी। उसने राम का इस प्रकार सत्कार किया मानो भगवान् उसके आश्रम में आये हों। उसने अपने को नीच भी कहा है। 'अध्यात्म रामायण' तथा 'मानस' में राम ने शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया है। वह सार-रूप में इस प्रकार है :

पहली भक्ति—संतों का सत्संग।
दूसरी भक्ति—कथा-प्रसंग में प्रेम।
तीसरी भक्ति—अभिमान-रहित होकर गुरु-चरणों की सेवा।
चौथी भक्ति—कपटरहित होकर मेरा गुणगान करना।
पाँचवीं भक्ति—मेरे मन्त्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास।
छठवीं भक्ति—इन्द्रिय-निग्रह।
सातवीं भक्ति—सब जग को राममय देखना।
आठवीं भक्ति—जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष कर लेना।
नवमी भक्ति—सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना।

राम ने कहा—हे शबरी ! अगर इन भक्तियों में से एक भी भक्ति को कोई करता है उसकी वह गति होती है जो योगियों को भी दुर्लभ होती है।

शबरी राम के सामने चिता में जलकर स्वर्ग चली गई। भक्ति ही एकमात्र मुक्ति का साधन है जिसे कोई भी अधम नीच प्राप्त कर सकता है। यह मत 'मानस', 'अध्यात्म रामायण' तथा 'श्रीमद्भागवत' व 'सूरसागर' की रामकथा का सार है।

'वाल्मीकीय रामायण' में शबरी को कहीं भी शूद्रा या नीच नहीं कहा गया है, न वह स्वयं ही अपने को इस तरह कहती है जैसे 'अध्यात्म रामायण' या 'मानस' में कहती है। इसमें शबरी एक सिद्धा तपस्विनी है जो सिद्ध लोगों को भी पूज्या है। राम जिस समय उसके रमणीय आश्रम पर गये तो उस तपस्विनी ने इनका अतिथि-सत्कार किया। राम ने पूछा—हे तपस्विनी ! अपनी तपस्या के विघ्नों को तुमने जीत लिया है न ? तुम्हारी तपस्या की वृद्धि हो रही है न ? तुमने क्रोध को जीत लिया है न ? तुम्हारा आहार तो नियत है न ? तुम्हारे मन को सुख तो है न ? तुम्हारी गुरु-शुश्रूषा सफल हुई है न ?

शबरी ने कहा—हे रामचन्द्र ! आज मेरा जीवन सफल हो गया। जिन ऋषियों की मैं सेवा करती थी उन्होंने स्वर्ग जाते समय मुझसे कहा था कि रामचन्द्र के आश्रम पर आने पर उनके दर्शन से तुझे श्रेष्ठ और अक्षय लोक प्राप्त होंगे।

यह कहकर शबरी ने कुछ वन्य-पदार्थ राम को भेंट किये। रामचन्द्र ने उस ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी शबरी के दिये पदार्थों को ले लिया। शबरी ने राम को मतङ्ग-वन दिखाया। इसके बाद वह राम की पूजा करके भस्म होकर स्वर्ग को चला गई।

'वाल्मीकीय रामायण' में शबरी राम की भक्त नहीं बनती और न राम उसे नवधा भक्ति का पाठ देते हैं यह तो 'अध्यात्म रामायण' तथा 'रामचरित मानस' में भक्त कवियों के दृष्टिकोण के प्रसंग में समाविष्ट है। शबरी के रूप में कवि ने नवधा भक्ति का उपदेश देना चाहा है। 'वाल्मीकीय रामायण' में शबरी की तपस्या पर अधिक जोर दिया गया है इसके अतिरिक्त शबरी को नीच जाति का न कहकर उसे ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी कहा है। इससे यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि शबरी शूद्रा थी, अगर वह शूद्रा होती तो ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी कैसे हो सकती थी, तपस्या कैसे कर सकती थी और फिर ब्राह्मणों के निकट, जबकि शंबूक शूद्र की तपस्या से ब्राह्मण 'धर्म-विरोध' कहकर चिल्ला उठे थे और राम ने उसका वध किया था, फिर शबरी तपस्या के प्रभाव से स्वर्ग कैसे जा सकती थी। 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा को सबसे पहला प्रामाण्य मानकर हम यह कह सकते हैं कि शबरी का शूद्र या नीच जाति का रूप परवर्ती कवियों की कल्पना है और राम की उस पर अनुकम्पा भागवत धर्म से प्रभावित दृष्टिकोण का ही समावेश है जिसके बारे में मानस में राम कहते हैं—जाति-

पाँति को छोड़कर सब मेरी भक्ति के अधिकारी हैं, इसीलिये शबरी भी। शबरी के बारे में एक मत यह भी है कि वह शबर जाति की स्त्री थी इसलिये शबरी कहलाई। यह शबर जाति भील जाति से मिलती-जुलती अनार्य जाति थी। चूँकि अनार्यों में तपस्या चलती थी इसलिये शबरी तपस्विनी थी, पर प्रश्न यह है कि मतंग आदि ऋषियों ने इस अनार्य तपस्विनी को आश्रम में स्थान कैसे दिया? इससे यह प्रतीत होता है कि आर्य महर्षि अनार्य जातियों को अपनी धार्मिक व्यवस्था में स्वीकार कर चुके थे। व्रात्यस्तोम द्वारा बाहरी लोगों को गणविशेष में स्वीकृत किया जाता था। व्रात्य बकरे की खाल ओढ़ते थे। 'ऐतरेय ब्राह्मण' ७।१३ में ब्राह्मणों ने बिना नहाये दाढ़ी बढ़ा कर, बकरी का चमड़ा पहन कर रहने को श्रेयस्कर नहीं माना है। यह प्रकट करता है कि ये पद्धतियाँ अनार्यों से आई थीं।

इसके दो रूप हैं—यह वैष्णव मत का समर्थन है, लेकिन किस रूप में। एक तरफ तो भागवत धर्म के मानवतावाद को भक्ति के माध्यम से स्वीकार करना दूसरी ओर निगमागमसम्मत वर्ण-व्यवस्था को रूढ़िवाद के सहारे पकड़े रहना जिससे ब्राह्मण सर्वोपरि रहकर शूद्र को केवल भक्ति का अधिकार दे, वह भी ब्राह्मण के चरणों में बैठकर, वैसे शूद्र को अपने किसी सामाजिक अधिकार के लिये ब्राह्मण का विरोध करने की अहम्मन्यता वेद-विरोधी मानी जाय।

इस प्रकार भागवत धर्म की मानवतावादी धारा पर जाति-पाँति का बोलबाला फिर बुलन्द करना और उसे वेदसम्मत बता कर निम्न वर्णों के मुँह बन्द करना, भक्तिगत समानता द्वारा सामाजिक समानता को भूलभुलैया में डालकर निम्न वर्णों के सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मण के हाथ में दे देना, और स्वयं भगवान् से इसका समर्थन करा देना, यही तो हमें 'मानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' में विशेष रूप से मिलता है। 'अध्यात्म रामायण' में अपने दार्शनिक पक्ष के सामने यह सामाजिक पक्ष मुखर नहीं हो पाया है 'मानस' में स्पष्ट रूप से इस उद्देश्य की मर्यादा के रूप में प्रतिपालना हुई है।

उसी दृष्टिकोण के अन्तर्गत शबरी का रूप भी बदल गया। ब्रह्मविद्या की अधिकारिणी वह तपस्विनी नीचवर्ण हो गई। तुलसी ने फौरन उच्च वर्णों के संरक्षणात्मक (Patronizing) दृष्टिकोण को निम्न वर्णों की मुक्ति का साधन बताते हुए लिख दिया है :

> जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि असि नारि।
> महामंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारी॥

वाली-वध

जब राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे तो वहाँ पम्पा-सरोवर की शोभा देखकर रामचन्द्र सीता के विरह में विलाप करने लगे। ऋष्यमूक पर्वत से सुग्रीव इन

दोनों आयुधधारी राजकुमारों को देखकर डर गया कि कहीं बालि ने इन्हें न भेजा हो। उसने हनुमान को इनका पता लेने के लिये भेजा। हनुमान अपना रूप बदलकर एक भिक्षुक के रूप में राम के पास गये। 'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' में उनका ब्राह्मण के रूप में जाना वर्णित है। उन्होंने जाकर राम की बड़ी प्रशंसा की और उनके आने का कारण पूछा, फिर अपना तथा सुग्रीव का परिचय उन्हें दिया।

राम हनुमान की वाणी को सुनकर लक्ष्मण से कहने लगे—हे भ्राता! यह हनुमान व्याकरण-शास्त्र के पण्डित हैं। इन्होंने जो कुछ बोला है वह शुद्ध बोला है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के जाने बिना कोई इतना शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता और न इतने विद्वत्तापूर्ण शब्द बोल सकता है।

इस तरह हनुमान की विद्वत्ता की अनेक प्रकार से प्रशंसा करके राम ने सुग्रीव से मिलने की उत्सुकता प्रकट की। राम ने कहा—हमारी स्त्री को कोई राक्षस हर कर ले गया है उसी की खोज में हम वन-वन भटक रहे हैं। उन्होंने अपनी सारी कथा भी इसके साथ कह सुनाई। कहते-कहते वे बहुत दुःखी हो गये। पवनसुत उन्हें सुग्रीव के पास ले गये।

'वाल्मीकीय रामायण' में जब हनुमान राम से परिचय प्राप्त करते हैं तो राम को किसी प्रकार का दैवी अवतार मानकर वे उनकी स्तुति करने नहीं लग जाते हैं जैसा 'अध्यात्म रामायण' तथा 'रामचरित मानस' में है। 'मानस' में तो राम के सच्चे भगवान् स्वरूप को पहचानकर हनुमान को अत्यधिक हर्ष हुआ। किष्किन्धाकाण्ड में आता है :

> प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाई नहीं बरना॥
> पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥
> पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरस हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
> मोर न्याउ मैं पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥

'अध्यात्म रामायण' में तो पहले ही सुग्रीव राम के बारे में अनुमान लगाकर हनुमान से कहता है — हे हनुमान! ये क्षत्रिय का-सा रूप धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष साक्षात् नारायण हैं, प्रकृति से परे जगत् के हेतु हैं, और ये राक्षसों से भक्तों की रक्षा करने को अवतरित हुए हैं।

'अद्भुत रामायण' में पूरी राम-कथा का केन्द्र बिन्दु यही राम-हनुमान संवाद है। जब राम ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे तो सुग्रीव इन्हें बालि का भेजा हुआ समझकर डर गया। उसने महावीर (हनुमान) को उनका पता लगाने भे[illegible] हनुमान भिक्षु का रूप धारण करके राम के पास गया और रा[illegible] दिखा कर बोला—आप कौन हैं? यह सुनकर राम ने [illegible] सदाशिव,

वनमाला से विभूषित, श्रीवत्स वक्षस्थल में धारण किये, पीताम्बरधारी मनुज, लक्ष्मी, सरस्वती से सहित, ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमारादि से सब ओर सेव्यमान। देवता, किन्नर, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा महात्माओं से सेवित, कमल लोचन, सहस्र सूर्य के समान प्रकाश- मान, सौ चन्द्रमाओं के समान सुन्दर मुख वाले, अपने रूप को हनुमान को दिखाया।

हनुमान राम का यह अद्भुत रूप देखकर आँख मींचे हुए मन-ही-मन भगवान् की स्तुति करने लगा। उसने प्रणाम करके रामचन्द्र से कहा—मैं सुग्रीव का मन्त्री हनुमान हूँ, सुग्रीव ने मुझे आपका परिचय प्राप्त करने के लिए ही भेजा था। आपके धनुर्बाण धारण किया देखकर मैंने आपको कुछ और ही समझा था।

राम ने फिर अपने रहस्य की व्याख्या करते हुए हनुमान से कहा—हे वत्स हनुमान ! हमारे भक्त होकर तुम मुझसे पूछते हो इसलिए मैं तुम्हें आत्मगुह्य सनातन ज्ञान जो किसी से नहीं कहना चाहिए कहता हूँ, जिसको यत्न करने पर देवता और दि भी नहीं जानते। इस ज्ञान को प्राप्त द्विजोत्तम ब्रह्ममय हो जाते हैं। इसके द्वारा पु ब्रह्मवादी भी संसार को नहीं देखते हैं, यह रहस्य गुप्त-से-गुप्त छिपा रखने योग्य है जो इसे जानता है उसके वश में महात्मा और ब्रह्मवादी होते हैं। आत्मा केवल स्वच्छ शान्त, सूक्ष्म, सनातन है। वह सर्वान्तर, साक्षात्, चिन्मात्र, अंधकार से परे है, व अन्तर्यामी पुरुष, प्राण और महेश्वर है। वही कालाग्नि अव्यक्त है, यह वेदश्रुति कह हैं। इससे संसार उत्पन्न होकर इसी में लय हो जाता है। वही मायावी माया से ब होकर अनेक शरीर धारण करता है, न कोई इसे चला सकता है और न यह चलता है न यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, प्राण, मन, अव्यक्त शब्द-स्पर्श है, न रूप, र गंध और न अहंकार, न वाणी है।

हे महावीर ! यह कर, चरण उपस्थ, वायु-रूप भी नहीं है। कर्ता, भोक्त प्रकृति, पुरुष, माया और प्राण भी नहीं है, केवल चैतन्य स्वरूप है। जिस प्रकार प्रक और अन्धकार का सम्बन्ध नहीं है इसी प्रकार प्रपंच से परमात्मा का सम्बन्ध न है। जैसे लोक में छाया और वृक्ष परस्पर विलक्षण हैं इसी प्रकार प्रपंच और पुरुष प मार्थ से भिन्न हैं। जो आत्मा की मलिन अवस्था है, जो स्वभाव से विकारी हो सौ जन्म में भी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। मुनिजन परमार्थ से अपनी आत्मा मुक्त देखते हैं, विकारहीन, दुःखरहित, आनन्द, अविनाशी देखते हैं। मैं कर्ता, सु दु:खी हूँ, स्थूल-कृश हूँ, यह बुद्धि अहंकार के सम्बन्ध से प्राणी आत्मा में आरोपण क हैं। वेद को जानने वाले उसको साक्षी प्रकृति से परे कहते हैं, वही भोक्ता अ सर्वत्र स्थित है। इस कारण सब देहधारियों को यह संसार से प्रतीत होता है, ज्ञान अन्यथा दीखता है और वह भी प्रकृति के संग से ऐसा है। वह सर्वान्तर्यामी पुरुष नि उदित स्वयं ज्योति सर्वगामी पुरुष पर है। उसके बिना जाने यह पुरुष अहंकार विवेक करने से अपने-आपको कर्ता मानता है। ऋषिजन सदसदात्मक चैतन्य

यथार्थ देखते हैं, ब्रह्मवादी उस प्रधान प्रकृति कारण ब्रह्म को जानकर मुक्त होते हैं। उससे संगति की प्राप्त हुआ यह कूटस्थ निरंजन पुरुष तत्व से अक्षर ब्रह्म-रूप अपनी आत्मा को नहीं जानता। अनात्मा में आत्मा को जानकर दुःखी होता है, रागद्वेषादि ये सब भ्रांति के निबंधन हैं। इसी कार्य में यह पुण्य-अपुण्य देखा जाता है, ऐसी श्रुति है, इसी के वश से सब देहधारियों के देह की उत्पत्ति होती है।

आत्मा नित्य और सर्वत्रगामी है, कूटस्थ दोष से वर्जित एक ही वह अपने माया-स्वभाव से अनेक प्रकार का दीखता है। इसी कारण मुनिजन परमार्थ से अद्वैत कहते हैं, स्वभाव से जो अव्यक्त का भेद है वह माया है। जैसे धूम के सम्पर्क से आकाश में श्यामता दीखती है, आकाश मे दोष नहीं आता इसी प्रकार अन्तःकरण के भावों से आत्मा मलिन नहीं होता है। जैसे स्फटिक मणि केवल अपनी कान्ति से ही शोभा को प्राप्त होती है, उपाधिहीन होने से निर्मल है, इसी प्रकार आत्मा प्रकाशित होती है। बुद्धिमान इस जगत् को ज्ञान-स्वरूप कहते हैं, कुबुद्धि, अज्ञानी इसे अर्थ-स्वरूप देखते हैं। वह कूटस्थ निर्गुण-व्यापी आत्मा स्वभाव से चैतन्य है, भ्रान्त दृष्टि वाले पुरुषों को यह अर्थ-रूप दीखता है। जैसे मनुष्यों को स्फटिक प्रत्यक्ष दीखता है और व्यव-धान-सहित होने से लालिमा आदि दीखती है इसी प्रकार परम पुरुष है, वह पृथक् शुद्ध है और देह में व्याप्त होने से उपाधिमान दीखता है। इस कारण आत्मा अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वगत, अविनाशी है। वही उपासना करने योग्य, मानने योग्य और मुमुक्षुओं के सुनने योग्य है। जिस समय मन मे सर्वत्रगामी चैतन्य का प्रादुर्भाव होता है तब योगी व्यवधान-रहित हो उसको प्राप्त होता है, जिस समय वह सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी आत्मा मे देखता है और अपने को सब भूतो में देखता है तब उस ब्रह्म को प्राप्त होता है। जो सब भूतों को अपने में देखता है तब वह एकीभूत हो केवल ब्रह्म को प्राप्त होता है। जब इसके हृदय की सब कामना छूट जाती है तब यह पंडित अमृतीभूत होकर क्षेम को प्राप्त होता है, जब भूतों को, पृथक्भाव को एक स्थान में देखता है उसी समय ब्रह्म विचार के विस्तार को प्राप्त होता है, जब परमार्थ से अपने को केवल एक देखता है और जगत् को माया-मात्र देखता है तब निवृत्ति हो जाती है। जिस समय जन्म, जरा, दुःख, व्याधियों की एक ही औषधि केवल ब्रह्मज्ञान होता है तब यह शिव होता है। जैसे नदी-नद समुद्र में जाकर एकता को प्राप्त होते हैं इस प्रकार से यह निष्फल आत्मा अक्षर में मिलकर एकता को प्राप्त होता है। इस प्रकार यह विज्ञान ही है, प्रपंच और स्थिति नहीं है, लोक अज्ञान से व्याकुल होकर इसे विज्ञान से देखता है। वह ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प, अविनाशी है। यह अज्ञान से सब होता है। विज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है।

यह परम सांख्य उत्तम ज्ञान है, सब वेदान्त का सारयोग यही है—एकचित्तता।

योग से ज्ञान होता है, ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है, ज्ञान-योग से युक्त पुरुषों को कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जिस मार्ग से योगी जाते हैं उसी मार्ग से सांख्य वाले जाते हैं। सांख्य योग में जो एकता देखता है वही देखता है।

हे नाथ ! ऐश्वर्य में मन लगाने वाले योगी घोर हैं, वे उन स्थानों में निमज्जित होते हैं. परमात्मा एक है, वह प्रतिपादक है। वह सर्वगत, नित्य, अचल, ऐश्वर्य है। ज्ञानयोग में युक्त प्राणी उस सबको देहान्त में प्राप्त हो जाते हैं। वह मैं अव्यक्त आत्मा, मायावी परमेश्वर हूँ, सब वेदों में सर्वात्मा सर्वतोमुख स्थित हूँ, सर्वकामयुक्त, सर्वरस, सर्वगंध, अजर, अमर, सब ओर से पाणिपाद युक्त मैं अन्तर्यामी सनातन हूँ। पाणिपाद वाला, सब कुछ ग्रहण करने वाला हृदय में स्थित हूँ, बिना नेत्रों के देखता हूँ और बिना कान के सुनता हूँ। मैं इस सबको जानता हूँ और मुझे कोई नहीं जानता। तत्वदर्शी मुझको एक महान् पुरुष कहते हैं निर्गुण अमलरूप जो उत्तम ऐश्वर्य है जिसको मेरी माया से मोहित हुए देवता भी नहीं जानते हैं, जो मेरा गुह्य-रूप सर्वगामी देह है उसमें तत्वदर्शी प्रवेश कर सायुज्य को प्राप्त होते हैं। जिनको यह विश्वरूपिणी माया नहीं सिरती है वे मेरे साथ परम शुद्ध निर्वाण को प्राप्त होते हैं। सौ करोड़ कल्प में भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती।

हे वत्स ! मेरी कृपा से ऐसा होता है. यह वेद का अनुशासन है। हे हनुमान ! अपुत्र, अशिष्य, अयोगी को यह सांख्य-योग-मिश्रित ज्ञान नहीं देना चाहिये।

फिर रामचन्द्र कहने लगे—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अव्यक्त से काल हुआ, उसके पर प्रधान पुरुष हुआ। उनसे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ, वह सब ओर से हस्त, चरण, सिर, मुखवाला है, सब ओर से कर्णवान और सब ओर से आवृत्त हुआ स्थित है, सब इन्द्रियगुणों का आवास-रूप, सब इन्द्रियों से वर्जित, सर्वाधार, स्थिरानन्द, अव्यक्त, द्वैत-वर्जित, सब उपमान से रहित, प्रमाण से तथा इन्द्रियों से परे, निर्विकल्प, निराभास, सर्वाभास, परामृत, अभिन्न, भिन्न संस्था वाले, शाश्वत ध्रुव, अविनाशी, निर्गुण, परम व्योम आत्मा है उसके ज्ञान को कवि कहते हैं। वही सब भूतों का आत्मा बाह्य अन्तर से परे है।

इसलिये मैं सर्वत्रगामी, शान्त, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ। मुझ अव्यक्त रूप वाले ने यह सब जगत् विस्तार कर रखा है। सब प्राणी मेरे स्थान में हैं, जो इसको जानता है वह वेद का जानने वाला कहलाता है।

प्रधान और पुरुष दो तत्व माने गये हैं, उनका संयोग कराने वाला अनादि निर्दिष्ट काल है, ये तीनों अनादि, अनन्त अव्यक्त में स्थित हैं। तदात्मक अन्य हो परन्तु रूप मेरा ही है जो महत् से लेकर विशेष पर्यन्त सब जगत् को निर्मित करता है। यह प्रकृति सब प्राणियों को मोहित करने वाली कही गई है और पुरुष प्रकृति

में स्थित हुआ प्रकृति के गुणों को भोगता है। अहंकार से विविक्त होने से वह पच्चीस तत्व का कहा जाता है, आद्य, विकार प्रकृति और महान् आत्मा कहा जाता है।

विज्ञान से विज्ञान-शक्ति और उससे अहंकार हुआ है, वही एक महान् आत्मा अहंकारयुक्त कहा जाता है। वही जीव अन्तरात्मा नाम से तत्व-ज्ञानियों द्वारा गाया जाता है, उसके द्वारा जन्मों का सुख-दुःख जाना जाता है। विज्ञानात्मक वही है, मन उसका उपकारी है, उसको अविवेक होने से संसार प्राप्त हुआ है। वह अविवेक प्रकृति के संग से काल द्वारा प्राप्त हुआ है, काल ही प्राणियों को प्रकट कर संहार कर जाता है। सब काल के वश में हैं, काल किसी के वश में नहीं है, वह सनातन सबके अन्तर मे स्थित हुआ वश करता है। वही भगवान् प्राण सर्वज्ञ पुरुष कहलाता है। विद्वान् सब इन्द्रियों से परे मन को कहते हैं। मन से परे अहंकार, अहंकार से परे महान्, उससे परे अव्यक्त, इससे परे पुरुष, पुरुष से परे भगवान् प्राण और उसके वशीभूत यह सब जगत् है, प्राण से परे व्योम और आकाश से परे अग्नि ईश्वर है, इसलिये मैं सर्वत्र-गामी, शान्त ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ, मुझसे परे और कुछ नही, मुझे जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है। स्थावर-जंगम जगत् में नित्य नहीं रहेंगे, केवल एक आकाश-रूप महेश्वर मैं ही स्थित रहता हूँ, इसलिये मैं यह सब उत्पन्न करके संहार कर जाता हूँ, मैं माया-मय देव काल के सम्बन्ध से सब कुछ कहता हूँ। मेरी निकटता से यह काल सब जगत् करता है और अन्तरात्मा इसके कृत्य में लगता है, यही वेद का अनुशासन है।

हे महावीर! जो मैं कहता हूँ वह सावधान होकर सुनो। मैं अनेक प्रकार के तप, दान, यज्ञ से पुरुषों द्वारा नहीं जाना जाता हूँ, केवल जो मेरी भक्ति करते हैं वे ही मुझको प्राप्त होते हैं। मैं सर्वगामी, सब भावों के अन्तर में स्थित रहता हूँ। हे वीर! सर्वसाक्षी मुझको लोक मे जानने में समर्थ नहीं होते। जिसके अन्तर मे सब है और जो सर्वान्तर्यामी परे-से-परे है, वह मैं धाता-विधाता इस लोक में सब ओर स्थित हो रहा हूँ। सब देवता और मुनि मुझे देखने में समर्थ नहीं होते। ब्राह्मण, मनु, इन्द्र और सब देवता मुझे ही एकमात्र परमेश्वर मानते हैं। ब्राह्मण अनेक यज्ञों से मेरा यजन करते हैं। सब लोक ब्रह्मलोक मे पितामह को नमस्कार करते हैं। योगी भूताधिपति ईश्वर का नित्य ध्यान करते हैं। मैं सब यज्ञों का भोक्ता और फल देने वाला हूँ। सब देवों का शरीर होकर सर्व आत्मा सबसे स्तुति को प्राप्त होता हूँ। धर्मात्मा, वेदवादी विद्वान् मुझको देखते हैं, जो भक्त मेरी उपासना करते हैं मैं सदा उनके निकट निवास करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य धर्मात्मा मेरी उपासना करते हैं, उनको मैं परमपद का स्थान देता हूँ और भी जो शूद्रादि नीच जाति विकर्म मे स्थित हैं वे भक्ति करने से समय पर मेरे निकट प्राप्त होकर मुक्त हो जाते हैं। मेरे भक्त पापरहित हो जाते हैं, उनका नाश नहीं होता। जो मूढ़ मेरे भक्त की निन्दा करता है वह देव-देव की निन्दा करता है। कोई मुझे ध्यान से और कोई ज्ञान से देखते हैं। कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोग

से मुझे देखते हैं। सब भक्तों में मुझे वह सबसे अधिक प्रिय है जो ज्ञान से मेरी आराधना करता है।

इस जगत् का निर्माता मैं ही हूँ। सृष्टि के आदि में मैं प्रधान और पुरुष को क्षुभित करता हूँ, उनके परस्पर संयुक्त होने पर यह जगत् होता है। सब जगत् को पालन करने वाले नारायण, सबको संहार करने वाले कालात्मा रुद्र मेरी ही आज्ञा से अपना कार्य करते हैं। अग्नि भी मेरी आज्ञा से अपना कार्य करती है। मेरी ही आज्ञा से निरंजन देव जीवों के बाहर-भीतर स्थित रहता हुआ प्राणियों के शरीर का भरण-पोषण करता है। सूर्य और चन्द्र मेरी ही आज्ञा से कार्य करते हैं। वैवस्वत यमदेव तथा कुबेर भी मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। सम्पूर्ण राक्षसों का नाथ, तपस्वियों को फल देने वाला निऋति तथा वैतालगण भूतों का स्वामी, भोगफल देने वाला ईशान भी मेरी आज्ञा से कार्य करते हैं। आंगिरस रुद्रगणों का अग्रणी शिष्य वामदेव जो नित्य योगियों का रक्षक है मेरी आज्ञा मानता है। सर्वजगत् के पूज्य विघ्नहारक गणेश जी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ देवताओं के सेनापति स्कंद भी मेरी आज्ञा मानते हैं। प्रजाओं के पति मरीच्यादि महर्षि, नारायण की पत्नी लक्ष्मी मेरी आज्ञा से कार्य करते हैं। सरस्वती, सावित्री, पार्वती आदि सब देवियाँ मेरी आज्ञा के वशीभूत हैं। शेष भी मेरी आज्ञा से पृथ्वी को धारण किये है। वड़वाग्नि भी मेरी ही आज्ञा से जल को सुखाता है। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत, अश्विनीकुमार और भी सब देवता मेरे शासन में स्थित रहते हैं। गन्धर्व, उरग, यक्ष, सिद्ध, चारण, भूत, राक्षस, पिशाच सब मेरी आज्ञा में स्थित हैं। ऋतु, वर्ष, महीना, पखवारा, युग, मन्वन्तर सब परमात्मा मर्याद् मेरे शासन मे स्थित हैं। परा, परार्द्ध जितने काल के भेद हैं, चार प्रकार के भूत स्थावर, चर सब मेरे नियोग से वर्तते हैं। सब पतन, भुवन और असंख्य ब्रह्माण्ड भी मेरी आज्ञा से वर्तते हैं। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, भूतादि प्रकृति ये सब मेरी आज्ञा से वर्तते हैं। मुझसे ही यह जगत् पूर्ण कर अन्त में लय कर लिया जाता है, मैं ही भगवान् ईश, स्वयं-ज्योति सनातन हूँ। परमात्मा परब्रह्म मैं ही हूँ। मुझसे अधिक कोई नहीं है।

यह परमज्ञान मैंने तुमको दिया है, इसको जानकर प्राणी संसार के बंधनों से छूट जाता है। मैं माया के आश्रित हो दशरथ के यहाँ जन्म ले आया हूँ। मैं राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत इस प्रकार चार तरह से अपने रूप को प्रकट करके स्थित हुआ हूँ।

हे महावीर ! जिस अपने रूप का मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है वह बड़ा से हृदय में धारण करने योग्य है। जो हमारा-तुम्हारा यह संवाद नित्य पढ़ेंगे वे जीवन-मुक्त हो सब पापों से छूट जायेंगे, जो ब्रह्मचर्य में परायण ब्राह्मणों को सुनायेंगे, या

इसके अर्थ पर विचार करेंगे वे परमगति को प्राप्त होंगे। जो भक्तियुक्त दृढ़व्रत हो इसे सुनेंगे वे सब पापरहित हो ब्रह्मलोक में निवास करेंगे।

यह सुनकर महावीर जी ने भगवान् राम के विराट् स्वरूप का अपने हृदय में ध्यान किया और फिर प्रणाम कर अनेक प्रकार से परब्रह्मस्वरूप राम की स्तुति करने लगे।

उपर्युक्त वर्णन में जो आत्मा और परमात्मा-सम्बन्धी चिन्तन है वह उपनिषदों का ही वेदान्त दर्शन है जिसके आधार पर 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का निर्माण हुआ। संसार में दुःख का कारण माया है, इस विचार की पुष्टि प्रायः प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा के अन्तर्गत हमें मिल जाती है। 'अध्यात्म रामायण' में भी राम तारा को पति की मृत्यु के शोक को निवारण करने के लिये यही उपदेश देते हैं। इसमें वर्णित समस्त चिन्तन शंकर के अद्वैतवाद से मेल खाता है, रामानुज के विशिष्ट द्वैतवाद का प्रभाव इसमें नहीं दीख पड़ता जैसा हम 'मानस' में देखते हैं।

इसमें सांख्य दर्शन का भी वेदान्त दर्शन से समन्वय कराने का प्रयत्न है। सबसे श्रेष्ठ भक्ति को माना गया है लेकिन ज्ञानयुक्त भक्ति ही कथाकार की साधना का विषय है। कथा में वर्णित भगवान् के विराट् स्वरूप की कल्पना भी भक्त से ज्ञान की अपेक्षा करती है, इसमें वह साधारण भक्ति ही पर्याप्त नहीं जो 'मानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के लिये बताई गई है। राम के विराट् रूप में सृष्टि का सारा रहस्य खोलकर रखा गया है। जिसका ज्ञान होना भक्त को आवश्यक है, उस रूप को हृदय में धारण करके ही वह भगवान् की सच्ची भक्ति कर सकता है। राम के परमात्मा-स्वरूप की प्रतिष्ठापना तो साधारण तौर से प्रत्येक रामकथा में कहीं-न-कहीं की गई है, लेकिन उसमें इतनी विराट् कल्पना नहीं है। राम ने 'मानस', 'अध्यात्म रामायण' आदि में अपना चतुर्भुज स्वरूप अवश्य दिखाया है लेकिन वह साधारण रूप से विष्णु का रूप है और राम को विष्णु का अवतार सिद्ध करने के लिये ही भक्त कवियों ने इसकी कल्पना की है, उन्होंने उस चतुर्भुज स्वरूप की ज्ञान के क्षेत्र में अधिक विस्तृत व्याख्या करने का प्रयत्न कम किया क्योंकि वे भक्ति को ज्ञान से हटाकर अधिक सरल और सहज बना रहे थे।

भगवान् के विराट् स्वरूप की यह कल्पना 'अद्‌भुत रामायण' में उस परम्परा का प्रारम्भ नहीं करती बल्कि यह तो सबसे पहले वेद में हमें 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' के रूप में मिलता है, गीता में भी भगवान् के विराट्‌रूप का वर्णन है, कई स्थानों पर और भी विराट्‌स्वरूप की कल्पना की गई है लेकिन इनके रूप में प्रत्येक स्थान में अंतर मिलता है, कहीं नवनिर्माण का पोषक, विराट्‌स्वरूप है तो कहीं संहार तथा विनाश का रूप ही हमें उसमें दीखता है, कहीं सृष्टि के पालनकर्ता के रूप में विराट्‌स्वरूप की व्याख्या मिलती है, कहीं विभिन्न मतमतान्तर, देवी-देवता, जातियों की अन्तर्मुखित

के परिणामस्वरूप ब्रह्म का विराट्स्वरूप दिखाई देता है। 'महाभारत' के बाद के ब्रह्म की कल्पना इसी पर आधारित है। 'अद्भुत रामायण' में वर्णित विराट्स्वरूप पिछले विराट् स्वरूपों का समन्वय-मात्र है और ज्ञानयुक्त भक्ति के पक्ष को सबल करने के लिये ही उसकी कल्पना की गई है। इस भक्ति का अधिकारी शूद्र तथा नीच जाति वाला व्यक्ति भी है, यह वैष्णव विचारधारा का प्रभाव है परन्तु प्रश्न यह है कि वह इस आत्मगुह्य सनातन ज्ञान को समझ कैसे सकता है जिसे देवता और द्विज भी मुश्किल से समझ पाते हैं। महात्मा और ब्रह्मवादी ही इस ज्ञान को जानते हैं, शूद्र तो ब्रह्मवादी कैसे हो सकता है अतः उसका इस परम ज्ञान तक पहुँचना सर्वथा असम्भव है और फिर ब्राह्मण तो इस रहस्य को गुप्त मानकर छिपा रखना चाहता है, क्यों? क्या केवल अपना गौरव समाज में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये? अवश्य! ब्राह्मण ने यहाँ शूद्र को भक्ति का अधिकारी तो माना है लेकिन क्या वह शूद्र ब्राह्मण के बिना इस राह पर आगे बढ़ सकता है? परमगुह्य सनातन ज्ञान को समझने के लिये तो उसे ब्राह्मण के चरणों में ही बैठना पड़ेगा उसके ही वेदसम्मत अनुशासन को मानना पड़ेगा। तभी तो भक्ति द्वारा वह परमगति को प्राप्त हो सकता है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार की ब्राह्मणवादी परम्परा को समाज के बदलते ढाँचे में तुलसी ने आगे बढ़ाया है, यद्यपि उसके 'मानस' में भक्ति साधारण है, सबको सहज है परन्तु फिर भी उसका सच्चा फल तभी मिल सकता है जबकि ब्राह्मण द्वारा स्थापित वेदसम्मत मार्ग को (अर्थात् वर्ण-व्यवस्था के विधान को) सब मानें, और किसी प्रकार ब्राह्मण के अधिकारों के विरुद्ध विद्रोह न करें।

'अद्भुत रामायण' में उपर्युक्त वर्णन 'अध्यात्म रामायण' की तरह एक स्तोत्र माना गया है और इसका पाठ करना भक्त को आवश्यक बताया है, इसके फल भी उक्त प्रसंग में वर्णित हैं। इसमें हनुमान का एक वेदज्ञ पंडित के रूप में वर्णन नहीं किया गया है लेकिन फिर भी भगवान् के परमगुह्य ज्ञान को वह उनका विराट् स्वरूप देखकर समझ गया था। इसमें भी परम्परावश उसे एक बन्दर कहा गया है।

'मानस' में हनुमान को इतना विद्वान् नहीं बताया गया है। बल्कि उसे भक्त बताया गया है। वह कहता है :

तव माया बस फिरउँ भुलाना। ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए हनुमान कहते हैं :

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीन बन्धु भगवान॥

वे कहते हैं कि आपकी कृपा से ही मेरा निर्वाण हो सकता है क्योंकि

ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥

'अध्यात्म रामायण' और 'वाल्मीकीय रामायण' को छोड़कर अन्य राम-कथाओं में भी हनुमान् को केवल एक वानर के रूप में ही लिया गया। उसके बारे में विद्वत्ता की कल्पना नहीं की गई है। उनके दृष्टिकोण से यह ठीक भी है क्योंकि उन्होंने हनुमान तथा सुग्रीव के साथ सब वानरों को आज पाये जाने वाले बन्दरों के सदृश ही देखा है जो पेड़-पेड़ पर चढ़कर उछल-कूद कर सकते हैं भला एक बन्दर के लिये वेदज्ञ पण्डित की कल्पना कैसे की जा सकती है।

अगर ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो ये सब वानर साधारण वानरों-जैसे पशु नहीं थे बल्कि यह एक जाति थी जिसका दक्षिण में एक विशाल राज्य था। बालि उसी राज्य का राजा था जिसने अपने भाई सुग्रीव को उसकी स्त्री छीनकर भगा दिया था। ये वानर भी सम्भवतया कोई वानर टोटेम मानने वाली जाति है जो या तो वानर का 'मास्क' मुँह पर लगाते होंगे या कोई इस तरह का चिह्न अपने पास रखते होंगे जिससे इनके टोटेम की पहचान रहे।

सुग्रीव के पास जाकर राम ने उससे मित्रता कर ली और उसके शत्रु बालि को मारने की प्रतिज्ञा कर ली, उसके बदले में सुग्रीव ने सीता को खोजने का संकल्प किया। अग्नि को साक्षी करके यह प्रतिज्ञा की गई। सुग्रीव ने बालि-वध के लिये राम के पराक्रम पर सन्देह किया, उसे दूर करने के लिये राम ने दुन्दुभि राक्षस के अस्थि-पञ्जर को अपने अंगूठे से दस योजन की दूरी पर फेंक दिया और एक साल के पेड़ का भी अपने बाण से भेदन कर दिया। सुग्रीव को अब राम के पौरुष पर विश्वास हो गया। वह राम के कहने से बालि से लड़ने गया। राम पेड़ के पीछे बालि को बाण मारने के लिये छिप गये। दोनों भाइयों का एक ही रूप देख उनमें बालि को नहीं पहचान कर राम ने बाण नहीं छोड़ा। सुग्रीव को बालि ने मार कर भगा दिया। उसने आकर राम से कहा—हे रामचन्द्र! आपने मुझसे तो बालि को ललकारने को कहा था और आप चुपचाप खड़े वैरी से मेरा घात करवाते रहे। यह क्या बात है? क्यों आपने मुझको पहले अपना पराक्रम दिखाया, जो आपको बालि को नहीं मारना था तो मुझसे पहले ही कह देते। मैं वहाँ नहीं जाता।

सुग्रीव के ये शब्द सुनकर राम ने कहा—हे मित्र! युद्ध में तुम और बालि एक ही स्वरूप के लगते थे मैंने इस शत्रुनाशक भयंकर बाण को इसलिये नहीं चलाया कि कहीं बालि के स्थान पर तुम्हारा वध न हो जाय नहीं तो हमारा तो मूल नाश हो जायगा। हे कपीश्वर! मेरे अज्ञान और जल्दी करने से जो कहीं तुम्हारा घात हो जाता तो मेरी मूढ़ता और लड़कपन लोक में विख्यात हो जाता। सुग्रीव! मैं, लक्ष्मण और सीता सब तुम्हारे अधीन हैं। मैं इस वन में तुम्हारी ही शरण में हूँ इसलिये अब तुम शंका छोड़कर फिर युद्ध करो और इसी मुहूर्त्त से संग्राम में तुम बालि को भूमि पर

छटपटाता देखोगे। परन्तु हे वानरेश्वर! तुम अपनी पहचान के लिये कोई चिह्न कर लो।

लक्ष्मण ने गजपुष्पी को उखाड़ कर सुग्रीव के गले में माला की तरह पहना दिया।

उपर्युक्त कथा 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार है जिसमें सुग्रीव राम के मित्र हैं और मित्रोचित ही व्यवहार दोनों करते हैं लेकिन 'मानस' में सुग्रीव नाम-मात्र के राम के मित्र हैं, और हैं भी तो अज्ञानवश, मोहवश प्रभु के असली रूप को न पहचान कर ही ऐसी गलती करते हैं, भला परब्रह्मस्वरूप राम का कौन मित्र हो सकता है उनका तो केवल भक्त हो सकता है और भक्ति से ही सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, इसी तरह जब राम के दर्शन पाकर सुग्रीव को ज्ञान प्राप्त हुआ तो वे कहने लगे :

> उपजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला॥
>
> सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई॥

क्यों?

> ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक॥
>
> *सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। माया कृत परमारथ नाहीं॥*

शत्रु, मित्र ये सब तो माया हैं। सुग्रीव अब भगवान् राम से एक वरदान माँगते हैं :

> अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

इस पर भगवान् श्री राम सुग्रीव की वैराग्य-युक्त वाणी सुनकर बोले :

> जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृषा न होई॥

इसके बाद जब सुग्रीव पिटकर राम के पास आता है तो 'मानस' में सुग्रीव राम को कोई उलाहना नहीं देता बल्कि इतना ही कहता है :

> *मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला॥*

इसमें राम भी सुग्रीव के सामने ऐसे दीन शब्द नहीं कहते कि हम तुम्हारे शरणागत हैं। राम भगवान् होकर इतने दीन स्वर में कैसे बोल सकते थे। उन्होंने तो सुग्रीव के शरीर को हाथ से स्पर्श करके वज्र के समान कर दिया और सुग्रीव की सारी पीड़ा भी इससे जाती रही।

'अध्यात्म रामायण' में भी सुग्रीव राम का भक्त ही है और पिटकर राम को कहता है—हे शरणागत वत्सल! आप इस तरह मेरा त्याग क्यों करते हैं, आप मेरी रक्षा कीजिये······।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में इसका संकेत-मात्र है, अन्य राम-कथाओं में सुग्रीव भक्त-रूप में ही मिलता है।

'वाल्मीकीय रामायण' तथा महाभारत' में ही राम के मानवीय रूप की विवेचना है और उसी के अनुसार उनका कार्यकलाप है। उसमें कथाकार ने अपनी तरफ से अलौकिक का आरोप करके कथा की स्वाभाविक गति को विकृत नहीं किया है और सुग्रीव को पारस्परिक स्वार्थों के अन्तर्गत राम का मित्र चित्रित किया है। इस कथन की पुष्टि इसके बाद के प्रसंग मे भी हो जायगी।

गजपुष्पी की माला पहनकर सुग्रीव फिर बालि से लड़ने गया। उसने महल के बाहर बालि को ललकारा। बालि यह सुनकर फौरन चलने को उद्यत हो गया। तारा ने बालि को रोका और कहा—हे वीर! नदी के वेग की तरह आये इस क्रोध को इसी तरह त्याग दो जैसे पलंग पर से सोकर उठा पुरुष रात को भोगी हुई पुष्पों की माला को त्याग देता है। यद्यपि तुम्हारा शत्रु तुमसे बलवान नहीं है लेकिन वह पराजित होकर भी दुबारा आया है इससे मुझे शंका होती है। अंगद वन की ओर गया था तो उसने देखा था कि अयोध्या के राजा दशरथ के वीर पुत्र राम, लक्ष्मण ने सुग्रीव से मित्रता कर ली है, वे उसकी सहायता कर रहे हैं। वे रामचन्द्र युद्ध मे दुर्जय हैं इसलिये तुम सुग्रीव को युवराज बनाकर राम से मित्रता कर लो।

तारा के ये वचन सुनकर भी बालि नहीं रुका। उसने कहा हे प्रिये! तुम चिन्ता न करो। रामचन्द्र धर्मज्ञ और कृतज्ञ होकर ऐसा पाप क्यों करेंगे। मैं अभी सुग्रीव का गर्व नष्ट करके वापस आता हूँ।

ऐसा कह कर बालि युद्ध-भूमि मे उतर आया। बालि और सुग्रीव मे भीषण युद्ध हुआ। सुग्रीव लोहूलुहान हो गया। जब राम ने सुग्रीव को अत्यन्त व्याकुल जाना तो सर्प के समान एक तीक्ष्ण बाण छोड़ा जो बालि के सीने को पार कर गया। बालि घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा।

'मानस' में तारा के बालि को मना करने का वर्णन नहीं है। 'अध्यात्म रामायण' में तारा बालि को युद्ध मे जाने से रोकती है और उपर्युक्त शब्द ही कहती है लेकिन उनमें राम के लिये भगवान् शब्द कहा गया है। बालि कहता है—हे प्रिये! मुझको कोई भय नही है। अगर सब के स्वामी राम-लक्ष्मण के साथ आये होंगे तो उनके साथ मेरा स्नेह होगा। राम तो साक्षात् नारायण ही हैं जिन्होने पृथ्वी का भार दूर करने के लिये ही अवतार धारण किया है उन परमात्मा राम को जिनका कोई न मित्र है न शत्रु है, मैं चरणारविंद में नमस्कार करके लिवा लाऊँगा। जो कोई उनको भजता है देवताओं के स्वामी वे राम भी उसको प्यार करते

जब घायल बालि के सामने राम गये

अनेकों कटु वचन

कहे। 'वाल्मीकीय रामायण' में बालि के

ही हैं।

बालि कहता है—हे राम!

यह राज्य-धर्म के

विरुद्ध आचरण किया।

। सब लोग तुम्हें

कुलीन, सत्वयुक्त, तेजस्वी, व्रतधारी, दयाशील, प्रजा के हित में तत्पर, दयालु, महोत्साही, उचित समय के जानने वाले और दृढ़व्रती कहते हैं। हे राजन ! दम, शम क्षमा, धर्म, धैर्य, सत्य, पराक्रम और अपराधियों को दण्ड देना, बस यही राजाओं के गुण हैं। तुम में इन गुणों को जानकर, तारा के रोकने पर भी मैं सुग्रीव से युद्ध करने आया। तुमको इस तरह से दूसरे से युद्ध करते हुए एक प्राणी को न्यायवश होकर नहीं मारना चाहिये था। अब मैं तुमको सज्जनों के वेश में अधर्म करने वाला, पापचारी और तृणों से ढके कूप के समान समझता हूँ। तुम छिपे हुए अग्नि के तुल्य पापी हो। मैं जानता हूँ कि तुम कपट धर्म से छिपे हुए हो। हे राम ! मैंने तो तुम्हारे राज्य का कभी नुकसान नहीं किया और न तुम्हारा अनादर किया।

हे रामचन्द्र ! राघव-कुल में जन्म लेकर और धर्मात्मा कहलाकर तुम ऐसा अपवित्र काम करने में क्यों तत्पर हुए। जब तक तुम ऐसे पाप-कर्म करते हो अपने पाप को धर्म के वेष में क्यों छिपाये रहते हो। तुम्हारी न तो धर्म में आस्था है और न अर्थ में बुद्धि स्थिर है, तुम केवल यथेष्टाचारी हो। भला यह तो कहो कि मुझ निरपराधी को मारकर सज्जनों की सभा में तुम क्या उत्तर दोगे ? वहाँ तुम कैसे मुख दिखाओगे ? देखो, राजघाती, ब्राह्मणघाती, गोघाती, चोर, हिंसा-तत्पर, नास्तिक और परिवेत्ता ये सब नरकगामी हैं। इनके अतिरिक्त सूचक, चुगलखोर, सूम, मित्रघाती, गुरुतल्पग, ये सब पापियों के लोक में जाते हैं।

हे काकुत्स्थ ! यद्यपि आप इस पृथ्वी के नाथ हो तथापि यह पृथ्वी एक तरह से स्वामिहीन ही है, जैसे कि अधर्मी पति के होते हुए भी शीलवती स्त्री अनाथ ही होती है। तुम तो धूर्त और अपकार में तत्पर, क्षुद्र और झूठी शान्ति के धारण करने वाले हो। महात्मा दशरथ के तुम पापात्मा कैसे पैदा हुए। तुमने चरित्र और धर्म के सारे बन्धन तोड़ दिये। इस प्रकार के अशुभ और अयोग्य कर्म के लिये सज्जनों में तुम क्या स्थान पाओगे ? हे राजपुत्र ! यदि तुम मेरे सामने आकर युद्ध करते तो अवश्य यमराज को देखते। हे राघव ! तुमने छिपकर मुझ पर क्यों वार किया। अगर तुम कहते तो मैं एक ही दिन में मैथिली को यहाँ ले आता और रावण का गला बाँध कर आपके सामने पटक देता। यह तो अच्छा है कि सुग्रीव राज्य पावेंगे लेकिन निरपराध की हत्या का तुम क्या उत्तर दोगे।

बालि के इन कटु वचनों को 'अध्यात्म रामायण' और 'मानस' में स्थान नहीं मिला है क्योंकि उनमें कथाकार कुछ तो मर्यादा के भय से कुछ राम के अलौकिक रूप के भय से यह शब्द बालि के मुख से कहलवा ही नहीं सकता था चाहे कथा की स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति में शिथिलता आ जाये।

'वाल्मीकीय रामायण' में उपर्युक्त बालि के वचनों से यह आभास नहीं होता बालि ने राम को भगवान् का अवतार समझ कर ये वचन कहे होंगे लेकिन इसमें

कहीं-कहीं राम के अलौकिक रूप का परिचय अवश्य मिलता है जैसे—हे काकुत्स्थ! तुम पृथ्वी के नाथ हो। वानरों का प्रतापी राजा बालि एक निर्वासित राजकुमार को ऐसा क्यों कहता जब तक कि उसका हृदय उनके अलौकिक रूप से प्रभावित नहीं होता और फिर इक्ष्वाकुवंशीय राम का राज्य तो एक सीमा के भीतर था, वह पृथ्वी का राजा क्यों होने लगा, और उसके समकक्षी एक राजा बालि अप्रत्यक्ष रूप में अपनी अधीनता स्वीकार करके राम को पृथ्वी का नाथ क्यों कहता।

इसके अलावा अन्य स्थानों पर बालि ने उन्हें मनुष्य तथा एक राजा समझ कर ही बातें की हैं जैसे— हे रामचन्द्र ! हम तो वनचारी मृग हैं, फल-मूल हमारा आहार है, तुम तो नगरवासी अन्नभोज नर हो। इसके अलावा पूरा प्रसंग ही यह स्पष्ट करता है जैसे एक राजा की दूसरे राजा से बिना दबाव के स्वतन्त्रतापूर्वक वार्त्ता हो रही हो। इस वार्त्ता में अनेक स्थानों पर बालि अपने को वानर कहता है अर्थात् पेड़ों पर उछलने-कूदने वाला पशु, जबकि दूसरी ओर उसे राजधर्म में प्रवीण प्रतापी राजा के रूप में चित्रित किया गया है, यह अंश इसमें पूरी तरह प्रक्षिप्त लगता है क्योंकि इस तरह का अन्तर्विरोध एक कथाकार की कलम से नहीं पैदा हो सकता था। बाद में अन्धविश्वास से जकड़ी हुई परम्परा का ही समावेश इस काव्य में सम्पादन करते समय हो गया मालूम होता है। क्या किष्किन्धा का राजा बालि अपने बारे में यह कहता ?

हे राम ! देखो, सज्जन लोग न मेरी निषिद्ध हड्डियों को काम में लाते हैं, न मेरे चर्म या बालों को पहनते हैं और न तुम्हारे ऐसे धर्मशील मेरे मांस का ही भक्षण करते हैं। पण्डित लोग तो मेरे चमड़े और हड्डियों को छूते तक नहीं। मेरा मांस तो अभक्ष्य है ही। मैं पांच नखों वाला जो हूं।

यह पूरा एक बन्दर (पशु) का वर्णन है। 'मानस' और 'अध्यात्म रामायण' ने तो इसी विश्वास को प्रश्रय दिया है और वानरयोनि को नीच और अधम माना है। सम्भवतया यह दृष्टिकोण इसी रूप में 'वाल्मीकीय रामायण' के सम्पादन-काल में भी आ चुका था तभी राम बालि को उत्तर देते हुए कहते हैं—हे वानर ! सज्जनों का धर्म अति सूक्ष्म है वह जाना नहीं जाता। तुम तो वानर की जाति, चंचल स्वभाव वाले ठहरे, अपने ऐसे अविदित बुद्धि वाले वानरों के साथ विचार करके तुम धर्म की उस सूक्ष्मता को कैसे जान सकते हो............मैंने तुम्हें युद्ध करके मारा तो और बिना युद्ध करके मारा तो इसमें हानि क्या है, क्योंकि तुम तो शाखा-मृग याने वानर हो।

ये सब परवर्ती क्षेपक है।

इसके अतिरिक्त राम ने सनातन धर्म का विवेचन करके बालि को दिया कि उसका वध अधार्मिक काम न था बल्कि राम-जैसे धर्म के रक्षक

तो उस दुराचारी का वध करना ही चाहिये था क्योंकि उसने पुत्रीवत् अपने छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री रुमा को पत्नी बना लिया था और सुग्रीव का राज्य छीन लिया था। भरत के राज्य का विस्तार भी बालि-वध में एक कारण राम अप्रत्यक्ष रूप में बताते हैं। बालि-वध के कारण बताने में कहीं तो राम ने सनातन धर्म की और कहीं राज्यधर्म की दुहाई दी है। इस कथन के अन्तर्गत राम के वास्तविक रूप पर हम राम के चरित्र की व्याख्या करते हुए विचार करेंगे। इतना अवश्य है कि इसमें राम अपने को एक मर्यादा की रक्षा करने वाला राजा कहता है, भगवान् नहीं।

'अध्यात्म रामायण' में भी छोटे भाई की स्त्री के अपहरण का दोष ही बालि के सिर पर है। जब बालि ने राम के धर्मयुक्त वचन सुने तो वह त्रासयुक्त होकर और राम को साक्षात् लक्ष्मी का पति जान कर कहने लगा — हे राम ! अब मैं जान गया हूँ कि आप साक्षात् परमेश्वर हो। आपका दर्शन तो योगियों को भी दुर्लभ है। मैं तो आप के बाण से मर रहा हूँ इसलिये अवश्य मेरा मोक्ष होगा।

इसमें बालि राम को परमात्मा समझकर उनके हाथ से मरना अपने लिये श्रेयस्कर समझता है। थोड़े कटु वचन बालि राम से अज्ञानवश होकर ही कहता है।

'रामचरित मानस' में भी लगभग 'अध्यात्म रामायण' का ही दृष्टिकोण है। उसमें तो बालि राम से कुछ कह ही नहीं पाता। राम की धर्म-अधर्म की व्याख्या सुनकर उसका मुँह बन्द हो गया और वह अपने हृदय में भगवान् राम के सामने अत्यंत द्रवित होकर बोला :

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥

इसके बाद राम ने बालि के सिर पर हाथ रख कर कहा :
हे बालि ! मैं तुम्हारे शरीर को अचल कर दूँ, तुम अपने प्राणों को रखो।
इस पर बालि ने कहा :

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि समगति अविनासी॥

ऐसे भगवान् राम के हाथ से मरकर मोक्ष न चाहने वाला ऐसा कौन मूर्ख होगा। इसके बाद बालि ने प्राण त्याग दिये और अपने पुत्र अंगद का हाथ राम के हाथ में थमा दिया।

'वाल्मीकीय रामायण' में बालि की मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन नहीं है, और न इसमें रामचन्द्र बालि से फिर जीवित रहने की बात कहते हैं। वे तो केवल यह कहते हैं—हे नर श्रेष्ठ ! अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो क्योंकि हमने बहुत अच्छी तरह से धर्म-शास्त्र द्वारा विचार कर लिया था और दण्ड देने योग्य को दण्ड दिया

है और जो दण्ड देता है व पाता है वे दोनों कार्य-कारण से कृतार्थ होते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता। इसलिए दण्ड के संयोग से तुम इस पाप से छूट गये हो और दण्ड द्वारा अपनी धर्म-युक्त प्रकृति को प्राप्त हुए। अब तुम शोक, मोह और हृदय के भय को छोड़ दो क्योंकि पाप दूर करने के इस विधान को उल्लंघन करने में तुम समर्थ नहीं हो। अंगद के बारे में तुम चिन्ता छोड़ दो।

इसमें नैतिकता के नियम की व्याख्या है, न कि अलौकिक रूप में अवतारवाद की प्रतिष्ठा। इसमें तर्क द्वारा मर्यादा तथा सनातन धर्म की रक्षा है। अन्य रामायणों में श्रद्धा के बल पर आत्मसमर्पण ही सन्तोष का माध्यम है। वाल्मीकीय और तुलसी में मोटे रूप से यही स्पष्ट अन्तर है।

जब बालि की मृत्यु का समाचार तारा को मिला तो वह अपने पुत्र को साथ लिए युद्ध-स्थल में आई और बालि के शव को पड़ा देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। बालि की मृत्यु होते ही वानरों के यूथ डर कर इधर-उधर भाग रहे थे। तारा ने सबको रोका और कहा—क्या राज्य के लिए निर्दयी भ्राता ने राम से अपने भाई को मरवा डाला?

तारा के ये वचन सुनकर वानर कहने लगे—हे रानी! अपने पुत्र को लेकर चली जाओ और अंगद का राज्याभिषेक कर दो। हम युवराज की रक्षा करेंगे।

लेकिन तारा को अब कुछ नहीं चाहिये था। वह 'आर्य पुत्र' [1] कहकर मृत्यु के बंधन से बँधे अपने पति को पुकारने लगी। उसने बालि के शव पर अनेक तरह से विलाप किया। तारा का यह विलाप बड़ा हृदयविदारक है, वह कहती है—हे संग्राम-कर्कश वानर वीर! तुम इस समय मुझे अपराधिनी क्यों मानते हो, तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं? हे वानर श्रेष्ठ! उठो और पलंग पर सोओ, तुम जैसे पराक्रमी राजा धरती पर नहीं सोते। हे वीर! मैं जानती हूँ कि तुमको पृथ्वी अत्यन्त प्यारी है तभी प्राण-हीन होकर मुझे छोड़कर तुम सो रहे हो। हा! महायूथपतियों के यूथपति! तुम्हारे मरने से मैं आनन्द और आशा से रहित होकर शोक-समुद्र में डूब गई। हा! मेरा हृदय बड़ा कठोर है जो तुम्हे भूमि पर गिरा देखकर भी शोक से सतप्त होकर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता। देखो, दूसरे से युद्ध करने में तल्लीन बालि को अनुचित रीति से मारकर रामचन्द्र सन्ताप नहीं करते। इस प्रकार का निन्दित कर्म करके उनको

---

१. बालि के लिए 'आर्यपुत्र' का सम्बोधन परवर्ती जोड़ मालूम होता है क्योंकि वानर-जाति अनार्य जाति थी अतः अनार्य जाति के राजा को आर्यपुत्र कैसे पुकारा जा सकता था। हो सकता है आर्य का मतलब श्रेष्ठ लेकर ही बालि को इस तरह पुकारा गया हो, दूसरी जगह बालि को बन्दर बताया गया है, यह अन्तर्विरोध विचारणीय है।

अवश्य ग्लानि और पश्चात्ताप करना था। हा ! अब तक मैं अदीन थी सो दीन हुई और सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त थी सो विधवा होकर शोक और सन्ताप को भोगूँगी। अब इन दुलारे और वीर सुकुमार अंगद की क्या दशा होगी। हे पुत्र ! धर्मवत्सल पिता को देख लो फिर इनके दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे। हे प्रिय ! इस पुत्र को उत्साह दो क्योंकि तुम प्रवास के लिये तैयार हो।

हे सुग्रीव ! अब तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया, सुख और शान्ति से निश्चिन्त राज्य भोगो और अपनी रुमा को प्राप्त करो। अब तुम्हारा शत्रु-रूप भाई मारा गया है।

हे वानरेश्वर ! देखो ये तुम्हारी अन्य भार्याएँ तुमको घेरे खड़ी हैं। मैं तुम्हारी प्यारी स्त्री विलाप कर रही हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नहीं।

इस प्रकार करुणा करके रोती हुई तारा को देखकर सब वानरियाँ अंगद को लेकर इस प्रकार रो उठीं जैसे कोई अवरुद्ध स्रोत एक-साथ वेग से बह निकलता है, इस प्रकार उनके नेत्रों से आँसू टपकने लगे। यह देखकर वहाँ का पूरा वातावरण क्षुब्ध हो गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया सिर्फ रोने-चीखने की आवाज सहसा उस सन्नाटे में बज उठती और सिसकती हुई समाप्त हो जाती।

इसी बीच हनुमान तारा को समझाने लगा—हे देवि ! तुम इतनी दीन क्यों होती हो। अपने पाप और पुण्यों का फल तो प्रत्येक प्राणी को इस संसार में उठाना पड़ता है। भला, समझो तो सही, इस पानी के बुलबुले के तुल्य देह में किसको किसके निमित्त पश्चात्ताप करना चाहिये। तुम तो जानती हो प्राणियों का जन्म और मरण नियत है। अब तुम कुमार अंगद की ओर देखो, बालि नीति द्वारा राज्य का शासन करता तथा सामदान और क्षमा में तत्पर था इसलिए उसको वह स्थान मिला जो धर्म से प्राप्त किया जाता है, अतएव तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। ये वानर लोग, तुम्हारा बेटा अंगद और बालि का राज्य तुम्हारे ही अधीन है। हे भामिनि ! तुम इन दोनों को आज्ञा दो, तुम्हारी देख-रेख में अंगद इस पृथ्वी का शासन करेगा। इस-लिए अब तुम वानरराज का अंतिम संस्कार करो और अंगद का राज्याभिषेक भी। अपने पुत्र को राज्यासीन देखकर तुम्हारे चित्त का उद्वेग कम हो जायेगा।

तारा कहने लगी—अंगद के तुल्य मेरा पुत्र एक ओर है और इन मरे हुए वानर-राज का आलिंगन एक ओर। न इस राज्य पर मेरा अधिकार है और न अंगद को राज्य देने में मैं समर्थ हूँ। अंगद के चाचा सुग्रीव ही अब कार्यों के अधिष्ठाता होंगे। मेरे लिये तो इस लोक में और परलोक में इस मृत वानरराज के आश्रय के सिवा और कुछ नहीं है।

यद्यपि बालि इस समय मृतप्राय था लेकिन उसकी प्राणवायु अब तक धीरे-धीरे चल रही थी। उसने अन्तिम बार आँखें खोलकर सुग्रीव से कहा—हे तात !

तुम मुझे दोष न देना क्योंकि मैं पाप के कारण इस बुद्धि के मोह से खींचा गया हूँ। अब तुम भूमि पर पड़े इस रोते हुए अंगद की ओर देखो और इसको अपना पुत्र ही समझकर इसका पालन करो। यह तुम्हारे ही तुल्य पराक्रमी है और तुम्हारे आगे होकर लड़ेगा। सुषेण की पुत्री यह तारा राजनीति में बड़ी चतुर है, इसलिए इसकी मन्त्रणा पर कभी सन्देह न करना। रामचन्द्र का काम शंका-रहित होकर करना।

फिर उसने अपने पुत्र अंगद को नीति-शिक्षा दी और कुछ क्षण पश्चात् ही इस संसार से सदा के लिए चला गया।

उस समय जितने वानर वहाँ थे सब रो उठे। बालि की वीरता के कार्यों को याद करके उनके आँसू नहीं रुकते थे। तारा भी अपने मृत पति का सिर सूँघती हुई रो उठी।

इस तरह के क्षुब्ध वातावरण को देखकर सुग्रीव का हृदय रो उठा। वह राम के पास जाकर बोला—हे नरेन्द्र ! जैसी आपने प्रतिज्ञा की थी वैसा काम किया, परन्तु अब मेरा मन इन भोगों से हट गया है। अपने इस नष्ट जीवन से मैं सुख की कुछ आशा नहीं करता। हे रामचन्द्र ! देखिये यह पटरानी कैसे रो रही है, राजा मारा गया, यह अंगद भी शंकित है, प्रजा भी दुःखी है इसलिए राज्य में मेरा मन नहीं लगता। हे इक्ष्वाकु-श्रेष्ठ ! क्रोध से या डाह से अथवा अत्यन्त अपमान होने से मेरा मन भाई के मारने के लिये पहले उद्यत हुआ था परन्तु अब इसके मारे जाने पर मैं अत्यन्त दुःखी हो रहा हूँ। मैं उसी ऋष्यमूक पर्वत पर रहकर अपनी जीविका का निर्वाह करना ठीक समझता हूँ। भाई का घात करके मुझे स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहिये। बालि धर्मात्मा था। हे राम ! भाई कितना भी लोभी क्यों न हो पर क्या वह ऐसे महागुणी भाई के वध को चाहेगा ? मेरी बुद्धि ऐसी दुष्ट हो गई कि मैंने छल से उसे मरवा दिया जिसने मुझे कई बार मारने से छोड़ दिया।

हे रघुवर ! भाई के वध से मैं ऐसे पाप में पड़ा जो विचार करने योग्य भी नहीं है उस पाप का परित्याग करना ही श्रेष्ठ था। विश्वरूप के मारने से इन्द्र को जैसा महापाप लगा था वैसा ही यह मुझे लगा है। हे राघव ! यह पाप अधर्मयुक्त और कुल का नाशक है, इसको करके मैं प्रजा से आदर पाने के योग्य नहीं। राज्य की तो क्या मुझमें यौवराज्य पाने की भी योग्यता नहीं है।

हे रामचन्द्र ! इस समय मैंने यह क्षुद्र, निन्दित और लोकापकारी काम किया है। इस समय मुझे यह शोक इस तरह सता रहा है, जैसे, वृष्टि के जल का वेग नीची भूमि को डुबाता है। देखिये, यह पापरूपी मतवाला हाथी मेरा घात कर रहा है ! हे सहोदर ! मुझे बड़ा खेद है कि इस पाप ने मेरे हृदय के साधु भाव को समूचा नष्ट कर डाला। मेरे कारण अंगद के शोक-सन्ताप से इन वानर-सेनापतियों के कुल का आधा जीवन रह गया।

हे वीर ! क्या कोई ऐसा देश नहीं जहाँ भाई से फिर *मिलन हो सके। पिता* के मरने से अंगद के जीने में संदेह है, उसकी माता भी इस पर जीवित नहीं रह सकती। अपने भाई और उसके पुत्र के साथ मैत्री की इच्छा करके मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा। ये बड़े-बड़े वानर मेरी आज्ञा से सीता को ढूंढ़ेंगे। हे रामचन्द्र ! मेरे मर जाने पर भी आपका कार्य अधूरा नहीं रहेगा।

सुग्रीव के ऐसे दीन शब्द सुनकर रामचन्द्र उदास हो गये। उधर रोती हुई *तारा* राम के पास आकर बोली—हे *राघव ! तुम* अप्रमेय, दुराधर्ष, जितेन्द्रिय, उत्तम *धर्मधारी, यशस्वी,* चतुर और क्षमावान हो। हे वीर ! जिस बाण से तुमने मेरे पति को मारा उसी से मुझे मारिये, मेरे *बिना वालि को स्वर्ग में भी आनन्द प्राप्त न* होगा। आप तो स्त्री के वियोग-दुःख को जानते *हो इसलिए आप इस बात के तत्व* पर विचार करके मुझे मारिये। हे महात्मन् ! इससे आपको स्त्री-घात का दोषी न होना पड़ेगा क्योंकि तारा भी वालि की आत्मा का एक अंश है, वेद और शास्त्रों ने भी पति और पत्नी की एक आत्मा मानी है। देखिये, स्त्रीदान के बराबर दूसरा दान नहीं है इसलिए आप भी मुझे मारकर मेरे प्यारे पति को समर्पण करें। मुझे इस दुःखी दशा से हटाने के लिए अवश्य मारिये। मैं बालि के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती।

तारा के चुभने वाले ये करुण शब्द सुनकर राम से जवाब नहीं बन पड़ा। उनका हृदय भी इस असहाय स्त्री के विलाप से रो उठा था। उन्होंने विधाता के विधान का संबल पकड़ कर तारा को शान्त किया। राम ने सबको कर्म और कर्त्ता की दार्शनिक विचारधारा, तथा ईश्वर-रचित व्यवस्था के रहस्य को समझाया। इसके पश्चात् सुग्रीव ने अंगद के साथ मृत भाई की अंतिम क्रिया की। आगे-आगे बहुत से वानर नाना प्रकार के रत्न बिखेरते जाते थे, पीछे रत्नों से लदी हुई पालकी आ रही थी। एक विशाल चिता पर बालि को रख दिया गया और आग लगा दी गई। अब तो सभी जोर से रो उठे। तारा पागल की भाँति चिल्लाई—हे *प्राणनाथ ! देखो, यह काल-रूप राम तुमको खींचे ले जा रहा है, इसने एक ही बाण से हम सब वानरियों को विधवा कर दिया।* तुम्हारी पत्नी वानरियाँ इतनी दूर पैदल चलकर आई हैं, इनको तुम क्यों नहीं देखते।

इस तरह वालि का अन्त हुआ और सुग्रीव किष्किन्धा का राजा हुआ।

'अध्यात्म रामायण' में तारा अपने पति के शव पर रोती हुई राम से कटु वचन कहती है कि हे राम ! जिस बाण से आपने मेरे पति को मारा है उससे मुझे भी मारिये। इससे आगे भी तीन-चार वाक्यों में वह अपनी व्यथा को कहती है लेकिन इसमें वह हृदयविदारक दृश्य तारा के विलाप से प्रस्तुत नहीं होता जैसा 'वाल्मीकीय-रामायण' में। इसमें तो सम्भवतया प्रसंगानुकूल कथा के मूल सूत्र को परम्परावश

जीवित रखने का प्रयत्न किया गया है। तारा की करुण-भावना की अभिव्यक्ति इसमें नहीं है बल्कि ऐसा लगता है कि अज्ञानवश या मोहवश ही तारा मर्यादा के बाहर ये शब्द बोल जाती है जिस पर राम उसको तत्वज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं—हे भीरु स्त्री ! जिसके लिए शोक नहीं करना चाहिए उस अपने मृत पति के लिए तू वृथा क्यों शोक करती है। तू विचार कर, इसे पति—तू देह को पति मानती है। पृथ्वी, जल, तेज, पवन और आकाश इन पाँच महाभूतों से मिलकर देह बनता है जिसमें खाल, माँस, रुधिर, हाड़ और मल आदि पदार्थ भरे हुए हैं, इसलिये यह निद्य है। काल, पुण्य, पापादिक कर्म और सत्वादिक गुण इससे उत्पन्न हुए हैं इसलिए नाशवान हैं। यह देह देखते-देखते पानी के बबूले की तरह विलीन हो जाता है। इस-तरह के नाशवान देह को पड़े देखकर तू शोक क्यों करती है।

यदि तू जीव ही को पति मानती है तो जीव तो अमर है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न खड़ा होता है, न चलता है, न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है। वह सबमें है, अविनाशी है और अद्वितीय है। वह आकाश के समान निर्लिप्त, नित्य और ज्ञान-स्वरूप है, शुद्ध है, इसलिए इस पर शोक करना व्यर्थ है।

यह सुनकर तारा अपना दुःख तो भूल गई और कौतूहलवश तत्व-ज्ञान-संबंधी प्रश्न पूछने लगी—हे राम ! यह देह तो काष्ठ के समान जड़ है और जीव नित्य चित्त-रूप है तो सुख-दुःखादि का सम्बन्ध किसको होता है ?

राम ने कहा—जब तक देह और इन्द्रियों का सम्बन्ध अहंकार से है तब तक आत्मा विवेकरहित होकर संसार में जन्म-मरण के बन्धन में बँधा रहता है। इस प्रकार अन्य के अविवेक से आरोपित यह संसार अत्यन्त झूठा है जो अपने-आप ही निवृत्त नहीं होता। अनादि काल की अविद्या से उत्पन्न अहंकार से ही यह झूठा संसार राग-द्वेष आदि दोषों को प्राप्त करता है।

हे तारा ! मन ही संसार का कारण है और बन्धन कराने वाला है। यह जीव मन से एकता प्राप्त करके इसके बंधनों को स्वयं अपना लेता है। आत्मा मन को ग्रहण करके उससे उत्पन्न विषयों का सेवन करता है और विषय-सम्बन्धी रागद्वेषादिकों से बँधकर इस संसार में रहता है। पहले मन राग-द्वेष आदि गुणों की स्थापना करता है, फिर कर्मों की रचना करता है जिनमें शुक्ल, लोहित और कृष्ण तीन तरह के कर्म होते हैं। शुक्ल कर्म की गति ब्रह्मलोक, लोहित कर्म की गति स्वर्ग और कृष्णकर्म की गति नरक है। इन गतियों में प्रलयकाल-पर्यंत जीव भ्रमण करता है। इस तरह अविद्या-रूपी यंत्र में बँधे हुए ये जीव पूर्व-वासना के फल से ही जन्मते और मरते हैं। मुक्ति उसीकी होती है जो मेरे भक्तों के संग विचरण करता है, जो मुझे परमात्मा-स्वरूप समझता है, जो मेरी कथा श्रवण करता है। जब मेरे स्वरूप का ज्ञान मनुष्य कोहो जाता है तो वह मन, इन्द्रिय और अहंकार से पृथक् होकर सत्य, आनन्द और

द्वंतरहित आत्म-स्वरूप हो जाता है, तभी उसको संसार के बन्धन से मुक्ति मिलती है, उसको संसार के दुःख कभी स्पर्श नहीं करते।

इसलिए हे तारा! मेरे कहे हुए इस ज्ञान पर विचार करके शोक मत कर

यह सुनकर तारा ने देहाभिमान से उत्पन्न हुए शोक को त्याग दिया और वह अनेक प्रकार से भगवान् राम की स्तुति करने लगी। सुग्रीव भी रामचन्द्र के कहे हुए तत्वज्ञान को सुनकर सम्पूर्ण अज्ञान को त्यागकर स्वस्थ हो गया। यहाँ सुग्रीव 'वाल्मीकीय रामायण' की तरह क्षुब्ध होकर अपने मन में सन्ताप नहीं करता और न तारा ही अन्त में राम को अपने पति के वध का दोषी ठहराती है। वानर तथा वानरियाँ भी वालि के वध पर उद्विग्न होकर यहाँ रोती नहीं दीखतीं। देखा जाय तो 'अध्यात्म-रामायण' में पूरा वातावरण एक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चेतना से अन्तर्भूत है जिसमें स्वाभाविक भावोद्रेक नहीं है।

'रामचरित मानस' में तारा राम से कोई कटु वचन नहीं कहती। वह विलाप करती हुई अपने पति के शव के पास आती है। तब उसको व्याकुल देखकर राम उसको तत्वज्ञान का उपदेश देते हैं:

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

यह सुनकर तारा का अज्ञान नष्ट हो गया। तुलसीदास जी कहते हैं:

उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

यहाँ तारा राम की भक्त बन जाती है। इसमें भी तुलसी का दृष्टिकोण प्रसंग की स्वाभाविक भावगति को रोककर खड़ा हो गया है। इसमें तो वालि की मृत्यु पर वातावरण को बिलकुल क्षुब्ध दिखाया ही नहीं गया है, शायद धर्मात्मा भगवान् राम द्वारा एक पापी के वध पर इस तरह का वातावरण प्रकट करके तुलसी की मर्यादा का उल्लंघन हो जाता। कुछ भी हो जहाँ एक ओर 'वाल्मीकीय रामायण' में काव्य की महानता है, कथा की व्यापक भावात्मकता है वहाँ 'अध्यात्म रामायण' में दार्शनिकता के दबाव में कथा की घुटन और 'रामचरित मानस' में भक्ति की दीवार के सामने कथा की स्वाभाविक भावाभिव्यक्ति में गतिरोध मिलता है।

इनके अलावा अन्य रामकथाओं में ये संवाद इतने विस्तार के साथ नहीं मिलता इसलिये उन्हें हम यहाँ तुलनात्मक अध्ययन के लिये उपस्थित नहीं कर सकते। इतना अवश्य है कि उनका थोड़ा बहुत जो भी स्वरूप है वह भक्ति तथा आध्यात्मिकता से ही प्रभावित है।

'जैन पद्मपुराण' में भी सुग्रीव और वालि का वर्णन है लेकिन उसमें प्रसंग ठीक

यह नहीं है जो उपयुक्त राम-कथाओं में मिलता है, बल्कि एक भिन्न रूप में थोड़ा साम्य उसमें मिलता है। कथा इस प्रकार है :

खरदूषण को मारकर राम ने विराधत को उसके राज्य का अधिकारी बना दिया। वे स्वयं भी लक्ष्मण के साथ वहीं रहे। उसी बीच सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धापुर मे एक घटना हुई। सुग्रीव का रूप बनाकर एक विद्याधर ने सुग्रीव के नगर में आया। वह सुग्रीव के राज्य और उसकी स्त्री को छीनना चाहता था, उसीसे त्रस्त होकर सुग्रीव खरदूषण के राज्य पाताल-लंका में आया लेकिन वहाँ खरदूषण की सेना को मरा हुआ पड़ा देखकर वह एक व्यक्ति से पूछने लगा कि यह सब क्या है ? उस व्यक्ति ने सुग्रीव को खरदूषण के वध का सारा समाचार कह सुनाया। सुग्रीव यह सुनकर चिन्तित हो गया क्योंकि ऐसे कठिन समय में खरदूषण के बिना उसकी कौन मदद कर सकता था। वह हनुमान के पास गया, हनुमान यह देखकर कि सुग्रीव तो किष्किन्धापुरी मे है यह कोई मायावी है, पीछे हटकर चला गया। सुग्रीव रावण से मदद लेने का विचार करने लगा लेकिन उसको भय था कि कही वह कामांध मेरी स्त्री को स्वयं नहीं छीन ले। अपने को सब तरह असहाय पाकर उसने विराधत के पास एक दूत भेजा। विराधत यह जानकर बहुत प्रसन्न हुआ कि वानरों का राजा सुग्रीव उससे मित्रता करने आया है।

जब सुग्रीव आया तो वाद्यो का घोर निनाद हुआ। लोग व्याकुल हो गये तो लक्ष्मण ने कौतूहलवश पूछा—यह क्या है ?

अनुराधा का पुत्र विराधत कहने लगा—हे नाथ ! यह वानरवंशियों का अधिपति प्रेम से भरा हुआ आपके निकट आया है। किष्किन्धापुर के राजा सूर्यरज के दो पुत्र हैं, बड़ा बालि और छोटा सुग्रीव हैं। बालि ने रावण को सिर नही नवाया। वह सुग्रीव को राज्य देकर वैरागी हो गया। सुग्रीव निष्कटक राज्य करने लगा। उसके सुतारा नाम की स्त्री थी जिसके अगद नाम का पुत्र था। वह सर्वगुणसम्पन्न है जिसकी कीर्त्ति पृथ्वी पर फैल रही है।

यह बात विराधत कह ही रहा था कि सुग्रीव राम से मिलने आया। राम अत्यन्त हर्षित हुए। बैठने के पश्चात् सुग्रीव के साथ वाले एक वृद्ध विद्याधर राम से बोले—हे देव ! यह राजा सुग्रीव किष्किन्धापुर का अधिपति, महाबली, गुणवान और लोकप्रिय है, कोई एक दुष्ट विद्याधर इनका रूप बनाकर इनकी स्त्री और राज्य को छीनना चाहता है।

यह सुनकर राम अत्यन्त दु:खी हुए और सोचने लगे कि यह मुझसे भी अधिक दु:खी है। इसके होते ही दूसरा पुरुष इसके घर में घुस आया है, यह वैभवशाली राजा है लेकिन इसको शत्रु से बचाने में कोई समर्थ नहीं है।

लक्ष्मण ने मन्त्री जामवन्त से सारा वृत्तान्त पूछा। जामवन्त अति विनययुक्त होकर कहने लगा—हे नाथ ! वह पापी सुतारा के रूप पर मोहित हो गया और सुग्रीव का रूप बनाकर राजमन्दिर में आया। जब वह सुतारा के महल में गया तो पतिव्रता रानी ने अपनी सेविकाओं से कहा—यह कोई दुष्ट विद्याधर· विद्या से मेरे पति का रूप बनाकर आया है, इसका आदर-सत्कार कोई मत करो।

वह पापी सीधा जाकर सुग्रीव के सिंहासन पर बैठ गया, उसी समय सुग्रीव भी आया और राजमन्दिर में उसने लोगों को विषादयुक्त पाया। वह इसके बारे में अनेक कारणों का अनुमान लगाने लगा, लेकिन जब वह रानी के पास गया तो वहाँ स्त्रियों के बीच में उस दुष्ट विद्याधर को बैठे देखा। यह देखकर सुग्रीव के नेत्र क्रोध से जल उठे। वह मेघ की तरह एक साथ महल में गर्ज उठा जिससे हाथी भी विह्वल हो गये। काम से पीड़ित हुआ वह विद्याधर सुग्रीव से लड़ने आया। इनका पुत्र अंगद तो इनकी ओर, हम सब मन्त्री भी इनकी ओर और सात अक्षोहिणी सेना इनकी ओर और उतनी ही उसकी ओर। नगर के दक्षिण भाग से वह आया और उत्तर भाग से यह आया। बालि का पुत्र चन्द्ररश्मि सुतारा की रक्षा कर रहा है।

स्त्री के विरह से पीड़ित सुग्रीव खरदूषण के पास सहायता के लिये गया लेकिन उसे तो आपने पहले ही मार दिया था। इसके बाद यह पवन-पुत्र हनुमान के पास गया, वह महाबली हनुमान अपने मन्त्रियों के साथ अप्रतिघात नामक विमान में बैठकर आया और रण-भूमि में क्रोध से गरजा। वह मायामयी सुग्रीव हाथी पर चढ़कर लड़ने के लिये चल दिया। दोनों सुग्रीवों का एक रूप देखकर हनुमान चक्कर में आ गया कि किसको मारूँ। कुछ देर तक अपने मन्त्रियों से विचार करके उदासीन होकर हनुमान अपने नगर को वापिस चला गया। यह सुनकर सुग्रीव और भी व्याकुल हुआ और अब स्त्री-वियोग के दावानल से तप्त होकर यह आपके शरण में आया है, हे कृपालु ! इस व्यथित सुग्रीव का कष्ट निवारण करो।

जामवन्त के ये शब्द सुनकर राम लक्ष्मण और विराधन से कहने लगे—पर-स्त्री के हरण करने वाले पापियों को धिक्कार है। मेरा और इसका दुःख समान है। यह मेरा मित्र होगा। मैं पहले इसका उपकार करूँगा पीछे यह मेरा उपकार करेगा। नहीं तो मैं निर्ग्रंथ मुनि होकर मोक्ष-साधना करूँगा।

ऐसा विचार कर राम ने सुग्रीव से कहा—हे सुग्रीव ! मैंने तुझे अपना मित्र बनाया है। जो दुष्ट विद्याधर तुम्हारा रूप बनाकर तुम्हारे नगर में आया है उसे मार कर मैं तुम्हें निष्कंटक राज्य दूँगा। तेरी स्त्री को तुझसे अवश्य मिला दूँगा। अब तेरा काम हो जाय तो तू सीता का पता लगाना।

सुग्रीव ने चित्त में अति प्रसन्न होते हुए कहा—हे प्रभो ! मेरा कार्य हो जाने के बाद सात दिन में यदि सीता का पता न लगाऊँ तो अग्नि में प्रवेश करूँगा।

यह सुनकर राम चित्त में अत्यन्त प्रफुल्लित हो गये। जिनराज के मन्दिर में राम और सुग्रीव परस्पर मित्र हो गये और उन्होंने एक-दूसरे के साथ द्रोह न करने की प्रतिज्ञा कर ली।

राम और लक्ष्मण रथ पर चढ़कर अनेक सामन्तों तथा सैन्य के साथ किष्किन्धापुर आये और नगर के बाहर डेरा डाल दिया। सुग्रीव ने मायामयी सुग्रीव के पास दूत भेजा। वह रथ पर बैठ एक विशाल सेना लेकर नगर के बाहर आया। दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध होते-होते अन्धकार हो गया, मायामयी सुग्रीव ने सच्चे सुग्रीव को गदा मारी, वह गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। परिवार के लोग उसे डेरे में ले आये। सचेत होकर वह राम से कहने लगा—आपने हाथ में आये हुए मेरे चोर को वापस नगर में क्यों जाने दिया। मगर रामचन्द्र की शरण आकर भी मेरा दुःख नहीं मिटा तो और क्या आसरा है।

इस पर राम ने कहा—तेरा और उसका रूप देखकर मैंने कुछ भेद नहीं जाना इसलिये इस भय से कि कहीं तू न मारा जाय मैंने तेरे शत्रु को नहीं मारा।

इसके पश्चात् राम ने मायामयी सुग्रीव को युद्ध के लिये बुलाया। वह बलवान् क्रोध से जलता हुआ राम के सामने आ डटा। लक्ष्मण ने सच्चे सुग्रीव को पकड़ रखा था और राम को देखते ही मायामयी सुग्रीव के शरीर से वैताली विद्या निकल गई। उसी समय सुग्रीव का रूप दूर हो गया और अब वह विद्याधर अपने असली स्वरूप में प्रगट हो गया। उसी समय जो वानरों की सेना उसकी ओर से लड़ रही थी उसके विरुद्ध हो गई। राम ने उसी समय उस विद्याधर पर बाणों की वर्षा कर दी जिससे उसका अंग-प्रत्यंग छिद गया और वह अधर्मी विद्याधर प्राणरहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सुग्रीव राम-लक्ष्मण की स्तुति करके उन्हें अपने नगर में लाया। उसकी स्त्री सुतारा बहुत दिन के बाद उसे मिल गई। नन्दनवन की शोभा से भी अधिक शोभा वाले आनन्द नामक वन में उसने राम को ठहरा दिया जहां महामनोज्ञ श्री चन्द्र प्रभु का चैत्यालय था। वहां राम और लक्ष्मण ने भगवान् की पूजा की। विराधत की सेना भी वहीं ठहर गई।

रामचन्द्र की यह वीरता देखकर सुग्रीव की तेरह पुत्री उनसे बहुत प्रेम करने लगीं। उनके नाम है :

(१) चन्द्राभा	(५) सुन्दरी
(२) हृदयावली	(६) सुरवती
(३) अनुबरी	(७) मनोवाहिनी
(४) श्रीकान्ता	(८) चारुश्री

(९) मदनोत्सवा (१२) जिनपति
(१०) गुणवती (१३) हृदयधर्मा
(११) पद्मावती

अपनी इन त्रयोदश कन्याओं को लेकर सुग्रीव राम के पास आया और कहने लगा—हे नाथ ! ये कन्यायें आपको वरण करना चाहती हैं, इसलिये हे लोकेश ! आप इनके पति होइये। ये जन्म से ही आपकी इच्छा करती थीं। इसलिये इन्होंने विद्याधरों से विवाह नहीं किया। आपके गुण श्रवण करके ये अब आपकी ही हो गई हैं।

यह कहकर सुग्रीव ने उनका पाणिग्रहण संस्कार राम के साथ कर दिया।

(जैन पद्मपुराण, ४७ वाँ सर्ग)

इस कथा के अन्तर्गत बालि की मृत्यु का वर्णन नहीं आता है बल्कि वह तो वैरागी दिखाया गया है, इसके अलावा इसमें सुतारा सुग्रीव की स्त्री है और अंगद उसका पुत्र। अन्य कथाओं में बालि और सुग्रीव के रूप में साम्य दिखाया गया है यहाँ एक विद्याधर के मायामयी रूप का वर्णन है। दोनों कथाओं में कुछ साम्य है लेकिन राम के साथ सुग्रीव की तेरह कन्याओं के पाणिग्रहण का वर्णन नहीं है। हनुमान भी जैन-कथा में एक स्वतंत्र राजा है, अन्य कथाओं में वह सुग्रीव का सेवक है। जैन-कथा में बालि के पुत्र का नाम चन्द्ररश्मि है।

× × ×

जैन-रामकथा को छोड़ अन्य कथाओं से यह विदित होता है कि बालि-वध का कारण राम और सुग्रीव की मैत्री थी जिसमें राम का स्वार्थ सीता की खोज कराना था और सुग्रीव का स्वार्थ भाई से बदला लेकर राज्य वापस लेना। राम का विचार यह भी होगा कि सुग्रीव किष्किन्धा का राजा होकर सीता को खोजने में अधिक मदद कर सकेगा क्योंकि बालि से मदद मिलने का कोई आधार नहीं था। कुछ लोगों का यह भी मत है कि बालि ने अग्नि को साक्षी करके रावण से मित्रता की थी इसलिये रावण पर चढ़ाई करने से पहले राम को बालि से टक्कर लेनी पड़ती, जो वानरों के एक साम्राज्य से टक्कर होती, यह सोचकर राम ने सुग्रीव से मित्रता करके इस रोड़े को हटा दिया और दक्षिण का रास्ता अपने लिये तथा अन्य आर्यों के लिये साफ कर दिया। यह मत किसी अंश तक ठीक हो सकता है लेकिन इसमें भी सन्देह के कारण हैं क्योंकि जब बालि राम के बाण से धराशायी हो जाता है तब राम से कहता है—हे राम ! तुमने मुझे इतने छल से क्यों मारा ? क्या इसलिये कि सुग्रीव से मित्रता करके सीता की खोज अच्छी तरह कर पाओगे। तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ? मैं एक दिन में ही वैदेही को रावण से छीन लाता और उस रावण को बांध लाता। परन्तु यह

नहीं कहा जा सकता कि 'वाल्मीकीय रामायण' के बालि-राम संवाद में अन्य क्षेपकों की तरह यह भी क्षेपक न हो क्योंकि अपने वध करने वाले शत्रु के सामने बालि जैसे पराक्रमी वीर को ऐसे दीन वचन बोलना कहाँ तक उचित हो सकता है और अगर वह ठीक भी है तो क्या राम यह पहले जानते थे कि बालि भी रावण का विरोध कर सीता को ला सकेगा। उन्होंने तो यही सोचा होगा कि बालि रावण का मित्र है इसलिये हर स्थिति मे उसके साथ रहेगा। सुग्रीव अपने स्वार्थ के कारण बालि का शत्रु है इसलिये अगर उसकी मदद की जायगी तो वह अनुग्रहीत होकर सीता की खोज में अधिक मदद कर सकेगा, और सम्भवतया राज्य मिलने पर वह रावण से की हुई बालि की सन्धि को भी तोड़ देगा। इससे रावण के साथ युद्ध करने में पूरे वानर-साम्राज्य की ताकत मिल सकेगी। जो दक्षिण भारत की एक जबरदस्त ताकत थी। कुछ भी हो इतना अवश्य कहा जायगा कि एक तरफ राम और दूसरी तरफ सुग्रीव पूरी तरह अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिये सजग थे।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित राम-कथाओं में इस राजनीतिक यज्ञ को भक्ति की महत्ता के नीचे दबा दिया है। इसलिये कहीं तो बालि तत्वज्ञान का उपदेश राम से सुनता है और अपने अज्ञान को दूर करता है; कहीं वह अपने को राम के बाण मे मरकर मोक्ष का अधिकारी समझ कर कृतार्थ होता है और राम से भक्ति का वरदान मांगता है। यह सब राम के मानवीय चरित्रगत गुण और दोषों को भगवान् की लीला मे श्रद्धा के बल पर स्वीकार करके उनके अवतारवाद की प्रतिष्ठापना का ही प्रयत्न है। श्रद्धा और विश्वास में तर्क के लिये कोई स्थान नहीं होता इसीलिये इस प्रकार की कथाओं में भगवान् के अलौकिक रूप की व्याख्या के सामने मानवीय परिधि में तर्क-बुद्धि से स्थापित मूल कथा के औचित्यीकरण को गौण स्थान मिला है।

बालि-वध का राम एक ही कारण बालि से कहते हैं कि बालि ने सुग्रीव की स्त्री रुमा को घर मे स्त्रीवत् रख लिया था जो राम के मतानुसार पुत्री के समान थी। छोटे भाई की स्त्री पुत्री के समान होती है और बालि ने उसको स्त्री बनाया है इसलिये वह पापी है, उसका वध होना चाहिये। यह नैतिकता का सिद्धांत आर्यों का अपना हो सकता है, क्या आवश्यकीय है वानरो की अनार्य जाति में भी यही नियम प्रचलित हो जब कि आर्यों में ही समय के अन्तर में काफी हेर-फेर हो गया था। एक समय तो आर्यों में भाई-बहन, पिता-पुत्री के भी वैवाहिक सम्बन्ध मान्य थे। इसलिये अपने नैतिकता के सिद्धांत पर दूसरी जाति के कृत्य को मापना और उसमें अपने दृष्टिकोण को उचित और अनुचित, पाप और पुण्य का फैसला देना कहाँ तक उचित है जबकि आगे जाकर वह फैसला भी एकांगी दीखता है क्योंकि सुग्रीव ने राज्य प्राप्त करने के पश्चात् बालि की स्त्री तारा को अपनी स्त्री बना लिया था। क्या यह तारा सुग्रीव के लिये उसी तरह माता के समान न थी जैसी लक्ष्मण के लिये सीता।

लक्ष्मण ने तो सीता के पैरों को छोड़ कर कभी उसका मुँह भी नहीं देखा था फि राम ने इसे पाप और अनाचार कहकर सुग्रीव को दण्ड क्यों नहीं दिया। यह दृष्टिको ही सर्वथा गलत है, मगर हिन्दुस्तान के शासक भी इसी दृष्टिकोण के अन्तर्ग आचार-विचार का निर्णय करते तो शायद हिन्दुस्तान की सभी काफ़िर औरतों क बुरका पहनना पड़ जाता, हिन्दुओं में भी चाचाजाद भाई बहनों में शादी हो लग जाती।

राम के युग में ही क्या गन्धर्व-स्त्रियाँ स्वतन्त्र सम्भोग की अधिकारिणी नहं थीं ? वे तो पुत्र को जन्म देते ही छोड़ जाती थीं, उनमें इसी प्रथा को श्रेष्ठ समझ जाता था और स्त्री तथा पुरुष के स्वतन्त्र सम्भोग पर किसी सामाजिक सम्बन्ध क अधर्म नहीं समझा जाता था। इसी प्रकार विभिन्न जातियों में स्त्री-पुरुष के भिन्न भिन्न सम्बन्ध दीख पड़ते हैं। 'महाभारत' में कई प्रकार के विवाह बताये गये हैं, आर्ष विवाह, राक्षस विवाह, पैशाच विवाह, गान्धर्व विवाह, असुर विवाह, ब्राह्म विवाह आदि। ये विभिन्न जातियों के यौन-सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से हमारे सामने रखते हैं। इनमें एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध ही नैतिकता का मानदण्ड नहीं बन सकता।

हमारा अनुमान है कि नैतिकता के इस व्यक्तिगत पक्ष को रामायण के इस प्रसंग में स्थान मिलने का कारण ब्राह्मण-कथाकारों का अपना सांस्कृतिक दृष्टिकोण अधिक है, कथा के मूल-रूप से उसका सम्बन्ध कम है। इस घटना का जो कुछ भी राजनीतिक स्वरूप रहा होगा वह हमने ऊपर प्रस्तुत किया है।

वालि-वध से लंका दहन-तक

जब सुग्रीव किष्किन्धा का राजा हो गया तो उसने राम और लक्ष्मण से नगर में रहने की प्रार्थना की लेकिन राम ने उत्तर दे दिया—हे सौम्य! मैं चौदह वर्ष तक न ग्राम में प्रवेश करूँगा और न नगर में। तुम व्यवहार में चतुर हो जाकर शासन करो और अपने बड़े भाई के बेटे अंगद को युवराज बनाओ। यह वर्षा ऋतु का पहला महीना श्रावण है। हे सुग्रीव ! वर्षा ऋतु के चार महीने तक मैं यहीं प्रस्रवण पर्वत पर रहूँगा। इसके बाद शरद् ऋतु के प्रारम्भ होते ही तुम रावण के वध के लिये उद्योग करना। हमारी-तुम्हारी प्रतिज्ञा इस अवधि के पश्चात् अवश्य पूरी हो।

वर्षा ऋतु में पर्वत का शृंग अत्यन्त रमणीय हो गया, जल-स्रोत कल-कल करके बहने लगे। श्याम घटाएँ चारों ओर झूलने लगीं, कभी मेघ गर्जना करते, वन के पक्षी एक साथ कोलाहल कर उठते, चारों ओर प्रकृति का रूप हरा दीख रहा था। पुष्प, पक्षी, जानवर आदि सभी आनन्द से क्रीड़ा कर रहे थे, राम का हृदय विरहानल से दग्ध हो रहा था। उन्हें बार-बार सीता की याद आती और उससे उनका अन्तर एक साथ कांप जाता। इस तरह विरह-वेदना में वर्षाकाल समाप्त हो गया। शरद् ऋतु आई परन्तु अभी तक सुग्रीव का कोई समाचार नहीं आया। राम चिन्ता करने लगे। वे सीता की याद में विलाप करते और लक्ष्मण उन्हें हर तरह से सान्त्वना देते।

राम कहने लगे—हे परन्तप ! मुझे इस दुरात्मा वानरराज ने ठग लिया। देखो, वह दुर्बुद्धि सुग्रीव सीता के खोजने के लिए समय का नियत करके भी इस समय कृतार्थ होने के कारण, चेत नहीं करता। वह वानरराज मूर्खता से गृह-सुख में तल्लीन हो रहा है। इसलिए तुम किष्किन्धा में जाकर मेरा वचन सुनाओ कि बल-पौरुष-युक्त पूर्वोपकारी अर्थियों की आशा को जो प्रतिज्ञा करके नष्ट करता है वह पुरुषाधम है। देखो, जिस काम के लिए यह मैत्री की गई है उसके समय का सुग्रीव को स्मरण नहीं है। वर्षा-ऋतु बीत गई है। लेकिन उसको अपने वचन की याद तक नहीं है। हे महाबली, तुम जाओ और उसको मेरे क्रोध का रूप कह सुनाओ। उससे कहना, हे वानरराज ! तुमने मेरे लिए जो प्रतिज्ञा की है उसको सनातन धर्म की ओर दृष्टि करके पूरी करो, मेरे बाणों द्वारा यमपुरी में जाकर बालि को मत देखो।

रामचन्द्र के ये शब्द सुनकर लक्ष्मण कोप के वेग को सहन नहीं कर सके उन्होंने कहा—हे प्रभो, ऐसे असत्यवादी सुग्रीव का वध करना ही ठीक है। अंगद वीर वानरों के साथ जाकर जनकसुता को ढूंढेगा। वह गुणहीन और धृष्ट सुग्रीव राज के लिये उपयुक्त नहीं है।

इस तरह कोप करके लक्ष्मण किष्किन्धापुरी में आये। जिन वानरों ने भी लक्ष्मण की क्रोध से जलती लाल आँखों को देखा वे वहीं ठिठक गये। सभी वानर आकर पुरी में एकत्रित हो गये और सोचने लगे कि आज कोई विपत्ति आने वाली है। सुग्रीव अपने मन में भयभीत हो गया। उसने अपने मंत्रियों को बुलाया और सलाह करने लगा कि क्या करना चाहिए हनुमान ने सुग्रीव को अपने कर्त्तव्य का ध्यान दिलाया जो उसे वर्षा ऋतु के पश्चात् मित्र राम के प्रति पूरा करना चाहिए था। सुग्रीव ने तारा को लक्ष्मण से बातें करने भेजा क्योंकि वह चाहता था कि लक्ष्मण का क्रोध तारा को देखकर कम हो। लक्ष्मण भीतर महल में चले जा रहे थे। सुग्रीव के भवन का तथा किष्किन्धापुरी की सुन्दरता का जैसा सजीव और कलात्मक वर्णन 'वाल्मीकीय-रामायण' में हुआ है वैसा अन्य रामायणों में नहीं।

तारा स्तन-भार से झुकी हुई लक्ष्मण के पास आई। मद से उसके नेत्र व्याकुल थे। सुवर्ण की काञ्ची की एकलड़ी लटकाये वह प्रतिपग में लड़खड़ाती चल रही थी। लक्ष्मण ने उसे देख कर आँखें नीची कर लीं और उनका क्रोध शान्त हो गया। यह देखकर तारा ने लक्ष्मण से पूछा—हे राजेन्द्र पुत्र! आपके क्रोध का क्या कारण है? कौन ऐसा प्रणी है जो आपकी आज्ञानुसार कार्य नहीं करता।

यह सुन कर लक्ष्मण ने तारा से कहा—हे तारा! तू तो हर समय पति की शुभकामना में ही तत्पर रहती है, क्या तू नहीं देखती कि तेरा पति सुग्रीव काम के व्यवहार में फँसा हुआ अपने कर्त्तव्य को भूल गया है। उसने हमारे शोक की चिन्ता करना छोड़ दिया है। सुग्रीव उपकृत होकर प्रत्युपकार नहीं करना चाहता इसलिए वह असत्यवादी, स्वार्थी और अधर्मी है। अब तू ही बता हम इस समय क्या करें।

तारा ने अति नम्र वचनों के साथ सुग्रीव की ओर से लक्ष्मण से क्षमा-याचना की। तारा और लक्ष्मण के संवाद को इस रूप में अन्य रामायणों ने प्रस्तुत नहीं किया है। 'मानस' में तो संवाद के लिये स्थान ही नहीं है। उसमें तो केवल यह है :

तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना॥
कर बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए॥

'वाल्मीकीय रामायण' में जब बालि मरता है तो वह सुग्रीव से तारा के बारे में कहता है—हे सुग्रीव! यह तारा मन्त्रणा में अति कुशल स्त्री है इसलिए राज्य-सम्बन्धी विषयों में कभी आवश्यकता हो तो इसकी सलाह से काम करना। तारा के

चरित्रगत इस गुण की इस स्थान पर व्याख्या कलात्मक ढंग से हुई है। यह वाल्मीकि ऋषि की ही खूबी है कि उन्होंने जिस पात्र को भी कथा में लिया उसके चरित्र को यथायोग्य विकास किया, अन्य कथाकार ऐसे सजग नहीं रहे। तारा ने लक्ष्मण को निम्न उत्तर द्वारा शान्त कर दिया। यह प्रकट करता है कि वह एक कुशल नीतिज्ञ थी।

उसने लक्ष्मण से कहा—हे राजेन्द्र पुत्र ! यह कोप करने का समय नहीं है और न आपको अपने जन पर कोप करना ही चाहिए। आप ही के अर्थ-साधन में जो दत्तचित्त है उस जन से जो कुछ भूल हो गई हो उसको क्षमा कीजिए। हे कुमार ! भला सुनिये तो सही कि तुम्हारा ऐसा गुणोत्कृष्ट जन कौन होगा जो हीन बल वाले व्यक्ति पर इस प्रकार क्रोध करेगा। कौन ऐसा सत्वगुण युक्त श्रेष्ठ तपस्वी होगा जो इस प्रकार कोप के वश में हो जायेगा। मैं जानती हूँ कि समय बीत जाना श्री राम के कोप का कारण है। मैं यह भी जानती हूँ कि आपने हमारा बड़ा उपकार किया है और मुझे जो कुछ प्रत्युपकार आपका करना चाहिए उसको भी मैं जानती हूँ। दुःसह काम का बल है उसको भी मैं जानती हूँ। उसी की बलवत्ता से सुग्रीव स्त्रियों में फंस कर आपके कार्य की ओर दृष्टि नहीं करता, उसे भी मैं सब जानती हूँ। आपकी बुद्धि काम के विषय में अनुरक्त नहीं है, इसलिए आप क्रोध के वश में हो गये हैं। देखिये जो मनुष्य काम के वश में हो जाता है वह देश और काल के यथार्थ धर्मों को नहीं जान सकता।

हे शत्रुवीरनाशन ! अब आप इस समय उस वानर-वंश-नाथ सुग्रीव को क्षमा कीजिए। वह काम के व्यवहार में फंस रहा है और काम के वेग से ही लज्जारहित हो रहा है। देखिये जो बड़े-बड़े महर्षि लोग धर्म और तपस्या में दृढ़व्रत हैं वे भी ऐसे काम के वश में हो अज्ञान में पड़ जाते हैं और उन्हें कुछ भी नहीं सूझता। यह एक तो वानर की जाति है जो स्वभाव से ही चंचल होती है और दूसरे वह राजा है। वह भला क्यों न सुखों में आसक्त हो ?

वह मद-घूर्णित-नयना वानरी इस प्रकार लक्ष्मण को समझा कर अन्त में बोली—हे नरोत्तम ! सुग्रीव काम के वश है लेकिन फिर भी वह आपके प्रयोजन के साधन में बहुत दिनों से उद्योग कर रहा है। नाना पर्वतवासी सौ सहस्रकोटि वानर उपस्थित हुए हैं। वे महा पराक्रमी और कामरूपी हैं। हे महाबाहो ! आइये आपने चरित्र की रक्षा की क्योंकि साधुजन मित्रभाव से छलरहित होकर स्त्रियों को देखते हैं।

तारा की आज्ञा पाकर लक्ष्मण भीतर सुग्रीव के पास चले गये।

क्या 'वाल्मीकीय रामायण' की इस नीति-कुशल, देश और काल के यथार्थ धर्म को जानने वाली तारा का 'मानस' में भक्ति के आवरण में सही चित्र उपस्थित किया

गया है ? क्या राम के अलौकिक प्रभाव से दब कर वानरराज की वह वैभव के मद से मत्त स्त्री तारा 'वाल्मीकीय रामायण' में लक्ष्मण के चरणों की वन्दना करती है ? क्या वह श्रद्धा और भक्ति के सामने अपनी बुद्धि और स्वाभिमान पर विश्वास खो बैठती है ? नहीं ! यह सब कुछ स्वाभाविकता की तोड़-मरोड़ 'वाल्मीकीय रामायण' में नहीं है। इसमें तो तारा के वास्तविक रूप को नैतिकता की आड़ में छिपाने की कोशिश भी नहीं की गई है। वाल्मीकि ने तो तारा को मद-घूर्णित-नयना वानरी चित्रित किया है जिसके नेत्र मद से व्याकुल थे, और वह प्रतिपग पर नशे में लड़खड़ाती चल रही थी। तुलसी की तरह वे सतर्क नहीं थे कि इस तरह की अश्लील अवस्था में परमात्मा-स्वरूप राम के लघु भ्राता लक्ष्मण के सामने तारा कैसे जा सकती है ? लेकिन यह अन्तर सामाजिक दृष्टिकोण के परिवर्तन द्वारा ही उपस्थित हुआ है। जिस युग में वाल्मीकि थे उस समय आर्यों की स्त्रियाँ तक मदिरा पीती थीं फिर अनार्य जातियों की बात ही क्या है। तुलसीदास जी के समय में या उससे बहुत पहले ही मदिरा पीना नैतिकता से गिरी हुई बात समझी जाती थी। 'अध्यात्म रामायण' में जहाँ एक ओर परम्परा-नुकरणवश श्रेष्ठ भगवान् राम तथा सीता के लिए मांस और मदिरा खाना-पीना कोई चरित्रगत दोष नहीं बताया गया है वहाँ दूसरी ओर मदिरा पीने वाले को जघन्य पापी भी कहा गया है, यह अन्तर्विरोध क्यों ? नैतिकता के बदलते मानदण्डों में कथा को अपने परम्परागत रूप में, एक भिन्न समाज के सामने प्रस्तुत करने में ही दृष्टि-कोण का यह अन्तर उपस्थित हुआ।

इसके अलावा एक बात और ध्यान देने योग्य है। वाल्मीकि ने तारा को सुशिक्षित, नीतिकुशल, वाक्पटु तथा बुद्धि के क्षेत्र में पुरुष को हर तरह से सहयोगिनी बताया है पर तुलसीदास ने उसे केवल राम की भक्ति में तत्पर रहने वाली स्त्री बताया है। वह पूरे प्रसंग में सिवाय राम के अलौकिक रूप से भयभीत होने के, न बालि से कुछ नीतियुक्त वचन कहती है और न लक्ष्मण से—यह क्यों ? क्या इसलिये कि तुलसीदास का 'रामचरित मानस' 'अध्यात्म रामायण' की तरह भक्ति के स्रोतों का संग्रह-मात्र है, या चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता तथा व्यक्ति-वैचित्र्य के सिद्धान्तों को भक्ति के उपदेश के सामने वह कोई महत्व नहीं देता ? या यह समझा जाय कि वह तुलसीदास जो अपने युग-बन्धनों में जकड़ा हुआ स्त्री को जड़, कामवासना में आसक्त, हेय वस्तु समझता था अपने 'मानस' में उसकी इतनी महत्ता कैसे प्रतिपादित कर सकता था। उसके समय में तो स्त्री सब प्रकार से ताड़ना की अधिकारिणी थी और एक दासी के समान परिवार में उसका जीवन था। वाल्मीकि के समय में भी पितृ सत्तात्मक समाज में स्त्री पुरुष की दासी बन चुकी थी लेकिन वह फिर भी समाज में अपना महत्व रखती थी, मन्त्रणा तथा रण में भी पुरुष का हर तरह से सहयोग करती थी। कुछ भी हो तुलसीदास ने अपनी लेखिनी से भगवान् राम के चरित्र को गौरवान्वित किया है और

उनके साथ राम-कथा के अन्य पात्रों का गौरव भगवान् राम की ही भक्ति में दिखाया है।

'अध्यात्म रामायण' में तारा भक्ति के सहारे लक्ष्मण से सुग्रीव के लिये क्षमा माँगती है। वह कहती है—हे देवर, मेरी रक्षा कीजिये, आप साधु हो, और आपको भक्त अति प्रिय हैं। आप अपने अनन्य भक्त सुग्रीव पर क्यों क्रोधित होते हैं, आप ही उसके रक्षक हैं।

'अध्यात्म रामायण' के और 'मानस' के दृष्टिकोणों में यहाँ कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में लक्ष्मण और तारा का संवाद नहीं है, हो सकता है कथा का संक्षिप्त-रूप होने के कारण ही कथाकार ने इसको महत्वपूर्ण न समझकर स्थान न दिया हो। इसमें सुग्रीव लक्ष्मण के कोप से इतना भयभीत नहीं दिखाई देता जिससे उसका सारा सन्तुलन ही बिगड़ जाय। वह अपने अन्तर में भय से काँप कर हनुमान, अंगद तथा तारा को पहले लक्ष्मण का क्रोध शान्त करने के लिये नहीं भेजता है बल्कि स्वयं अपनी स्त्री तथा सेवकों के साथ जाकर लक्ष्मण से कहता है—हे रघुनाथ! मैं दुर्बुद्धि, अकृतज्ञ, अथवा विपयी नहीं हूँ। सीता को खोज करने के जो यत्न मैं कर चुका हूँ वह सुनिये। असंख्य वानर मेरी आज्ञा से एक महीने के भीतर लौट आने का वादा करके चारों ओर गये हैं। वे पृथ्वी-भर के वन, समुद्र, गाँव, नगर आदि सभी स्थानों में सीता को खोजेंगे। इस समय महीना पूरा होने में केवल पाँच दिन शेष रहे हैं। पाँच दिन के बाद आप और रामचन्द्र खुशी की खबर सुनेंगे।

सुग्रीव के मुँह से ये वचन सुनकर लक्ष्मण अपने क्रोध को भूल गये। उन्होंने सुग्रीव की बड़ाई की और वे माल्यवान पर्वत पर श्री राम के पास गये।

'सूरसागर' की राम-कथा में लक्ष्मण का किष्किन्धा जाना तथा सुग्रीव पर कोप करना वर्णित नहीं है। उसमें तो राम ने वर्षा के महीने बिताकर सुग्रीव को अपने पास बुलाया था और सीता की खोज करने के लिये उससे कहा था।

'श्रीमद्भागवत' में भी यह प्रसंग नहीं है।

इसके पश्चात् तारा की बात मानकर लक्ष्मण भीतर सुग्रीव के पास गये। वह वानरराज रत्नजटित सिंहासन पर बैठा था। स्त्रियाँ उसके चारों ओर बैठी थीं, वह पूरी तरह विलास में डूबा हुआ था। उसकी यह अवस्था देखकर लक्ष्मण का क्रोध फिर आग बनकर निकल पड़ा और उन्होंने सुग्रीव को नीच, असत्यवादी, धृष्ट, कृतघ्न कहा और फिर कहा—तू हमारे किये उपकार को भूल गया है और राज्य-वैभव में मदमत्त हो रहा है, हे मिथ्यावादी राजा! क्या तू भी बालि का मार्गानुसरण करना चाहता है। तू मेंढक के समान शब्द करने वाला सर्प है, तूने अभी राघव को नहीं पहचाना है।

लक्ष्मण को इस प्रकार क्रोधयुक्त देखकर चन्द्रमुखी तारा ने उनसे अति कोमल वचन कहे और सुग्रीव की रक्षा की। उसने कहा—हे परन्तप ! पहले के दुःखों का मारा यह सुग्रीव उत्तम सुख पाकर अचेत हो गया है और प्राप्त काल को नहीं जानता है जैसा कि विश्वामित्र मुनि घृताची नाम की अप्सरा पर दस वर्ष-पर्यंत आसक्त रहे थे और बीते हुए समय को नहीं जान सके थे। जब ऐसे धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्र समय से अचेत हो गये तो नीच जन की,तो बात क्या है। हे लक्ष्मण ! अब श्री राम को यह उचित है कि सुग्रीव को क्षमा कर दें।

उसके बाद तारा ने लक्ष्मण को विश्वास दिलाया कि सुग्रीव श्री राम के कार्य के लिये राज्य को, मुझको, अङ्गद को, राज्य, धन-धान्य तथा पशुओं को भी छोड़ देगा। वह श्री राघव को सीता से ऐसे मिला देगा जैसे चन्द्र को रोहिणी प्राप्त होती है। वह इस अधम राक्षस रावण का अवश्य वध करेगा। देखिये, लंका में सौ कोटि सहस्र और छत्तीस दस सहस्र सहस्र सौ राक्षस हैं। इन काम-रूपी दुर्धर्ष राक्षसों को बिना मारे रावण नहीं मारा जा सकता। उनको और रावण को भी मारने के लिये सुग्रीव की सहायता अपेक्षित होगी। बालि ने मुझसे यह बात कही थी। आपकी सहायता के लिये बहुत से वानरों को बुलाने को अनेक प्रधान वानर-वीर भेजे गये हैं। सुग्रीव उन्हीं की बाट देख रहा है। वह पहले से ही अपने कर्तव्य के प्रति सजग है इसलिये हे शत्रुनाशन ! आप क्रोध को त्याग दीजिये।

तारा के शब्दों को सुनकर लक्ष्मण ने अपना क्रोध त्याग दिया। सुग्रीव भी अब सचेत हो गया और पश्चात्ताप करते हुए लक्ष्मण से बोला—हे राजपुत्र ! जिन रामचन्द्र के प्रसाद से मैंने अपनी नष्टश्री, कीर्ति और सनातन कपिराज्य को फिर से पाया है उन राजेन्द्र के उपकार के सदृश काम करने में कौन समर्थ है ? वे धर्मात्मा श्री राघव अपने ही तेजोबल से सीता को पावेंगे और रावण को मारेंगे, ऐसे पराक्रमी को सहायता की क्या आवश्यकता है, मैं तो उनका अनुगामी रहूँगा। अब मुझसे जो अपराध हुआ है उसे श्री राघव क्षमा करें।

सुग्रीव के वचन सुनकर लक्ष्मण अति प्रसन्न होकर बोले—हे वानरेश्वर ! तुम्हारे ऐसे नाथ को पाकर मेरे भ्राता सनाथ क्यों न हों। हे सुग्रीव ! तुम्हारी सहायता से प्रतापयुक्त होकर श्री रामचन्द्र शीघ्र रावण को मारेंगे इसमें सन्देह नहीं। तुम धर्मज्ञ और कृतज्ञ हो। पराक्रम में तुम श्री रामचन्द्र के तुल्य हो और देवताओं ने ही बहुत काल के लिये हमारी सहायता करने को तुम्हें भेजा है। तुम संग्राम में कभी पीठ नहीं दिखाते हो।

हे वीर ! अब तुम मेरे साथ शीघ्र यहाँ से चलो और स्त्री-हरण से पीड़ित अपने मित्र को समझाओ।

'अध्यात्म रामायण' में हनुमान ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! श्री राम के कार्य के लिये सुग्रीव ने पहले करोड़ों वानरों को बुलवाया है, यह वानरराज राम के सारे कार्य को पूरा करेगा आप क्यों इस पर क्रोध करते हैं। लक्ष्मण यह सुनकर शान्त हो गये। सुग्रीव ने यह देखकर अर्घ्य-पाद्यादि पूजन की सामग्री से लक्ष्मण की पूजा की, और कहा—हे लक्ष्मण ! मैं तो राम का दास हूँ, वे ही मेरे रक्षक हैं, मैं तो सब वानरों सहित केवल सहायमात्र हूँ।

लक्ष्मण ने यह सुनकर सुग्रीव को हृदय से लगा लिया और उसे लेकर वे राम के पास चले गये।

'मानस' में सुग्रीव ने कहा :

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करइ छन माहीं॥

यह सुनकर लक्ष्मण ने अति प्रसन्न होकर सुग्रीव को बहुत प्रकार से समझाया। इसके बाद :

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गए दूत समुदाई॥

उपर्युक्त तीनों राम-कथाओं में 'वाल्मीकीय रामायण' का वर्णन अधिक विस्तृत है और परिस्थिति पर खुलकर प्रकाश डालता है। इसमें तारा ने सीता को प्राप्त करने तथा रावण को वध करने मे वानरों की सहायता को राम के लिये आवश्यक बताया क्योंकि इतनी विराट राक्षस-शक्ति से राम अकेले कैसे टक्कर ले सकते थे। यही कारण था कि राम ने सुग्रीव से मित्रता की थी और मर्यादा पुरुषोत्तम वे राम स्वयं उसके शरणागत बने थे। लक्ष्मण इस बात को पूरी तरह जानते थे इसलिये वे तारा की इस गूढ़ बात को सुनकर एकदम शान्त हो गये फिर जब सुग्रीव ने अपनी भूल पर पश्चात्ताप किया तो लक्ष्मण ने उसे रामचन्द्र के समान पराक्रमी बताया, उसे धर्मात्मा, सत्यवादी, कृतज्ञ बताया।

यह सब परिस्थितिगत राजनीति को स्पष्ट करती है। विशेष बात यह है कि जहाँ अन्य राम-कथाओं में लक्ष्मण संरक्षणात्मक वाणी (Patronising tone) में सुग्रीव को बहुत प्रकार से समझाते हैं वहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' में वे सुग्रीव को नाथ कहते हैं। उसकी हर तरह से प्रसंसा करते हैं। यह बताता है कि यहाँ वानरराज सुग्रीव राम की दया पर पलने वाला एक भक्त नहीं था जैसा उसके बारे में परवर्ती राम-कथाओं में कल्पना की गई है। यद्यपि सुग्रीव लक्ष्मण के सामने ही बालि से पिट कर पीठ दिखलाकर बुरी हालत में भाग कर आया था परन्तु फिर भी यहाँ लक्ष्मण ने उसके गौरव की प्रशंसा करते हुए कहा है कि वह कभी रण में पीठ नहीं दिखाता था। यह झूठी प्रशंसा क्यों ? क्या इसे लक्ष्मण का बड़प्पन मान लें या यह कहें कि परस्पर स्वार्थों में आबद्ध दोनों पक्ष व्यवहार-कुशलता और नीति से काम ले रहे थे।

इस सब पर अन्य राम-कथाओं में प्रकाश नहीं पड़ता।

जब परस्पर प्रेम की भावनाओं का स्रोत लक्ष्मण और सुग्रीव के बीच उ रहा था तो सुग्रीव ने अति उत्साहित होते हुए हनुमान से कहा—महेन्द्र, हिमा विन्ध्य, कैलाश और श्वेत शिखर वाले मन्दराचल पर जो वानर रहते हैं उन्हें शी बुलवाओ, मध्याह्न के सूर्य के समान प्रकाशमान जो गिरि हैं उन पर रहने वाले अ पश्चिम दिशा के तथा उदयाचल एवम् अस्ताचल पर्वतों के निवासी वानरों को शी बुलवाओ; पद्माचल नामक पर्वत के रहने वाले काले-काले मेघों के समान और गजेन तुल्य पराक्रमी वानरों को बुलवाओ; अन्जन नामक पर्वत पर निवास करने व वानरों को तथा महाशैल नामक गिरि की गुहा में रहने वाले सुवर्ण रङ्ग के वानरों शीघ्र बुलवाओ। मेरु के समीप रहने वाले, धूम्र पर्वत पर रहने वाले वानरों को शी बुलवाओ। महारुण नामक गिरि पर निवास करने वाले वानरों का रङ्ग तरुण सू के सदृश है। वे मैरेय नामक मधु पीते हैं और बड़े भयंकर वेग वाले हैं। बड़े-ब सुगन्धियुक्त रमणीय वनों में जहाँ तपस्वियों के रमणीय आश्रय हैं वहाँ जो वान रहते हैं और चारों ओर वन के प्रान्त भागों से सब वानरों को साम-दान इत्यादि शीघ्र बुलवाओ।

इनमें से कितने ही काम में आसक्त होंगे और अनेक दीर्घसूत्री होंगे, लेकि मेरी आज्ञा है कि दस दिन के बीच में जो मेरे पास न आवेगा वह मारा जायगा क्योंि वह राजा की आज्ञा का उल्लंघन करेगा।

वानरराज की इस आज्ञा को हनुमान ने सब दिशाओं में भेजा। यह सुनक पद्माचल-निवासी कज्जलवर्ण के तीन करोड़ वानर श्री राघव के पास चल दिये अस्ताचल निवासी दस करोड़ सुवर्ण के-से रंग के वानर आये। कैलाश शिखर पर रहने वाले कोटि सहस्र वानर भी श्री राघव के पास आये। हिमालय पर निवा करने वाले कोटि सहस्र सहस्र वानर आये। विन्ध्य पर्वतवासी करोड़ सहस्र वानर आये। दुग्ध समुद्र के तटों में निवास करने वाले, तमाम वनों में रहने वाले और नारि- यल भोजन करने वाले असंख्य वानर आये।

सुग्रीव भी श्वेत छत्र लगी हुई अपनी पालकी में बैठकर लक्ष्मण के साथ श्री राम के पास आ गया। वानरों की विराट सेना को देखकर राम सुग्रीव पर अति प्रसन्न हुए और उन्हें यथोचित राजधर्म समझाकर सीता को खोजने के लिए कहा। इसके अनन्तर एक निमिष में ही असंख्य वानरों के झुंड और आ गये। श्री राम की आज्ञा से सुग्रीव ने अपने यूथपतियों को चारों दिशाओं के देशों में जाकर सीता की खोज करने की आज्ञा दी।

'वाल्मीकीय रामायण' में चालीस से तैंतालीसवें सर्ग तक उन देशों का नाम वर्णित है जहाँ सुग्रीव ने वानरों को भेजा था। ये देश उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं के हैं। इस प्रकार विस्तार से इन देशों का नाम किसी राम-कथा में

नहीं आता, उनमे तो केवल सकेत में यह ही कहा गया है कि सुग्रीव ने चारों दिशाओ में वानरो को सीता की खोज करने भेजा। 'वाल्मीकीय रामायण' तत्कालीन भूगोल पर अधिक प्रकाश डालती है, उसे हम आगे के अध्याय मे लेंगे।

लेकिन प्रश्न यह है कि यह तो राम को भी पता हो गया था और सुग्रीव भी जानता था कि सीता को लंका का राजा रावण ले गया है, इसके लिए राम ने दक्षिण दिशा को चलते हुए हनुमान को पहचान के लिये एक मुद्रिका भी दी थी जिसे हनुमान ने सीता को दिया था फिर वानरों को उत्तर, पूर्व, पश्चिम दिशाओं मे भेजने का क्या प्रयोजन था। यह तो निश्चय था कि सीता दक्षिण में है तो सुग्रीव को सारी वानर-सेना को दक्षिण दिशा में भेजना चाहिये था। इसमें कोई राजनीतिक चाल मालूम होती है। हो सकता है कि सुग्रीव राम के संकेत पर या स्वयं ही अपने चारो ओर के देशों की शक्ति का तथा भावना का पता लगाना चाहता हो क्योंकि आप राम के अतिरिक्त वानर भी तो अपने स्वार्थ के लिए राक्षसों से स्वतः टक्कर ले रहे थे, इसलिये इस बहाने यह जानने के लिए कि कौन उनका मित्र है और कौन शत्रु उसने वानर-यूथों को भेजा था। यह तो स्पष्ट था कि वानर किसी देश पर चढ़ाई करने नही जा रहे थे बल्कि वे तो सीता की खोज मे तत्पर थे। इसलिये किसी देश मे उनका विरोध भी नहीं होता, और यदि इस परिस्थिति मे भी कोई देश उनका विरोध करता तो वह अवश्य राक्षस-शक्ति के समर्थक के सिवाय और कोई नही होता। इस तरह अपनी सामर्थ्य एवं शक्ति को तोलने के लिये, तथा यह जानने के लिए ही कि कौन देश तटस्थ है, कौन आर्य राम का विरोधी है कौन उनके पक्ष का है सुग्रीव ने उत्तर, पश्चिम तथा पूर्व दिशाओं में अनेक वानरों को भेजा। इसके साथ यह भी भ्रम हो सकता है कि सम्भवतया रावण ने सीता को अपने किसी मित्र-राष्ट्र में छिपा दिया हो जो दक्षिण में न होकर अन्य किसी दिशा में हो और उसी का पता लगाने वे वानर इन दिशाओं में भेजे गए हो। लेकिन यह कुछ ठीक नहीं लगता क्योंकि जो रावण सहस्रों गन्धर्वियों, नाग-कन्याओं आदि का अपहरण करके उन्हे लंका मे रखने से नही डरा वह एक तपस्वी की स्त्री सीता को लंका में रखने से क्यों डरता यह साधारण तर्क की बात सुग्रीव के मस्तिष्क में अवश्य होगी।

उपर्युक्त वर्णन मे हमे कुछ चमत्कार भी दीख पड़ते हैं, जैसे प्रायः प्रत्येक बड़े पर्वत पर वानरों का रहना बताया गया है और बहुत संख्या मे, यह तो माना जा सकता है कि विन्ध्याचल तथा उसके आसपास वानरो का एक विशाल साम्राज्य था लेकिन हिमालय और कैलाश पर वानर जाति रहती थी यह इतिहास गवाही नहीं देता, वहाँ तो गन्धर्व, सुपर्ण, भूत, पिशाच आदि जातियो का उल्लेख मिलता है, वानरों का उल्लेख तो केवल इसी प्रसग में मिलता है, सम्भवतया वानरों को एक पशु के रूप में चित्रित करके ही उनकी प्रत्येक पर्वत पर रहने की कल्पना की गई है,

वैसे कुछ वानर कुछ पर्वतों पर रहते भी हों लेकिन इतना अवश्य है कि जिन पर्व का नाम उक्त वर्णन में है उन सब पर वानरों का राज्य नहीं था।

'अध्यात्म रामायण' में भी इन पर्वतों का नाम वानरों के निवास-स्थान भाँति उल्लिखित है। 'रामचरित मानस' में नाम न होकर आमतौर से सभी पर्व वन, कन्दराओं से वानर आये थे।

सबको एक मास की अवधि मिली थी। राजा की आज्ञा थी कि अगर ए मास के अन्दर कोई सीता का पता लगाकर नहीं लौटेगा उसका वध कर दिया जायेगा यह वानरराज की निरंकुशता को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करता है। लेकिन कुछ त भय से और कुछ सुग्रीव के प्रजा से प्रेम होने से सभी वानर उत्साहित होकर अप हृदयों में विभिन्न संकल्प लेकर सीता की खोज में चल दिये।

जब सब वानर अपनी निश्चित दिशाओं में चले गये तो राम ने सुग्रीव से पूछ कि—हे कपिराज ! तुम चारों दिशाओं के विभिन्न देशों को कैसे जानते हो।

सुग्रीव ने उत्तर दिया—हे राम ! जब वालि ने क्रुद्ध होकर मुझे मारने को मेरा पीछा किया था तब मैं प्रत्येक दिशा में अनेक देशों में होकर भागा, बालि भी पीछे आया लेकिन ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि के भय से नहीं आया। यही कारण है कि मैं इन सब देशों को जानता हूँ।

मतंग ऋषि के भय से वालि का ऋष्यमूक पर्वत पर नहीं आना साधारण पाठक को एक चमत्कार मालूम होता है। तर्क का विषय है कि आखिर इतना पराक्रमी वानरराज बालि अपने शत्रु सुग्रीव का पीछा करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर क्यों नहीं आया ? क्या यह कोई ऋषि के शाप का परिणाम था ? धार्मिक एवं साम्प्रदायिक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति के लिए शाप एक दैवी सत्य हो सकता है लेकिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति को यह एक अलौकिक चमत्कार लगता है क्योंकि अगर शाप का इतना प्रभाव था कि यह किसी व्यक्ति को नष्ट कर सकता था, किसी समृद्धशाली राज्य को एक उजाड़ वन के रूप में बदल सकता था जैसे दण्डकारण्य के बारे में कथा है तो ब्रह्मर्षि परशुराम ने क्षत्रियों के वध करने के लिये शस्त्र क्यों उठाये थे, ब्राह्मणों के पूर्वों ने समय-समय पर अपनी सत्ता को बचाने के लिये युद्ध क्यों किया था। अगर शाप का प्रभाव इतना सशक्त था तो ब्राह्मण स्त्रियों के साथ बलात्कार करने वाले शूद्रों को परशुराम के समय के ब्रह्मर्षियों ने जलाकर खाक क्यों नहीं कर डाला ? 'महाभारत' में कथा आती है कि परशुराम ने शूद्र और विश (वैश्यों) की सहायता से क्षत्रियों को नष्ट किया लेकिन साथ में यह भी आता है कि उसी के बाद शूद्रों ने सिर उठाना प्रारम्भ किया था और कई जगह तो उन्होंने खुले आम ऋषि-पत्नियों के साथ बलात्कार किये थे, तभी तो कौशिक ने बदलती परिस्थिति

में सन्तुलन रखने के लिए तथा समाज में उठी निम्न वर्गों की इस उच्छृंखलता को दबाने के लिये परशुराम से पृथ्वी माँग ली थी और उस पर क्षत्रियों के सहयोग से ही अपनी सत्ता को सुरक्षित किया था। परशुराम असहाय होकर दक्षिण को चले गये थे।

स्वयं 'वाल्मीकीय रामायण' में शंबूक शूद्र के तप की कथा आती है। अगर ब्रह्मर्षियों के शाप में स्वयं इतनी सामर्थ्य थी कि वे शंबूक को नष्ट कर देते तो वे 'अधर्म, अधर्म' चिल्लाते राजा राम से सहायता लेने क्यों गये ?

प्राचीन काल की ये घटनाएँ स्पष्ट करती है कि दैवी रूप में शाप की कल्पना पुरोहित-वर्ग की परवर्ती कल्पना है जो अपनी वर्गगत सत्ता को अक्षुण्ण रखने के लिये ही की गई। यह तो एकमात्र भय था जिसके कारण ब्राह्मण से लोग डरते थे, उसकी पूजा करते थे और आज इस तरह का दैवी भय निकल जाने से समाज में ब्राह्मण का कोई सम्मान नहीं है। तुलसीदास ने इसे ही तो कलियुग कहा है।

वास्तव में देखा जाय तो शाप एक प्रकार की चुनौती (Challenge) ही हो सकता है। सत्ययुग में जब ब्राह्मण सर्वोपरि समझा जाता था उस समय तो उसकी सत्ता को चुनौती देने वाला कोई नहीं था। उन्हीं ब्राह्मणों में से जो आयुधधारी रक्षक-वर्ग के रूप में लोग आये वे क्षत्रिय कहलाये और उन्होंने ब्राह्मणों की इस एकमात्र सत्ता को सत्ययुग के अन्त में चुनौती भी दी। जब तक ब्राह्मण सशक्त रहा तब तक तो क्षत्रिय को अपने ऊपर स्वीकार नहीं किया। वशिष्ठ ने विश्वामित्र क्षत्रिय से निरन्तर संघर्ष किया, परशुराम ने हैहय क्षत्रियों का सर्वनाश कर दिया। इन क्षत्रियों के विरुद्ध ब्राह्मण जन (विश)-शक्ति को लेकर भी लड़ा था लेकिन अब समाज का ढाँचा बदल रहा था, जिस जन-शक्ति के बल पर ब्राह्मण ने क्षत्रिय को दाबा था वह स्वयं अपने अधिकारों के लिए ब्राह्मणों की जड़ों को हिलाने लगी और तभी ब्राह्मण ने अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिए क्षत्रिय को अपना अनिवार्य सहयोगी माना। अब यद्यपि ब्राह्मण शासक नहीं रहा था लेकिन वह उस धार्मिक या उस समय के दृष्टिकोण से कहीं राजनीतिक परम्परा का अधिष्ठाता था जिसे सभी वर्गों के लोगों को मानना पड़ता था। ब्राह्मण अब धर्मगुरु होकर समाज में सम्मान पाता था। सामन्त उसके सामने झुकता था, उसे अपार द्रव्य देता था, यहाँ तक कि आश्रम के लिए जागीरें तक भी देता था। इसी ब्राह्मण की मर्यादा को सामन्त समाज की मर्यादा समझकर रक्षा करता था। न वह स्वयं उसका उल्लंघन करता था और न दूसरों को करने देता था। अब ब्राह्मण के पास शस्त्र-बल नहीं था बल्कि उसके साथ मान्य ब्रह्म-शक्ति ही उसका एकमात्र संबल था। प्राचीन टॉटम युग में कबीले के लोग अपने टॉटम के पुजारी से डरते थे क्योंकि यह समझा जाता था कि वह स्वयं एकान्त में देवता के साथ बैठकर बातें करता है, इसी प्रकार का दैवी भय ब्राह्मण का समाज

में था क्योंकि चारों वर्णों में ब्राह्मण ही को ब्रह्मज्ञान प्राप्त था, वह ईश्वर का पुजारी था। अगर कोई उसके बताये मार्ग के विरुद्ध कार्य करता था तो वह अपनी शक्ति अथवा अपनी सहयोगी शक्ति से उसका विरोध करता था। इस तरह प्रारम्भ में ब्राह्मण के शस्त्र-बल से दी गई चुनौती पर आधारित यह शाप का रूप ब्राह्मण की क्षीण होती सत्ता में अपना स्थूल रूप खोकर एक दैवी भय के रूप में रह गया और प्राचीन काल के धार्मिक विश्वास के मूल में परिवर्तन न होने से आज भी वह उसी रूप में कथाओं में आता है।

कुछ लोग इसका समर्थन इस आधार पर भी करते हैं कि सम्भवतया यह शाप ब्रह्मऋषियों की योग-शक्ति द्वारा उनका विध्वंसात्मक आक्रोश हो, कुछ कहते हैं कि जैसे आज भी समाज में प्रचलित विभिन्न जादू-टोने, तन्त्र-मन्त्र अपना दबाव दिखाते हैं सम्भव हो सकता है कि उस समय में यह अलौकिक शक्ति ही अपने वृहद् रूप में ब्रह्मर्षियों में हो। ये दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं मालूम होते क्योंकि जादू-टोने तन्त्र-मन्त्र अधिकतर अनार्यों में चलते थे, अनार्यों से ही अधिकतर ये आर्यों में आये। अथर्ववेद में कुछ जादू-टोने हैं। विद्वानों का मत है कि यह वह अनार्य-परम्परा है जो अथर्ववेद के रचना-काल तक आर्यों में स्वीकृत हो चुकी थी। बाद के ब्राह्मणों के ग्रंथों में इनका स्थान कम है। इसके अलावा अगर ये जादू-टोने ब्रह्मर्षियों में इस तरह प्रचलित होते और शाप इसी आधार पर अपना प्रभाव रखता तो उस समय ब्रह्मर्षियों द्वारा बनाये ग्रन्थ वेदों में इसका स्थान अवश्य होता लेकिन न ऋग्वेद में, न यजुर्वेद में और न सामवेद में इस तरह के टोनों का उल्लेख है। उनमें प्रार्थनाएँ अवश्य हैं जिनका जादू-टोनों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शाप के बारे में जिस समय की कथाएँ आती हैं उस समय ये जादू-टोने ब्रह्मर्षियों में प्रचलित नहीं थे। स्वयं वेद के एक निर्माता ऋषि गौतम ने ही इन्द्र को शाप दिया था।

योग मन की वासनाओं को जीतने का साधन है। यह व्यक्तिगत साधना है जिसमें व्यक्ति स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है और अपने जीवन के अभाव को समाप्त करने का प्रयत्न करता है, योगी समाज से अलग शून्य में अपना अस्तित्व खोजता है। वह किसी व्यक्ति तथा समाज को अथवा राज्य को नष्ट करने की सामर्थ्य नहीं रखता बल्कि वह तो आत्म-बल के सहारे जीवन के पूर्णत्व की व्यवस्था करता है। अगर योगियों में शाप के बारे में कल्पना की गई इस तरह की शक्ति होती तो नाथ योगी सम्भवतया अपने समय के ब्राह्मण-व्यवस्था के समर्थकों को शाप से भस्म कर डालते और दूसरी तरफ शायद बहुत पहले ही पतञ्जलि के योग-दर्शन की साधना करने वाला योगी अपने प्रतिद्वन्द्वियों को नष्ट करके अखण्ड राज्य भोगते।

यह सब कुछ बड़ी कमजोर बुनियाद पर टिका हिलमिल-सा दृष्टिकोण लगता है जिसे श्रद्धा और विश्वास के ही सहारे अब तक आध्यात्मिक विचारधारा वाले

व्यक्तियों में स्वीकार किया गया है, तर्क की कसौटी पर कस कर उसे परखा नहीं गया कारण, धार्मिक विश्वासों में तर्क का स्थान नहीं है। महाकवि तुलसीदास भी तो मानस में कह गये हैं :

कल्प कल्प भरि एक एक नरका,
परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।

यह तर्क क्यों नहीं ? क्योंकि तर्क करने से धार्मिक अंधविश्वासों की असलियत खुलती है, इससे ब्राह्मण का धर्मगुरु-पक्ष निर्बल पड़ता है, पंडे-पुजारियों की पोप लीलाएँ अपने नग्न एवं जघन्य रूप में जनता के सामने आती हैं और इससे जिस असाम्य पर स्थित वर्ण-व्यवस्था के सहारे तथा धार्मिक कर्मकाण्ड के सहारे ब्राह्मण की रोजी चलती है वह खत्म होती है इसलिये ही तुलसी-जैसे सजग ब्राह्मणवादी कवि ने श्रुति के रूप में ब्राह्मण द्वारा बनाये धार्मिक विश्वासों की बुनियाद पर तर्क करना हेय बताया है और अगर कोई वह अपराध कर डालेगा तो उसके लिए दण्ड भी तो बड़ा कठोर मिलेगा जो आज की किसी जेल व फाँसी से भी अधिक है।

इस सबसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शाप का विचार एक ब्रह्मर्षि के साथ दैवी-भय के सिवाय कुछ नहीं था जो प्राचीनपर विशेष आस्था रखकर ब्राह्मण के उस समय के गौरव को परम्परा के रूप में मानकर ही स्थिर किया गया था। लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि ब्राह्मण की मिटती सत्ता में जब शाप (अर्थात् चुनौती (Challenge)) अपना प्रभाव नहीं दिखाता होता तो ब्राह्मण ऋषि के साथ दैवी-भय का विश्वास अधिक दिनों तक नहीं चला सकता था। उस समय भी ब्राह्मण धर्म-गुरु की चुनौती को सामन्त अपने प्रति दी गई चुनौती मानता था और ब्राह्मण की इच्छा के अनुकूल किसी व्यक्ति, राज्य अथवा देश को नष्ट करता था। ब्राह्मण ऋषि इसके बदले में राज्य की हर तरह से सहायता करते थे, वे इसका अनार्य राज्यों की सीमाओं में आर्य सामन्त की सहायता से विस्तार भी करते थे। वे ऐसा क्यों करते थे ? क्योंकि आर्य सामन्त ही तो उनकी बनाई मर्यादा को मानता था, उसे समाज पर लागू करता था, वही तो ब्राह्मण ऋषि का मान अक्षुण्ण रह सकता था। अनार्यों के यहाँ अपना अलग पुरोहित-वर्ग था जो ब्राह्मण को स्वीकार नहीं करता था। इसीलिये ब्राह्मण ऋषि स्थान-स्थान पर घूम कर धर्म का प्रचार करते थे या यों कहें कि आर्य-साम्राज्य की जड़ों को जमाते थे। वे अनार्य राज्यों की सीमाओं के अन्दर भी अपने आश्रम बनाते थे और वहाँ से धर्म की आड़ में अपना काम करते थे। अनार्य परम्पराओं पर एक दूसरी प्रकार की धार्मिक परम्परा-लादना चाहते थे इसका विरोध भी कहीं-नहीं होता था। राक्षसों के राजा रावण ने तो सैकड़ों ब्रह्मर्षियों को अपनी राज्य की सीमाओं में पाकर जनस्थान में मार डाला गया था, और इसीलिये त्राहिमाम् करते ऋषियों का

संकट दूर करने के लिये तथा आर्यों के आचार को सुदृढ़ बनाने के लिये आर्य राम रावण को अधर्मी कह कर मारा था। क्योंकि उनके लिये ऋषि का वध हो ज महापाप था।

तत्कालीन समाज में इन ब्रह्मर्षियों का स्थान वही मालूम होता है जैसा ब्रि साम्राज्य के समय पादरियों का था। वे भी जनता में नैतिकता, धर्म, ईश्वर की करते थे लेकिन मूल में उनका काम ब्रिटिश सत्ता को मजबूत करना था। जिस प्र अपने वर्गगत स्वार्थों में आबद्ध इन पादरियों ने भारत की गुलाम जनता के प्रति हमदर्दी नहीं दिखाई और दिखाई भी तो उस छोटे-से समुदाय को जिन्होंने पादरी अपना धर्म-परिवर्तन करके धर्मगुरु मान लिया था। उसी प्रकार इन ब्रह्मर्षियों अपने स्वार्थों में आबद्ध अनार्य पुरोहित-वर्ग तथा अनार्य व्यवस्था से कोई हमदर्दी न दिखाई और हर समय उस पर आर्य-व्यवस्था को लादने का प्रयत्न किया।

इस तरह हमारा अनुमान है कि मतंग ऋषि का आश्रम अपने पीछे एक जब दस्त आर्य-शक्ति रखता था जिससे बालि टक्कर लेना नहीं चाहता था और इसलि वह सुग्रीव के पीछे वहाँ तक नहीं आ पाया।

× × ×

सब वानरों को सीता को ढूँढते-ढूँढते एक मास व्यतीत हो गया लेकिन सीत का पता नहीं चला। दक्षिण दिशा में गये वानर-यूथ भी अनेक वन, पहाड़ आदि क पार करके कहीं राक्षसों से भी टक्कर लेते बढ़ रहे थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर गज, गवय शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान, युवराज अंगद, तार आदि सभ यूथपति अपने-अपने यूथों के लेकर चारों ओर सीता को खोजने लगे लेकिन उन्हे सीता का पता नहीं लगा। सभी निराश हो गये। अंगद अपने पिता के शत्रु वानरराज सुग्रीव के दण्ड की बात हृदय में विचार कर अधिक दुःखी होने लगा। थोड़ी देर पश्चात् सब वानर एक अंधेरी गुहा में घुस गये। वे प्यास के मारे व्याकुल थे। वहाँ उन्हें एक स्वच्छ जल का सरोवर मिला और उसके पास स्वयंप्रभा नाम की एक तपस्विनी मिली। गुहा के अन्दर एक अत्यन्त रम्य वन था तथा एक अति सुन्दर भवन था जिसे महातेजस्वी मायावी मय नामक दानव ने अपनी माया से बनाया था। उसने ब्रह्मा से शिल्प-विद्या का वर माँगा था। कुछ दिन तक तो वह वहाँ रहा फिर वह हेमा नाम की अप्सरा पर आसक्त हो गया जिस पर इन्द्र ने उसे अपने वज्र से मार दिया। तब से हेमा इसकी रक्षा करती थी, वह मेरी सखी थी। उसने मुझे वर दिया था कि इस भवन की रक्षा का सामर्थ्य तुममें होगा।

इसके पश्चात् हनुमान ने सीता तथा राम की बीती कथा स्वयंप्रभा को सुनाई और उससे सहायता करने की प्रार्थना की। स्वयंप्रभा ने सब वानरों से आँख मींचने

को कहा। आँख मींचने ही वे सब वानर समुद्र-तीर पर आ खड़े हुए। उन्होंने आँखें खोलकर देखा तो बड़ी भयकर, विशाल पर्वत-तुल्य तरंगों द्वारा समुद्र गर्जना कर रहा था।

यह चमत्कार इसी रूप में प्रत्येक रामकथा में आया है। हो सकता है कि उस गुहा से कोई गुप्त रास्ता समुद्र-तीर को जाता हो जो निविड़ अन्धकार से युक्त हो जिससे वानरों को कुछ भी नहीं दीखा हो। स्वयप्रभा उसी रास्ते से वानरों को समुद्र-तट पर लाई होगी। कालान्तर में यह वर्णन एक योग का-सा चमत्कार बन गया।

विशाल समुद्र को सामने देखकर और एक मास बीता देखकर सभी वानर निराश हो रहे थे। अंगद विशेष रूप से दुखी था। उसने सबको प्रायोपवेशन की सलाह दी क्योंकि वापस लौटकर जाने में तो सुग्रीव द्वारा मृत्यु अवश्यम्भावी थी। सब वानर युवराज की बात का समर्थन करने लगे। तार नामक वानर-यूथपति ने सबको उसी बिल में घुसकर रहने की सलाह दी जहाँ न तो सुग्रीव का और न राम का डर था।

हनुमान इस परिस्थिति पर गूढ़ दृष्टि से विचार कर रहा था कि अगर सभी वानर अंगद की सलाह मान गये तो अंगद वानरों का यहीं राजा हो जायेगा और एक प्रकार से वानरराज सुग्रीव के विरुद्ध विद्रोह होगा इसलिये उसने सुग्रीव की आपत्ति को टालने के लिये बुद्धिमानी से काम लिया और अंगद को समझाने लगे। उन्होंने कूटनीति से पहले तो सब वानरों को अंगद की तरफ से फोड़ लिया फिर अंगद से कहने लगे—हे पुत्र अंगद, तुम युद्ध में अपने पिता के तुल्य पराक्रमी हो और पिता की तरह अच्छे प्रकार से राज्य-शासन की भी सामर्थ्य तुम में है लेकिन ये वानर सर्वथा चपल-चित्त होते हैं। अपने पुत्रों और स्त्रियों को छोड़कर ये तुम्हारी आज्ञा कभी नहीं मानेंगे और इसी कारण ये तुम्हारे ऊपर प्रीति नहीं करेंगे। देखो, मैं सबके आगे कहता हूँ कि जाम्बवान, नील, सुहोत्र, और मुझे इन चारों को—तुम सुग्रीव से फोड़कर अपनी ओर कभी नहीं मिला सकते। साम, दान, दण्ड, भेद कोई भी उपाय तुम्हारा यहाँ कारगर नहीं हो सकता। देखो, दुर्बल के साथ बिगाड़ करके बलवान व्यक्ति चुपचाप बैठ सकता है परन्तु दुर्बल जो अपने को बचाना चाहता है वह कभी बलवान के साथ बिगाड़ करके सुखी नहीं रह सकता। इसलिये दुर्बल व्यक्ति को बलवान के साथ कभी बिगाड़ नहीं करना चाहिये और जो तुम कहते हो कि यह स्थान मेरी रक्षा करेगा तो लक्ष्मण के बाणों के सामने यह बिल कुछ भी नहीं। ये बाण क्षण-भर में इसे विदीर्ण कर डालेंगे। इन्द्र ने तो केवल भय ही के घात के लिये वज्र मारा था; सो वह तो कुछ भी नहीं था। परन्तु लक्ष्मण तो अपने पैने-पैने बाणों से पत्तों की तरह इस बिल को फोड़ डालेंगे। लक्ष्मण के बाणों का स्पर्श वज्र के समान है। वे पर्वतों को भी विदीर्ण कर सकते हैं। तुम बिल में गये नहीं

कि वानरों ने तुम्हारा साथ छोड़ा क्योंकि उनको भी तो अपने प्राणों का डर है तो उनको अपने पुत्र और अपनी स्त्री का स्मरण होगा, दूसरे नित्य भूखे अ युक्त होने के कारण चिन्ता से वे सो न सकेंगे। ऐसे अनेक कारणों से घबरा तुम्हारा साथ छोड़ देंगे। इस प्रकार तुम मित्र-रहित और हितकारी बन्धुओं होकर तृण से भी हलके हो जाओगे। तब तुमको उद्वेग होगा। देखो, लक्ष्‍ बाण अति वेगयुक्त, भयंकर और बड़े दुःख से सहने के योग्य हैं। ये आ होकर तुम्हें विदीर्ण करेंगे। यदि हमारे साथ चलोगे और नम्रता-पूर्वक सु सम्मुख खड़े हो जाओगे तो वे क्रम परम्परा के अनुसार तुमको राज्य पर बैठायेंगे। देखो, तुम्हारे काका धर्मात्मा, प्रीतिमान, दृढ़व्रत, पवित्र सत्य-प्रतिज्ञ कभी तुम्हारा नाश न करेंगे। फिर वे तुम्हारी माता के हित में सदा तत्पर रहें उसी के निमित्त उनका जीवन है अर्थात् उसी को प्रसन्न रखने मे वे तत्पर रहें तुमको छोड़ उनके कोई दूसरा पुत्र नहीं है। इसलिये मैं कहता हूँ—हे अंगद चलो।

हनुमान के ये वचन सुनकर अंगद बोला—हे हनुमान। देखो, स्थिरता, प एवम् मन की शुद्धि, कृपादृष्टि, कोमलता, पराक्रम और धीरता ये गुण सुग्री नहीं हैं। ज्येष्ठ भाई की स्त्री धर्म से माता लगती है, पर सुग्रीव ने निर्लज्ज ह उसी को मेरे जीते-जी अंगीकार कर लिया है। इसी से प्रकट है कि वह कैसा धर है। देखो, जिस दुष्टात्मा ने युद्ध में तत्पर अपने ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा का उल्ल कर बिल का मुख बन्द कर दिया वह किस प्रकार धर्म को जानता है? जो सत्य हस्तग्रहण-पूर्वक मैत्री करके उपकारी और महायशस्वी श्री रामचन्द्र को भूल गया और किसके सुकृत का स्मरण करेगा? और फिर देखो, जिसने लक्ष्मण के भय से लोगों को सीता की खोज के लिये भेजा, यह काम जिसने अधर्म के भय से नहीं कि भला कहो तो ऐसे पुरुष में धर्म कहाँ पाया जा सकता है? इसलिये भाइयो, ऐसे पा कृतघ्न, स्मृति-विरुद्ध कर्मकारी और चंचलात्मा पर कौन विश्वास करेगा? वि करके जो उसी कुल का जन्मा है वह व्यक्ति उस पर कैसे विश्वास करेगा। चाहे वह गुणी हो या निर्गुण, मैं तो शत्रु-कुल का पुत्र हूँ। मुझे वह राज्य पर प्र ष्ठित करके किस प्रकार जीने देगा। इस समय बिल में घुस कर रहने का विचा प्रकट हो गया। भेद फूट गया। अतएव मैं अपराधी और हीन-बल हूँ, भला कहो तो सही कि मैं किष्किन्धा में जाकर दुर्बल और अनाथ की तरह किस प्रकार जी सकूँगा। भले ही वह मुझे प्रत्यक्ष दण्ड न दे—प्राण न ले—परन्तु बँधवाकर अवश्य कारागा में डाल देगा क्योंकि वह बड़ा धूर्त, कठोर और घातक है। उसको राज्य का बड़ा लोभ है। इसलिये देखो, भाइयो, उन बन्धनों में पड़ने की अपेक्षा मुझे प्रायोपवेशन ही कल्याण-कारक जान पड़ता है इसलिये इस विषय में सब वानर मुझे आज्ञा दें

और अपने-अपने घर को लौट जायें। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं किष्किन्धा में न जाऊँगा। प्रायोपवेशन द्वारा मरना ही भला है।

अंगद के व्यथा-भरे इन वाक्यों को सुनकर सारे वानर अपने हृदय में चिन्तित हो गये और वे आँसू बहाते हुए सुग्रीव की निन्दा और बालि की प्रशंसा करने लगे। वे सब अंगद को घेर कर बैठ गये और परस्पर प्रायोपवेशन का विचार और आचमन करके उन्होंने दक्षिणाग्र कुश बिछा दिये। उन पर पूर्वाभिमुख हो वे सब उत्तर समुद्र के तीर पर बैठ गये।

उपर्युक्त वर्णन यह साफ बताता है कि समुद्र-तीर पर वानरों की सेना अंगद के नेतृत्व में सुग्रीव की निरंकुशता के विरुद्ध विद्रोह कर उठी थी। अंगद का हृदय अभी तक अपने पिता की अन्याय से की गई मृत्यु को नहीं भूला था। अंगद मौका तलाश कर रहा था, वह उसे मिला और उसने अपने हृदय के सब दबे उद्गारों को निकाल डाला। बालि की अधर्मयुक्त मृत्यु वानरों को भी खटकी थी क्योंकि एक तो बालि की मृत्यु होते ही उन्होंने अंगद के नेतृत्व में इस अन्याय और छल के विरुद्ध विद्रोह करना चाहा था। तारा ने इस सारे अधर्म का पर्दाफाश राम के सामने किया था, तब उसके आँसुओं से पीड़ित हो वानरों ने कहा था कि हे देवी, अंगद को युवराज बनाओ और राज्य करो लेकिन उस समय तारा शोक से पीड़ित थी, उसमें प्रतिशोध की भावना उभर कर नहीं आई थी, और इसके अलावा सुग्रीव भी उस समय अपने किये अधर्म पर रो उठा था। उसने अपना मस्तक झुका कर सब वानरों के सामने अपने भाई की मृत्यु के ऊपर प्रायश्चित्त किया था, उसी समय क्षत्रिय राम ने विधाता के विधान की परिस्थिति पर लाद कर सारे क्षोभ को शान्त कर दिया था लेकिन वह आग पूरी तरह बुझी न थी, वह अन्दर-ही-अन्दर धधक रही थी। समय आने पर उसमें से चिनगारी निकली और सब वानरों के हृदय रोष से जल उठे थे। राम ने बालि की मृत्यु का कारण यही तो बताया था कि उसने पुत्रीवत् अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बना लिया था। इसके अलावा उसने बड़ा अधर्म किया था कि उसे मृत्युदण्ड मिलना चाहिये था और वह दण्ड भी राम ने दिया था। क्या उसी दण्ड का भागी अब सुग्रीव नहीं हो गया क्योंकि उक्त प्रसंग में अंगद सुग्रीव के उपार्जित धर्म का पर्दाफाश करता है। वह कहता है कि इससे अधिक और क्या अधर्म होगा कि सुग्रीव ने मेरे जीते-जी अपनी माता के समान अपने बड़े भाई की स्त्री मेरी माता तारा को स्त्री बना लिया।

इससे प्रकट होता है कि वानरों में भी बड़े भाई की स्त्री को माता की तरह माता के समान मानते थे, तो क्या इस बात को राम नहीं जानते थे? उन्होंने सुग्रीव से तो कभी इसके बारे में कहा तक नहीं बल्कि लक्ष्मण ने तो अपने आचरण में इसे पूरे स्वीकार किया है। पाठक कल्पना करें कि अगर लक्ष्मण भी सीता के प्रति यही

दृष्टिकोण रखते तो क्या राम चुप रह जाते ? नहीं—यह साफ जाहिर करता है कि अन्दर-ही-अन्दर दोनों पक्ष अपने स्वार्थों में आबद्ध अपना दाव खेल रहे थे, जहाँ अपना कार्य निकलता दीखता था वहाँ आवश्यक रूप से नैतिकता की दुहाई देते थे, अन्यथा सब स्थानों पर एक ही सिद्धान्त से कार्य नहीं करते थे। यही तो कूटनीति परस्पर राज्यों में आज तक चलती आई है। आज भी साम्राज्यवादी शक्तियाँ जब जनवादी शक्तियों को कुचलना चाहती हैं तब नैतिकता की दुहाई देती हैं। पर वास्तव में वह नैतिकता है क्या ? अपने स्वार्थों की पुष्टि के लिये इन साम्राज्यवादी शक्तियों के नये-नये ऐटम और हाइड्रोजन बमों के आविष्कार इस सब को स्पष्ट कर देंगे।

इस स्थान पर यह कहना पड़ेगा कि बालि की मृत्यु राम की एक गहरी राजनीतिक चाल थी, वह चल गई और उसके विरुद्ध विद्रोह भी नहीं हो पाया। समुद्र-तट पर एक चिनगारी और उठी थी लेकिन वहाँ कूटनीतिज्ञ हनुमान अपनी चाल खेल गया। उसने बड़ी बुद्धिमत्ता से वानरों के हृदय को साम, दाम, दण्ड, भेद से बदला, अंगद को भी उसने अपने रास्ते से हटाना चाहा। उसने वानरों को अंगद की तरफ से फोड़कर उस विद्रोह की एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया और अन्त में अंगद अकेला प्रायोपवेशन पर आमादा होकर रह गया। पहले तो युवराज अंगद की बातें सुनकर सभी वानरों ने कहा था—देखो, युवराज का कहना ठीक है क्योंकि सुग्रीव स्वभाव के कठोर हैं और रामचन्द्र अपनी प्रिया में अनुराग रखते हैं। जब वे देखेंगे कि ये वानर एक तो सीता का पता लगाये बिना ही लौट आये और दूसरे मेरे नियमित समय का भी इन्होंने उल्लंघन किया तब राघव की प्रीति के लिये हमारा घात अवश्य किया जायगा। इसलिये अब हम मरने के लिये वापस न जावेंगे।

लेकिन हनुमान ने वानरों की इस चिन्ता को मिटाने का प्रयत्न किया। उसने एक तरफ तो सुग्रीव को धर्मात्मा बता कर उनके उद्विग्न हृदय को धैर्य बंधाया, दूसरी ओर उनके स्त्री और बच्चों का आकर्षण उनके हृदय में पैदा करके उनके चित्त को विद्रोह तथा प्रायोपवेशन के निश्चय से डिगा दिया। उसने साथ में लक्ष्मण का भय भी वानरों को दिखाया क्योंकि सभी वानर लक्ष्मण की कोप-मुद्रा किष्किन्धा में देख चुके थे। इस तरह सभी वानर वश में आ गये।

'अध्यात्म रामायण' में 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित अंगद के सुग्रीव के विरुद्ध कहे वाक्य अपने संक्षेप रूप में आये हैं लेकिन इसमें राजनीतिक परिस्थिति पर खुल कर प्रकाश नहीं डाला गया है, आध्यात्मिकता के बल पर ही परिस्थिति के आवेश को शान्त कर दिया गया है। इसमें हनुमान अंगद को वानरों से सहयोग करने को समझाते हैं। जैसे मानो वानरों के पहले कहने से ही अंगद विद्रोह कर रहा था, वाल्मीकीय में अंगद विद्रोह का नेता बनकर आगे आता है और तब वानर उसका सहयोग करने को तैयार हो जाते हैं। यहाँ हनुमान राम और सुग्रीव की तरफ से

अंगद को निश्चिन्त करने का प्रयत्न करते हैं। वे हर प्रकार ऊँच-नीच अंगद को समझाते हैं और अन्त में कथाकार हनुमान के हाथ वह अमोघ शस्त्र देता है जिसे चलाकर प्रत्येक को जीता जा सकता है। उसी शस्त्र का प्रयोग करते हुए हनुमान ने अंगद से कहा—हे पुत्र, एक और गुप्त रहस्य मैं तुझे बताता हूँ, उसे सुन। ये राम मनुष्य नहीं हैं बल्कि साक्षात् अविनाशी नारायण देव हैं और मनुष्यों को मोहित करने वाली जो भगवती माया है वही सीता है और सब लोक के आधार, नागों के ईश्वर शेष जी साक्षात् लक्ष्मण हैं। वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर राक्षसों को नष्ट करने के लिये माया-रूप में मनुष्य की तरह पैदा हुए हैं। वे सब लोकों के एकमात्र रक्षक हैं। हम सभी वानर विष्णु भगवान् के पार्षद वैकुण्ठवासी हैं, उन्हीं की आज्ञा से हम वानर-रूप धारण करके प्रकट हुए हैं। हम सबने पहले तप करके नारायण की आराधना करके उन्हीं के अनुग्रह से पार्षद पदवी प्राप्त की है। इसलिये इस वानर-योनि में भी निष्कपट होकर उन्हीं की सेवा करके फिर वैकुण्ठ में सुखपूर्वक वास करेंगे।

इस गुप्त रहस्य को सुनकर अंगद का उद्विग्न हृदय शान्त हो गया। सब वानर भी विद्रोह को भूल गये और श्रीराम के कार्य करने को आगे बढ़े। 'अध्यात्म रामायण' के इस वर्णन में हनुमान को कूटनीतिज्ञ तो बताया है और यह भी बताया गया है कि अंगद तथा वानरों का विद्रोह देखकर वह एक साथ चौंक उठा था। वह सोचने लगा था कि अगर अंगद सुग्रीव से अलग हो गया तो वानरों में फूट फैल जायगी अतः भगवान् राम का मनोरथ सिद्ध न हो सकेगा इसलिये वह सुग्रीव और अंगद में एकत्व स्थापित करना चाहता था। इस एकत्व स्थापित करने के लिये उसने राम के दैवी रूप का सहारा लिया। अंगद को लक्ष्मण के बाणों की प्रचडता से नहीं डराया बल्कि उसके हृदय को राम के अलौकिक रूप के सम्मुख झुका दिया।

'रामचरित मानस' में तो घिस-पिसाकर यह प्रसंग अपनी पूरी वास्तविकता खो बैठा है। उसमें तो वृहत् रूप से वानरों के असहयोग तथा सुग्रीव के प्रति क्षोभ को प्रकट ही नहीं किया गया केवल व्यक्ति-पक्ष में अंगद के शोक को दो चौपाइयों में बता दिया गया। वानरों ने दुःखी अंगद के साथ हमदर्दी दिखाई थी। इसमें कहीं भी अंगद सुग्रीव के लिये अनुचित शब्द बोलता नहीं दीखता न वह यह कहता है कि सुग्रीव ने अपनी माता के समान मेरी माता को अपनी स्त्री बना लिया है। इस प्रकार का खुला लांछन सुग्रीव पर अंगद कहीं लगाता नहीं दीखता है। हो सकता है तुलसी वानरों के अन्दर सुलगते इस विद्रोह के प्रति सजग नहीं थे इसलिये ही उन्होंने 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित इस प्रसंग को इस रूप में नहीं लिया या यह कहा जा सकता है कि तुलसी भगवान् राम के मित्र सुग्रीव पर इस तरह के लांछन ठीक नहीं समझते थे क्योंकि इससे राम के गौरव पर आँच आती थी। तुलसी की राम-कथा का तो उद्देश्य राम की भक्ति का प्रचार करना है इसलिये उन्होंने इरादतन आन्तरिक

राजनीतिक तथा ऐतिहासिक सत्य के ऊपर भक्ति और आध्यात्मिकता का पर्दा डाल दिया। इसमें तो वास्तविक राजनीतिक परिस्थिति की झलक तक नहीं मिलती। हनुमान भी यहाँ अपने विचार द्वारा परिस्थिति की सत्यता पर प्रकाश नहीं डालता, इसमें तो जाम्बवान ने अंगद को समझाया था :

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु॥
हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि॥

तुलसीदास ने तो इस प्रसंग में उपयुक्त जगह देखकर अपनी सगुण-भक्ति का उपदेश दिया है। 'अध्यात्म रामायण' की तरह इसमें भी जाम्बवान अंगद से राम के बारे में कहते हैं कि ये राम साक्षात् ब्रह्म के अवतार हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि किस तरह परवर्ती राम-कथाओं में अपने आदर्शों के साँचे में यथार्थ को तोड़ा-मोड़ा गया जिससे अन्त में वह प्रसंग अपना पूरा ऐतिहासिक यथार्थ खोकर केवल अलौकिक चमत्कार का विषय बन गया।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में सुग्रीव के इस कठोर आदेश का वर्णन नहीं है कि जो वानर एक मास के भीतर सीता का पता लगाकर नहीं लौटेगा उसका वध कर दिया जायगा। इस कथा में तो उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम से सभी वानर लौट आये थे। उनकी इस प्रकार की चिन्ता का उल्लेख नहीं है जैसा उक्त रामायणों में अंगद तथा अन्य वानरों ने की थी। इसमें तो दक्षिण दिशा में गये वानरों में भी इस चिन्ता और शोक का उल्लेख नहीं है। इसमें अंगद तथा अन्य वानर न तो प्रायोपवेशन का निश्चय करते हैं और न अंगद सुग्रीव के प्रति कठोर वचन कहते हैं।

हो सकता है कथा के संक्षिप्त-रूप में होने के कारण इस परिस्थिति पर इसमें प्रकाश नहीं डाला गया हो। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि सुग्रीव ने इस तरह की कठोर आज्ञा नहीं दी होगी क्योंकि 'महाभारत' और 'वाल्मीकीय रामायण' का सम्पादन-काल प्रायः एक ही है। इनमें मूल में इतना अन्तर आ जाना सम्भव नहीं।

'सूरसागर', 'पद्मपुराण' तथा 'अद्भुत रामायण' में भी उपर्युक्त प्रसंग नहीं है।

× × ×

अब उत्तर, पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में गये वानरों के यूथ वापस सुग्रीव के पास लौट आये थे। दक्षिण दिशा में गये वानर सीता को न पाकर निराश हो प्रायोपवेशन करने को तत्पर हो गये। सभी वानर अपने मरण की कामना करते हुए राम के वनवास, दशरथ के मरण, जनस्थान के नाश, जटायु-वध, वैदेही के हरण, बालि के वध और राम के क्रोध इत्यादि की बातें करने लगे। इसमें भी वहीं निराश-

काय जटायु का भाई सम्पाति नामक गृध्रराज आ गया। उसे देखकर सभी वानर भयभीत हो गये। सम्पाति कहने लगा कि मैं अब एक-एक वानर को खा जाऊँगा। जब वानरों ने उसके भाई जटायु की सारी कथा उसे सुनाई कि कैसे उसने राम की सहायता की थी, कैसे वह राक्षसराज रावण से सीता को छुड़ाने के लिये लड़ा था और अन्त में मारा गया, तो सम्पाति ने भी अपनी स्वयं की कथा सुनाई। सम्पाति ने सीता का हरण करने वाले रावण का पूरा पता आदि बता दिया और उसने कहा—हे वानर लोगो! तुम शीघ्र परिश्रम करो। मैं अपने ज्ञान द्वारा जानता हूँ कि तुम देखकर लौट आओगे। देखो, समुद्र के पार जाने के लिये आकाश-मार्ग का आश्रय लेना पड़ेगा। उसमें सात भेद हैं—पहला मार्ग कुलिङ्ग कबूतर प्रभृति धान्यजीवी पक्षियों का, दूसरा मार्ग बलि-भोजी कौए इत्यादि का है, तीसरा फल-मूल भोजी; माँस कुरर कौञ्च इत्यादि का चौथा रास्ता है। गृध्रों का पाचवा रास्ता है और बल-वीर्य-शाली रूप-यौवन सम्पन्न हंसों का छठा मार्ग है। गरुड़ की गति तो सबसे तेज ही है। हे वानरो! हमारी गृध्र जाति की उत्पत्ति गरुड़ के बड़े भाई अरुण से है। इसलिये अब तुम इस लवण-समुद्र के पार जाने का उपाय करो।

इसके बाद सम्पाति ने विस्तारपूर्वक अपना सारा समाचार सुनाया और साथ में वह भी सुनाया जो ऋषि ने उससे कहा था कि जब राम की स्त्री सीता को खोजते वानर लोग यहाँ आयेंगे तब तेरे पंख फिर उग आयेंगे। उसने कहा—हे वानरो! अब मेरी इच्छा है कि राम-लक्ष्मण को देखूं और उनके दर्शन कर अपने प्राणों का त्याग कर दूँ।

सम्पाति चला गया।

इस स्थान पर प्रसंगवश सम्पाति और जटायु की कथा पर भी विचार करना आवश्यक है। इस कथा में अधिकतर भाग चमत्कार से भरा है और इस रूप में कथा निम्न प्रकार से है :

सम्पाति वानरों से कहता है—हे वानरो! वृत्रासुर के वध के समय मैं और मेरा भाई जटायु परस्पर जीतने की इच्छा से अर्थात् यह देखने के लिये कि कौन अधिक शक्तिशाली है हम दोनों उड़ चले, और बड़े वेग से आकाश-मार्ग से स्वर्ग तक पहुँचे। उड़ने से पहले यह प्रतिज्ञा कर ली कि जो पहले सूर्य को छू लेगा उसका बल अधिक समझा जायगा परन्तु जब सूर्य मध्य में आया तब जटायु पीड़ित हुआ। उस समय मैंने स्नेहपूर्वक अपने भाई के पंखों को ढक लिया परन्तु मेरे दोनों पंख जल गये। मैं अवश होकर विंध्य पर्वत पर गिर पड़ा। मुझे ६ दिन में चेत हुआ।

यहाँ पर एक पवित्र आश्रम था जिसमें बड़ी कठोर तपस्या करने वाले एक निशाकर नामक ऋषि रहते थे। जब वे स्वर्ग चले गये तो ८००० वर्ष तक मैं यहाँ बना रहा। मैं निरन्तर ऋषिजी के दर्शन की प्रतीक्षा करता था। मैं उस आश्रम के एक

वृक्ष के नीचे बैठ गया। इतने में ही दूर से मैंने उन ऋषि को देखा। वे तेजस्वी ऋषि स्नान किये उत्तर-मुख चले आते थे। उनके चारों ओर सांभर नामक मृग, व्याघ्र, सिंह और नाना प्रकार के सर्प चले आते थे।

ऋषि ने कहा—हे भद्र ! तुम्हारी सूरत देखकर मैं तुम्हें पहचान नहीं सका। तुम्हारे पंख जल गये हैं। तुम सम्पाति हो, जटायु तुम्हारा छोटा भाई है। तुम दोनों ने मनुष्य का रूप धारण करके मेरे चरणों का स्पर्श किया था।

सम्पाति ने अपना सारा वृत्तान्त कहा। इसे सुनकर ऋषि ने दुःखित होकर कहा—हे गृध्र ! तू चिन्ता मत कर, तेरे पंख फिर से उगेंगे। मैंने पुराण में सुना है कि एक बड़ा कार्य होने वाला है। इक्ष्वाकु-वंश के राजा दशरथ के महातेजस्वी राम नामक पुत्र उत्पन्न होगा, उनकी स्त्री का जनस्थान से हरण होगा। उसीको खोजते वानर यहाँ आयेंगे। तुम उनसे रामचन्द्रजी की रानी का समाचार कहना और इस स्थान से कहीं मत जाना। उन राजपुत्रों का कार्य करना।

यह हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि गृध्र एक जाति थी। गृध्र पक्षी उनका टॉटम रहा होगा न कि जाति के सब लोग ही पक्षी थे। हो सकता है नागों की तरह वे लोग भी गृध्र की आकृति का कोई चिह्न अपने गले या सिर पर पहनते हों, लेकिन यह विद्वानों ने माना है और उपर्युक्त कथा इसकी साक्षी है कि यह गृध्र जाति गरुड़ जाति से मिलती-जुलती ही जाति थी, सम्भवतया दोनों का मूल एक ही था। नाग और गरुड़ जाति अति प्राचीन अनार्य जातियाँ हैं जो ग्रीस तक फैली थीं। ग्रीक माइथोलॉजी (Mythlogy) में नागों तथा गरुड़ों की अनेक कथायें आती हैं। उपर्युक्त कथा बताती है कि जिस समय इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा था उस समय गृध्र काफी सशक्त थे। सम्पाति तथा जटायु का सूर्य तक उड़कर जाना एक चमत्कार. लेकिन हमारा अनुमान है कि गृध्रराजा सम्पाति तथा इसके छोटे भाई जटायु ने मिलकर सूर्य की उपासना करने वाली जातियों में से किसी पर आक्रमण किया होगा और उनसे इनको परास्त होकर लौटना पड़ा होगा, लेकिन अब प्रश्न यह है कि क्या इन्द्र के समय में जीवित सम्पाति और जटायु आर्य राम के समय तक जीवित रहे, यह पौराणिक कथाओं का आम चमत्कार है जिसमें देशकाल का विचार शून्य के बराबर होता है, खैर, इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्पाति तथा जटायु के पूर्वज राजाओं से सूर्योपासक जाति का युद्ध हुआ होगा, और वही कथा कालान्तर में चमत्कार बनकर इनके साथ-जुड़ गई। 'महाभारत' में कथा आती है कि गरुड़ ने देवों से युद्ध किया विष्णु ने बीच बचाव किया। गरुड़ देवों के सामने झुक गया था। इसी गरुड़ के भतीजे, अरुण के बेटों से दो पुत्र हुए थे—जटायु तथा सम्पाति। गरुड़ और देवों का संघर्ष प्रारम्भिक रूप में आर्य-अनार्य संघर्ष-शृंखला में माना जाता है क्योंकि गरुड़ आर्येतर जातियों का ही टॉटम देवता था। असुर देवता का चिह्न गरुड़ जैसा था, वह मायावी था।

मिस्री देवता रा—सूर्य भी गरुड़-मुख हैं। होरस देवता भी गृध्र-मुख है। कालान्तर में जाकर गरुड़ विष्णु से मिल गया, वह उसका वाहन बना। यह आर्य एवम् आर्येतर जातियों के सम्मिलन-स्वरूप उनके देवताओं की आपस की अन्तर्मुक्ति थी।

इसी प्रकार निशाकर नामक ऋषि की भविष्यवाणी भी मूल कथा में परवर्ती विकास है। ये ऋषि कोई अनार्य ऋषि ही थे, तभी इनके साथ अनेक पशु सहयोगी के रूप में मिलते हैं। ऋषि के साथ सर्पों का होना, प्रकट करता है कि राम के समय में कहीं-कहीं गृध, गरुड़ तथा नागों में परस्पर मित्रता हो गई थी। इस अनार्य ऋषि के साथ राम के विषय में की गई भविष्यवाणी की कल्पना उस समय की मालूम होती है जब महाभारत के बाद जातियों की विराट् अन्तर्मुक्ति के समय अनार्य पुरोहित-वर्ग आर्य पुरोहित-वर्ग में समा गया था और तब एक-दूसरे के देवता सबको मान्य थे। इसी प्रकार जब परवर्ती काल में राम ब्राह्मण-पुरोहितवर्ग में एक ईश्वर के अवतार के रूप में माने गये तो इसी प्रकार के विश्वास का प्रतिपादन अनार्य ऋषियों के मुँह से भी विभिन्न कथाओं में हुआ लेकिन वैसे यह भविष्यवाणी की बात बहुत बाद की पौराणिक समय की ही कल्पना मालूम होती है क्योंकि ऋषि निशाकर पुराण की बात पर विश्वास करके ही यह कहते हैं जबकि राम के समय में तो वेदों का निर्माण हो रहा था।

कुछ भी हो, कथा का ऐतिहासिक दृष्टि से औचित्यीकरण करते हुए ही हमने अपना मत रखा है, विद्वान् इन पर विचार करें।

× × ×

सम्पाति के चले जाने के पश्चात् सभी वानर समुद्र का विस्तार देखकर भयभीत हो गये। वे आपस में विचार करने लगे कि इसे कैसे पार किया जाय। उन्होंने अपनी-अपनी शक्ति का अन्दाजा किया कि कौन कितनी दूर उड़कर जा सकता है। उस सारे वानर-समूह में कोई ऐसा शक्तिशाली वीर वानर नहीं निकला जो उस सौ योजन के समुद्र को लाँघकर फिर सीता की खबर लेकर वापस आ जाय। जब सब निराश हो गये तो वृद्ध जाम्बवान ने हनुमान के सोये पौरुष को जाग्रत किया, उसकी हर तरह से प्रशंसा की। अब हनुमान उस समुद्र को लाँघने के लिये उद्यत हो गये।

'रामचरित मानस' में जाम्बवान ने हनुमान को यह याद और दिलाया है कि राम के कार्य के लिये ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। हनुमान ने पहले तो महेन्द्र पर्वत पर खड़े होकर गर्जना करके अपने पौरुष का बखान किया और फिर वे लंका की ओर आकाश-मार्ग से उड़कर जाने का निश्चय करने लगे। महेन्द्र पर्वत के आस-पास यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा नाग जातियों के लोग रहते थे। पहले ये जातियाँ भारत के उत्तर प्रान्तों में रहती थीं लेकिन आर्यों के आक्रमण के पश्चात् इन अनार्य जातियों के झुंड बिखर गये। बहुत से लोग दक्षिण में आकर बस गये।

'वाल्मीकीय रामायण' में उल्लेख है कि जब महेन्द्र पर्वत के पास नागों ने वानरों का कोलाहल सुना और विशालकाय हनुमान का यह निश्चय सुना कि वह समुद्र-पार जाना चाहता है तो उनमें हलचल मच गई। वे यह समझकर कि ब्रह्मराक्षस इत्यादि भूतगण इस पर्वत को पूरी तरह विदीर्ण करना चाहते हैं, भयभीत होकर अपनी वस्तुओं को जहाँ की तहाँ छोड़कर भाग गये। पानभूमि में बिछे उनके सुवर्ण के आसन, बड़े-बड़े मोल के पात्र, सोने के करवे अनेक प्रकार के लेह्य तथा भोजन के पदार्थ, अनेक भाँति के माँस, साबर के चमड़े की बना ढाल और सुवर्ण के मूठ वाले सुन्दर खड्ग वहीं पड़े रह गये। वे नाग मतवाले थे, गले में अच्छी-अच्छी माला पहनते थे। ये सुन्दर-सुन्दर पुष्पों के हारों और मनोहर अंगरागों से भूषित थे। इनकी स्त्रियाँ हार, नूपुर, बिजायठ और के कंकण से सुशोभित थी।

रामायण में आया उपयुक्त नागों का वर्णन इस ऐतिहासिक निर्णय का साक्षी है कि नाग एक वैभवशाली जाति थी जिसके पास अपार धन था। यह जाति समुद्र के पार भी देश-विदेशों से व्यापार करती थी। ये अनेक प्रकार के आभूषण पहनते थे। नागों की स्त्रियाँ अतिरूपवती होती थीं। समुद्र-तट पर इन नागों का बसा रहना यह बताता है कि इनका भारत के दक्षिण में समुद्र पर खूब व्यापार चलता था। रामायण में वर्णित हनुमान का समुद्र को लाँघना एक चमत्कार है, क्योंकि इतने बड़े समुद्र को लाँघ कर पार कर जाना मानव-सामर्थ्य के बाहर है, और हनुमान के साथ किसी अलौकिक शक्ति को जोड़कर इस घटना को सिद्ध करना भक्ति का विषय है, वैज्ञानिक तर्क का नहीं। हमारा अनुमान है कि हनुमान किसी नाव में बैठकर ही समुद्र के पार गये होंगे क्योंकि महाभारत का रामोपाख्यान इसका साक्षी है।

जब रामचन्द्र ने सुग्रीव और अन्य प्रधान वानरों से पूछा कि समुद्र को किस तरह पार करना चाहिये तो उनमें से कुछ ने नाव-डोंगी-तोंबी आदि के सहारे पार जाने की बात कही।

राम ने सबको समझाते हुए कहा—सब के सब वानर सौ योजन के समुद्र को नहीं लाँघ सकते इसलिये तुम्हारी यह सलाह ठीक नहीं है। हमारी सेना को पार पहुँचाने वाली नावें उतनी अधिक नहीं हैं और दूसरे जलमार्ग से व्यापार करने वाले व्यापारियों के रोजगार में बाधा पहुँचना भी मुझ-जैसे पुरुष को स्वीकार नहीं है। डोंगी, घरनई, आदि के सहारे पार होना मैं इसलिये पसन्द नहीं करता कि उस समय फैली हुई मेरी सेना को मौका पाकर शत्रु सहज ही नष्ट कर सकता है

महाभारत का उपयुक्त वर्णन इसको और अधिक स्पष्ट करता है कि भारत और लंका के बीच के समुद्र में व्यापारियों के अनेकों पोत चलते थे। समुद्र-मार्ग से व्यापार करना तो बहुत पुरानी बात है, यहाँ तक कि वैदिक युग से पहले भी भारत के व्यापारी नावों द्वारा दूर-दूर देशों में अपना माल बेचने जाया करते थे। ऋग्वेद

में पोतों द्वारा समुद्री व्यापार का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल की कथाओं में धर्म के नाम पर प्रखण्ड विश्वास करने वाले व्यक्ति यह भी कहते हैं कि प्राचीन काल में विमान चलते थे, हो सकता है हनुमान आकाश-मार्ग से किसी विमान द्वारा गये हों। पौराणिक कथाओं में इन विमानों का वर्णन हमें कोरा चमत्कार मालूम होता है क्योंकि यह साधारण तर्क की बात है कि जो आविष्कार एक बार प्राचीन काल में हो चुका था, वह निरन्तर विकास न करके कुछ समय पश्चात् एक साथ लुप्त हो गया। सिवाय इतिहास के अधकार-युग के इन विमानों का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। बुद्ध के समय में ये विमान कहाँ चले गये ? इसके बाद क्या यह पूरा उद्योग (Industry) ही बन्द हो गया। समुद्री-मार्ग से चलने वाली नावों का तो निरन्तर विकास हुआ और वे हर समय भारत मे रहीं। नदियों तथा समुद्र-मार्ग से व्यापार का उल्लेख प्रत्येक ऐतिहासिक युग में मिलता है। भारत में विमान (Aeroplanes) जिन्हें हवाई जहाज कहते हैं अंग्रेजों के राज्यकाल में ही आये। सोचने की बात है कि प्राचीन काल में नावों से व्यापार करने का उल्लेख तो मिलता है लेकिन विमानो द्वारा व्यापार करने का उल्लेख नहीं मिलता, क्यों ? क्योंकि परवर्ती कथाकारों ने इन्हें राजाओं तथा देवताओं के साथ ही दिखाया है, ये विमान समाज में आमतौर से प्रचलित नहीं थे। हमारा अनुमान है कि देवताओं को आकाशवासी सिद्ध करने के लिये ही इन विमानों की उनके साथ कल्पना की गई है। बाद में देवताओं के तुल्य महापराक्रमी राजाओं के साथ भी ये विमान जोड़ दिये गए हैं। वास्तव मे यह एक चमत्कार का विषय ही है। ऐसा पुष्पकविमान जो एक स्वनियंत्रित (automatic) यन्त्र से भी बढ़कर मनुष्य की आज्ञा से एक निश्चित स्थान पर पहुँच सकता था, क्या इस बात की ओर संकेत करता है कि वह प्राचीन बर्बर दास-प्रथा का युग, जब उत्पादन के साधन अत्यंत पिछड़े हुए थे, कोई उन्नतिशाली मशीन-युग था। ऐतिहासिक अन्वेषण करने वाला व्यक्ति कम-से-कम ऐतिहासिक विकासक्रम में इसको तो नहीं मान सकता, वैसे यह दूसरी बात है कि व्याकरणशास्त्र के बल पर आर्य समाजी सज्जन वेद में एक समृद्धिशाली यान्त्रिक-युग की खोज कर डालें। लेकिन यह ऐतिहासिक यथार्थ पर अपने आदर्शगत दम्भ को लाद देना होगा।

हमारा उद्देश्य तो चमत्कारों को हटाकर कथा के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करना है।

सम्पाति द्वारा बताये गये आकाश-मार्ग परवर्ती कल्पना है जो उस समय की गई थी, जब इन प्राचीन जातियों को पूरी तरह पक्षी ही समझ लिया गया था। हमारा अनुमान है कि मूल रामकथा मे इस तरह का प्रसंग नहीं रहा होगा। इसी तरह यह कल्पना की गई है कि रावण आकाश-मार्ग से सीता को ले जा रहा था तो गृध्रराज जटायु ने आकाश में उड़कर उसका सामना किया। वास्तव में देखा जाय तो

प्राचीन कथाओं में आकाश में उड़कर चला जाना एक मामूली-सी बात दीखती है, नाग भी हनुमान से भयभीत होकर आकाश में चले गये। इसी प्रकार ग्रीक माइथोलोजी में भी लोगों का आकाश में उड़ना वर्णित है। देवों के साथ तो यह चमत्कार विशेषरूप से स्थायी है, इसका एकमात्र कारण यही दीखता है कि पौराणिक कथाकारों का इतिहास का ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित नहीं था, बल्कि श्रद्धा और विश्वास के सहारे किसी प्रचलित कथा की स्वीकृति ही उसका एकमात्र आधार था। उसमें तर्क द्वारा आन्तरिक स्थूल सत्य को खोजने का प्रश्न नहीं के बराबर था। पौराणिक कथाओं के अनुसार देव आकाशवासी हैं लेकिन प्रागैतिहासिक काल का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने बताया है कि आर्यों से बहुत पहले ही एक देव जाति थी जो पृथ्वी पर ही रहती थी।

'अथर्ववेद' में देवों को इसी पृथ्वी का वासी बताया गया है। ये देव सूर्य के उपासक थे। 'शतपथ ब्राह्मण' में पहले पैदा होने वाले व्यक्तियों को देव तथा बाद में पैदा होने वालों को मनुष्य कहा गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि देव और मनुष्य एक ही समय जन्मे, मनुष्यों को ही प्राचीन काल में देव कहते थे।

'ऋग्वेद' में यह भी उल्लिखित है कि पहले मनुष्य थे बाद में देव हो गये।

मेरा मत है कि देव और मनुष्य का यह भेद कालक्रम में हो गया।[1]

वास्तव में यह देव-जाति-समूह ही कालान्तर में पूर्व तथा पश्चिम की तरफ फैल गया। इन देवों का राजा इन्द्र था, जो कालान्तर में आर्यों का देवता बन गया। वेद में इन्द्र की उपासना विस्तृत रूप में की गई है। ग्रीकों में भी ज़ियस (Zeus) इन्द्र का परवर्ती स्वरूप मालूम होता है। इसलिये जिस तरह देवों का राजा इन्द्र परवर्ती काल में आर्यों का देवता बन गया उसी प्रकार ये देव भी आकाशवासी बन गये, इसीलिये देवताओं के बारे में आज भी यह विश्वास है कि वे आकाशवासी हैं। अनेक पौराणिक कथाओं में इन्हीं देवताओं ने आकाश से विभिन्न अवसरों पर पुष्पवर्षा की है। हम इन सबको धार्मिक अन्धविश्वास के अन्तर्गत एक चमत्कार ही मानते हैं, जैसे-जैसे भारतीय इतिहास का अध्ययन किसी प्रकार के धार्मिक तथा साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों से हटकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर होता जायेगा उतने ही ये चमत्कार दूर होंगे और हम अपने अतीत की सच्ची झाँकी देख पायेंगे।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित हनुमान का उड़कर लंका जाना अन्य रामकथाओं में भी इसी प्रकार स्वीकार किया गया है। 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' के अनुसार भी हनुमान उड़कर ही लंका को गये थे। मार्ग में हनुमान को अनेक [illegible]

1. प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास, पृ० ४०।

यह देखकर अपना रूप पूर्ववत् कर लिया और हनुमान को उनकी कार्यसिद्धि के लिये आशीर्वाद दिया।

इस कथा का यही चमत्कारमयी वर्णन अन्य रामकथाओं में मिलता है। सुरसा को नागमाता कहा गया है। इससे यह अवश्य अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतया हनुमान को रास्ते मे नागों ने रोका था और सुरसा नामक उनकी कोई देवी रही थी जिसको आगे करके वे उसके रास्ते में आये थे लेकिन हनुमान छल करके उनके पंजे में से निकल गये। सुरसा के बारे में कथा मिलती है कि कश्यप की पत्नी का नाम ताम्रा था। उसकी पुत्री शुकी थी। उसकी पुत्री नटा थी। नटा की पुत्री विनता थी। विनता की पुत्री सुरसा थी। विनता के नाग तथा कद्रू के सर्प हुए।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरसा नागों की माता के रूप में आदिम देवी थी। नाग अपनी उत्पत्ति उससे मानते थे। देवी या देवता के लिये चमत्कारमयी वर्णन हमेशा से होते आये हैं इसी परम्परा में यह वर्णन भी है।

इसके बाद एक सिंहिका नामक राक्षसी ने इनकी छाया द्वारा इनको पकड़ना चाहा लेकिन उन्होंने उसका भी वध कर डाला। आकाशचारियों ने हनुमान को आशीर्वाद दिया कि वे अपने कार्य में सफल हों। अन्त में हनुमान ने समुद्र पार कर लिया और वे त्रिकूट पर्वत पर उतर कर लंका की शोभा देखने लगे।

हनुमान का इतनी बाधाओं के बीच समुद्र पार करना यह व्यक्त करता है कि इस छोटे से समुद्री हिस्से पर भी अनेक जातियाँ नाग, किन्नर, राक्षस इत्यादि अपना अधिकार रखती थी और उस समय अन्य जाति के व्यक्ति को समुद्र पार करने मे इनका विरोध सहना पड़ता था।

कथा में आये विभिन्न चमत्कारों के नीचे यह ऐतिहासिक सत्य पूरी तरह दब गया मालूम होता है।

हनुमान ने लंका का पूरा वैभव देखा और फिर भयंकर राक्षसों को देखकर मन में शंकित होकर विचार करने लगे—इस लंका में आकर तो वानरों से युद्ध नहीं बन पायेगा, क्योंकि युद्ध में इन राक्षसों को जीतने की सामर्थ्य तो देवताओं में भी नहीं है। इस महाविषम दुर्गम लंका में रामचन्द्र आकर क्या करेंगे फिर साम, दान, दण्ड, भेद—इन चारों में से एक की भी दाल इन राक्षसों में नहीं गल सकती। यहाँ तो केवल चार वानरों की ही गति दीखती है—एक तो अंगद की, दूसरे नील की, तीसरे मेरी और चौथे हमारे महाराज सुग्रीव की।

इस प्रकार की शंका अन्य रामकथाओं में हनुमान के हृदय में नहीं उठती। 'रामचरित मानस' में तो तुलसीदास जी को इन राक्षसों की नगरी का इतना वैभव-

१. एपिक माइथोलोजी, पृ० २३

वाली वर्णन करना मंजूर नहीं था। इन्होंने तो उन दुष्ट राक्षसों को भैंसे, मनुष्य, गाय, घोडे, गधे आदि भक्ष्य-अभक्ष्य खाने वाला बताया है और अन्त में स्पष्ट शब्दों मे यह कह गये हैं कि मैंने तो इनकी कथा इसलिये थोड़ी सी कही है कि ये निश्चय ही राम के बाणों से अपने शरीरों को त्यागकर परम गति पावेंगे।

राक्षसों के इस तरह भक्ष्य-अभक्ष्य खाने में कुछ सत्य अवश्य है। राक्षस माँस खाते थे लेकिन प्रत्येक पशु-पक्षी, यहाँ तक मनुष्य का माँस खाने की बात उनके प्रति कथाकार की घृणात्मक प्रवृत्ति को ही प्रकट करती है। पौराणिक कथाओ मे प्रायः राक्षसों के वर्णन के साथ यह मिलता है, यहाँ तक कि कहीं-कही तो जानवरों के सदृश उनके सिर पर सीगों की कल्पना भी की गई है।

अब कपि-कुंजर हनुमान उस पर्वत के शृंग पर पल-भर ठहर कर रामचन्द्र के कार्य के लिये फिर सोच-विचार करने लगे कि मैं किस तरह नगर में प्रवेश करूँ, जिससे कोई मुझे पहचान न सके। 'वाल्मीकीय रामायण' मे वे सूर्यास्त के पश्चात् बिडाल के सदृश छोटा अद्भुत रूप धारण करके प्रदोष-काल में कूदे और उस रमणीय सुन्दर राजमार्गों से भूषित लका में जा घुसे।

'मानस' मे वे केवल मसक (मच्छर) के समान रूप बनाकर नगर में घुसे।

जब वायु-पुत्र ने सात-सात, आठ-आठ खण्डों वाले गृहों को देखा। राक्षसो के गृहद्वारों के तोरण सुवर्ण-निर्मित और अनेक चित्रों से शोभित देखे, तो वे लंका का अचिन्तनीय और अद्भुत रूप देखकर मन में कुछ चिन्तातुर हुए और सीता से मिलने की उत्कंठा करने लगे।

अन्य रामकथाओं में हनुमान के शंकित एवं चिन्तायुक्त होने का वर्णन इसीलिये नही मालूम होता क्योंकि राम के साथ हनुमान भी तो ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों का पूज्य देवता बन गया था। एक रामभक्त देवता को तो जहाँ तक हो सके अजेय और दैवी सामर्थ्य रखने वाला ही दिखाना परवर्ती कथाकारों को मान्य था।

जब हनुमान लंका मे घुसे तो उन्हें एक लंकिनी नामक राक्षसी मिली। उसने उन्हें रोका तब हनुमान ने उसका वध कर दिया। 'वाल्मीकीय रामायण' में साक्षात् लंकापुरी को ही राक्षसी का वेश बनाकर आता दिखाया गया है लेकिन 'मानस' में उस लकिनी राक्षसी को इस तरह दिखाया गया है जैसे मानो वह लंका के एक द्वार पर पहरा देती हुई रहती थी। 'अध्यात्म रामायण' में भी 'वाल्मीकीय रामायण' का समर्थन है। अन्य रामकथाओं ने तुलसी के मत को स्वीकार किया है।

लका का राक्षसी बनकर आना चमत्कारमयी कल्पना है, सम्भव हो सकता है कि हनुमान लंका के विशाल रूप को देखकर पहले कुछ भयभीत हुए हों और उन्हें वह नगरी एक विशालकाय राक्षसी के तुल्य दीखी हो, लेकिन फिर उन्होने अपने मन की

निराश व असहाय अवस्था पर विजय पाई मानो उस राक्षसी का भयंकर रूप उनके हृदय से ध्वस्त हो चुका था और वे सीता को पाने का नया संकल्प लेकर आगे बढ़े थे।

हम रामायण मे वर्णित इस लंकिनी को एक ऐतिहासिक कथा की पात्री न मानकर कवि की कल्पना ही मानते हैं, जैसा कि रामकथा से विदित होता है कि लंकिनी लंका की एक महत्वपूर्ण द्वार-रक्षिका थी, तब तो उसका हनुमान द्वारा मारा जाना लंका के द्वार का टूटना था लेकिन हमें इस प्रसंग में कहीं नहीं मिलता कि इतनी महत्वपूर्ण घटना हो जाने के पश्चात् रावण को इसका पता भी लगा हो। हनुमान ने इसके पश्चात् छिपे-छिपे सारी लंका ढूँढ डाली। जब उन्होंने अशोक-वाटिका को उजाड़ा और रावण के पुत्र अक्षयकुमार का वध कर डाला तभी रावण की आँखें खुली कि कोई वानर आकर लंका में उपद्रव करना चाहता है। नागमाता सुरसा का रूप कवि की कल्पना में से उठा है या नाग-जाति के किसी पुराने उल्लेख का रूप है। उसी प्रकार लंकिनी भी या तो कथा में औत्सुक्य का सृजन करने के लिये या राम को अवतार-रूप में प्रस्तुत करने के लिये ही कवि-कल्पना की सुन्दर अभिव्यक्ति बनी, या कोई अन्य कथा है।

हनुमान की मुष्टिका से विचलित होकर लंकिनी ने ब्रह्मा के वरदान के रूप में जो राक्षसों के विनाश की भविष्यवाणी की थी वह मूल रामकथा में अपना स्थूल महत्व नहीं रखती बल्कि इसका एकमात्र उद्देश्य सम्प्रदाय विशेष की विचारधारा का प्रतिपादन करना ही है, अतः हम इस सबको भी कवि की कल्पना के साथ क्षेपक मात्र ही मानते हैं।

अब हनुमान उस रमणीय पुरी में घुसे। उन्होंने वहाँ अनेक प्रकार के घर देखे, जिनमें किसी में वज्र की और किसी में अंकुश की प्रतिमा थी। इन प्रतिमाओं के होने से यह स्पष्ट होता है कि राक्षसों के जीवन में युद्ध का विशेष स्थान था, यों तो प्राचीन काल में प्रत्येक ही जाति को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये प्रायः युद्ध करना पड़ता था लेकिन राक्षसों की विशाल शक्ति थी, जिसके बल पर ही राक्षसराज रावण ने गन्धर्व, नाग, किन्नर आदि को जीत लिया था। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रों की पूजा आर्य-जाति में भी क्षत्रिय समुदाय में चलती थी, उसी परम्परा के रूप में आज भी राजपूत लोग तलवार में सिन्दूर लगा कर धूप देकर उसकी पूजा करते हैं।

हनुमान ने लंका में राक्षसों का वैभव देखा। उन्होंने अनेक रूपों के राक्षसों को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित पाया। विशाल भवनों से मन्द्र, मध्य और तार के स्वरों से मिश्रित संगीत की ध्वनि सुनाई देने लगी, कामोन्मत्त स्त्रियाँ, कोई सीढ़ियों पर चढ़ती थी, कोई उतरती थी। वे स्वर्ग की अप्सराओं के समान सुन्दर थीं। राक्षस भी मालाएँ पहने, देह में अंगराग लगाये, अच्छे भूषण पहने थे। उन्होंने नाना प्रकार के वेष बना लिये थे। वहाँ पर्वत के शिखर पर विराजमान राक्षसराज का विख्यात गृह दिखाई दिया।

हनुमान ने उस राजभवन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने बुद्धिमान और सुन्दर बोलने वाले ऐसे राक्षसों को देखा जो विश्वासी अर्थात् आस्तिक, नाना प्रकार के अच्छे नाम-धारी, सुन्दर, रूपवान, अनेक गुणों से पूर्ण और अपने गुणों के योग्य प्रकाशमान थे। इन्हें देख कर हनुमान अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन राक्षसों की स्त्रियाँ अति योग्य, शुद्ध-चित्त, महा प्रभावशाली, अपने पतियों पर अत्यन्त प्रेम करने वाली और पान करने में आसक्त थीं। वे ताराओं के तुल्य निर्मल थीं। शील भी उनका अच्छा था। उनमें कई-एक तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य और कई एक चन्द्र के तुल्य वर्ण वाली थीं। उनके मुख ऐसे लगते थे मानो अनेक चन्द्र पंक्ति बाँधकर उदित हुए हों। उन मृग-नयनियों के भूषण ऐसे चमचमा रहे थे मानो अनेक बिजलियाँ चमक रही हों।

हनुमान ने इन सबको तो देखा लेकिन धर्म-मार्ग पर आरूढ़ सदा पति के ध्यान में लगी रहने वाली सीता को नहीं देखा।

'वाल्मीकीय रामायण' का उपर्युक्त वर्णन उत्कृष्ट काव्य का तो सुन्दर नमूना है ही, इसके अलावा इससे कई-एक तथ्य हमें प्राप्त होते हैं। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि राक्षसियों में पातिव्रत धर्म की विशेष मान्यता थी। यद्यपि राम के शत्रु राक्षसों के प्रति रामकथा के कथाकार का घृणात्मक दृष्टिकोण ही रहा है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में यह दृष्टिकोण वस्तुसत्य पर पर्दा नहीं डाल सका है, परवर्ती रामकथाओं में राक्षसों के इस प्रकार के आदर्श जीवन का चित्रण नहीं मिलता। 'अध्यात्म-रामायण,' 'रामचरित मानस' तथा अन्य रामकथाओं में तो उपर्युक्त वर्णन ही नहीं है। राक्षसों की स्त्रियों का इतना रूपवती होना भी उनमें वर्णित नहीं है। क्योंकि जहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' में राक्षसों के जीवन के बारे में किसी हद तक ऐतिहासिक सत्य मिलता है वहाँ अन्य परवर्ती रामकथाओं में कथाकार का कल्पनाजन्य सत्य ही अधिक मिलता है।

इसके बाद हनुमान ने रावण के अनेक प्रधान राक्षसों के भवनों को देखा। पहले वह प्रहस्त के भवन पर गये और वहाँ से महापार्श्व के और फिर कुम्भकर्ण के। तदनन्तर विभीषण, महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, मेघनाद, जम्बुमाली, सुमाली, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, वज्रकाय, धूम्राक्ष, सम्पाती, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, शतनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्र, रोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, सादी, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, आदि सबको उत्तमोत्तम और अनेक प्रकार की समृद्धियों से भरे भवनों में जाकर कपि ने देखा। फिर सब घर लाँघ कर वे राक्षसेन्द्र के निवास-स्थान में पहुँचे।

'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार हनुमान ने विभीषण का घर साधारण रूप से ही देखा लेकिन 'रामचरित मानस' में हनुमान ने देखा कि :

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि को मंदिर तँह भिन्न बनावा॥

वह भवन कैसा था ?

> रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
> नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरषि कपिराइ॥

यह देखकर हनुमान अपने हृदय में आश्चर्य करने लगे। उन्होंने कहा :

> लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥

हनुमान अपने मन में इस प्रकार की शंका कर ही रहे थे कि विभीषण जागा। हनुमान ने देखा कि :

> राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

हनुमान ने सोचा कि यह अवश्य कोई साधु है, मैं इससे अवश्य परिचय प्राप्त करूँगा। वे ब्राह्मण का वेश बनाकर विभीषण के पास गये। विभीषण ने हर्षित होकर उनकी कुशल पूछी और फिर पूछा :

> की तुम्ह हरिदासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई।
> की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥

इसके पश्चात् हनुमान ने रामचन्द्र जी की सारी कथा कही, जिसे सुनकर विभीषण प्रेमानन्द में मग्न हो गये। विभीषण ने अपनी मुसीबतें बताते हुए हनुमान से कहा :

> सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥
> तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥

यह कहकर विभीषण अपनी भक्ति के साधना के बारे में कहने लगे :

> तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
> अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

इस प्रकार हनुमान जी से मिलकर कृतार्थ हुए विभीषण ने उन्हें सीता के रहने का स्थान बताया। 'अध्यात्म रामायण' में स[illegible]नी ने स्वयं हनुमान को सीता के निवासस्थान अशोकवाटिका का पता दिया था। 'वाल्मीकीय रामायण' में हनुमान स्वयं सीता को खोजते हुए वहाँ पहुँचे थे।

तुलसीदास जी ने जो विभीषण का वर्णन किया है वह एक सात्त्विक विभीषण का वर्णन है, 'वाल्मीकीय रामायण' में विभीषण सात्त्विक तो नहीं है बल्कि वह एक [illegible] और न्यायवादी व्यक्ति है जो समय-समय पर रावण को नेक तथा धर्मयुक्त सलाह देता है। 'अध्यात्म रामायण' में भी विभीषण एक न्यायपूर्ण [illegible] के रूप में ही वर्णित है। '[illegible]' में वह [illegible] है।

उपर्युक्त तुलनात्मक वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि विभीषण की [illegible] के रूप में कल्पना करते हैं [illegible] भक्त[illegible] [illegible] राम को [illegible]

से कुछ शताब्दी पूर्व की है तब विभीषण को त्रेतायुग में रामभक्त दिखाना ऐतिहासिक यथार्थ को अस्वीकार करना है, चूंकि अपने बड़े भाई रावण की निरंकुशता से खिन्न होकर विभीषण राम से आ मिला था, इसलिये राम को भगवान् रूप में चित्रित करने वाली रामकथाओं ने विभीषण को भी एक रामभक्त के रूप में चित्रित किया। तुलसीदास जी ने तो इसके लिये पहले ही पृष्ठभूमि तैयार कर रखी थी। हमारा अनुमान है कि विभीषण राक्षसों में उठे उस छोटे-से समुदाय के नेता थे जो राक्षसराज की निरंकुशता तथा बर्बर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के विरोध में खड़ा हुआ था। उनकी दृष्टि में रावण का बलपूर्वक नाग-कन्याओं, गन्धर्वियों आदि का हरण कर लाना अन्याय था, इसलिये सीता का हरण भी उन्हें आर्य राम का प्रति अन्याय लगा। विभीषण ने इसका विरोध भी किया लेकिन वह शक्ति के साथ उस निरंकुश सत्ता को इस अधर्मयुक्त-नीति से नहीं झुका सकता था। अन्दर-ही-अन्दर उसके हृदय में भाई के प्रति घृणा पैदा हो गई थी और विपक्षी राम के प्रति अनन्य सहानुभूति और प्रेम पैदा हो गया था। विभीषण की इसी सहानुभूतिपूर्ण भावना को आध्यात्मिक रूप में रंग कर परवर्ती कथाकारों ने उसे रामभक्त और भगवद्भक्त कहा है।

'वाल्मीकीय रामायण' में राक्षसराज रावण के भवन का अत्यन्त सजीव तथा काव्यमय वर्णन है जैसा हमें अन्य रामकथाओं में प्राप्त नहीं होता। तुलसीदास जी ने तो इस विस्तृत वर्णन को अपने काव्य में स्थान न देकर केवल इतना भर ही कह दिया है :

गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ॥

इसके पश्चात् रावण के भवन में रखे पुष्पक विमान की शोभा का वर्णन है, फिर रावण के रनिवास का वर्णन है। यह वर्णन रावण के अपार वैभव का वर्णन है। इससे यह मालूम होता है कि राक्षसों के पास अपार धन था। पौराणिक कथाओं में कुबेर को धन का स्वामी माना जाता है अर्थात् कुबेर के पास अपार द्रव्य होगा लेकिन रावण तो कुबेर को भी जीत चुका था, उसने तो अपार धन-राशि रखने वाली व्यापारी नाग-जाति को भी जीता था। इस तरह जैसे एक समय मान्धाता के पास लूट का असीमित धन इकट्ठा हो गया था और उससे उसने अपनी प्रजा पर कर भी माफ कर दिया था, उसी प्रकार मालूम होता है रावण के पास भी लूट का अपार धन इकट्ठा हो गया था इसलिये लंका को सोने की लंका कहा जाता है। रावण के प्रासाद की सीढ़ियाँ भी सुवर्ण की थी, कहीं-कहीं झरोखे और खिड़कियाँ सुवर्ण और स्फटिक मणि की सुन्दर कटी हुई थीं। उसके कोई-कोई भाग इन्द्रनील और महानील मणियों की वेदिकाओं से शोभित थे। फर्श में कहीं-कहीं नाना प्रकार के मूंगे, कहीं बहुमूल्य मणि और कहीं अत्यन्त गोल-गोल मोती लगे थे।

'वाल्मीकीय रामायण' का यह वर्णन कवि की कल्पना हो सकती है लेकिन कल्पना का भी कोई आधार अवश्य होता है। इसके अलावा 'वाल्मीकीय रामायण' में जहाँ भी राक्षसों का वर्णन आया है वहाँ उन्हें वैभवशाली दिखाया गया है, इससे यह स्पष्ट है कि राक्षस अत्यन्त धनी थे।

इसके पश्चात् हनुमान ने देखा कि नाना रंग के कपड़े और मालाएँ पहन कर नाना वेश से अलंकृत हजारों स्त्रियाँ उस ढली हुई अर्द्ध-रात्रि के समय पान और निद्रा के वश में प्राप्त हो क्रीड़ा करके उत्तम बिछौने पर अचेत पड़ी सो रही थीं। वाल्मीकि का इन सुन्दर युवतियों का वर्णन अत्यन्त सजीव है, उनके काव्य का चरमोत्कृष्ट रूप हमें इस वर्णन में मिलता है। रावण के विलास का इससे बढ़कर वर्णन अन्य किसी रामकथा में नहीं मिलता। इसके साथ ही रावण के पराक्रम और विलास का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं कि उन स्त्रियों में से कोई तो राजर्षि की, कोई ब्राह्मण की और कोई दैत्य या गन्धर्व की स्त्रियाँ और अनेक राक्षसों की कन्याएँ थीं। वे रावण के कामवश हो गई थीं। उनमें से बहुतों को तो रावण युद्ध की इच्छा से हर लाया था कि इनके घर वाले मुझसे युद्ध करें और बहुत-सी अपने-आप ही यौवनमद से काम-मोहित हो रावण के यहाँ चली आई थीं। रावण यद्यपि बड़ा पराक्रमी था तथापि बलात्कार करके किसी स्त्री को नहीं हर लाया था, केवल अपने गुणों से ही उसने उन्हें प्राप्त किया था। उनमें ऐसी स्त्रियाँ न थीं जो दूसरों को चाहती हों अथवा दूसरे पुरुष के साथ उनका संयोग हुआ हो।

यह वर्णन बताता है कि तत्कालीन समाज में पातिव्रत धर्म श्रेष्ठ तो समझा जाता था लेकिन विभिन्न जातियों की स्त्रियों में स्वच्छन्द-गमन करने की प्रवृत्ति भी पर्याप्त मात्रा में मिलती थी। गन्धर्व-स्त्रियों के बारे में तो 'महाभारत' में कई स्थानों पर मिलता है कि उनमें किसी पुरुष के साथ स्वच्छन्द रीति से रमण करना पाप नहीं समझा जाता था। इसी प्रकार मालूम होता है नागों, राक्षसों तथा दैत्यों की स्त्रियों के सामने अभी तक पातिव्रत केवल एक धुँधली और अस्पष्ट रूपरेखा लेकर ही उप-स्थित हुआ। आर्यों में पातिव्रत धर्म की मान्यता अधिक थी, इसलिये अन्त तक आर्य राम की स्त्री सीता रावण से घृणा करती रही और अपने पति राम के ध्यान में तत्पर रही।

हनुमान सोचने लगे कि यदि राक्षसराज की इन स्त्रियों में सीता भी हो तो मेरा समुद्र लाँघना व्यर्थ है क्योंकि रामचन्द्र यह सुनकर उद्योग-रहित हो जायेंगे। लेकिन उनके हृदय को विश्वास नहीं हुआ कि सीता इन स्त्रियों की अपेक्षा रूप, लावण्य, पातिव्रत इत्यादि गुणों में बहुत अधिक हैं इसलिये इन झुण्डों में उनका रहना असम्भव है।

इसके बाद हनुमान ने रावण और मन्दोदरी को शयनागार में विलास करते देखा। 'वाल्मीकीय रामायण' में सुन्दरकाण्ड के दसवें सर्ग में रावण तथा मन्दोदरी का

वर्णन अद्वितीय है किसी ग्रन्थ रामकथा में राक्षसराज तथा उसकी स्त्री मन्दोदरी का ऐसा वर्णन नहीं है। हनुमान ने पहले तो मन्दोदरी को ही सीता समझा, लेकिन फिर उनका हृदय बदला और उन्होंने सोचा कि पतिव्रता वैदेही राम के बिना न सो सकती है और न पान ही कर सकती है। दूसरे पुरुष की तो क्या बात, वह इन्द्र के पास भी पतिधर्म से नहीं रह सकती क्योंकि राम के सदृश देवताओं में और कौन है। मन में यह जानकर वे सीता को खोजने के लिये उसी पानभूमि में घूमने लगे। वहाँ पर कोई स्त्री क्रीड़ा करने से, कोई गाने से और कोई नाचने से थक कर पड़ी सो रही थी; कोई अमल में चूर होकर मुरजों, मृदङ्गों और चेलिकाओं पर अपने शरीर का भार दिये सो रही थी। कोई बहुत सुन्दर बिछौनों पर नियम से सो रही थी। सहस्रों स्त्रियाँ गहनों से लदी सो रही थीं। उनमें कोई भाव बताती, कोई गीत का तात्पर्य कहती, कोई देश-काल के अनुसार वाक्य कहती और कोई उत्तम प्रकार से क्रीड़ा करती-करती सो गई थी। उसी पानगृह के दूसरे स्थल में भी इसी दशा में सोती हुई सहस्रों स्त्रियाँ दीख पड़ीं। उनके बीच में सोता रावण ऐसा शोभायमान लगता था जैसे बड़ी गोशाला में गायों के बीच बैल सोता हो, या जैसे जंगल में हथिनियों से घिरा महागज सोता हो।

वहाँ हनुमान ने नाना प्रकार के मांस तथा अन्य भोज्य-पदार्थ देखे। कहीं अनेक प्रकार के दिव्य एवम् निर्मल मद्य रखे थे। कहीं चाँदी के और कहीं सुवर्ण के बड़े-बड़े कुंड रखे थे। कहीं सुवर्ण के और रत्न के पात्रों में मद्य भरा रखा था। उनमें कोई तो आधे खाली, कोई सम्पूर्ण खाली और कोई सब-के-सब भरे हुए दीख पड़ते थे। कहीं स्त्रियों के बिछौने शून्य पड़े थे। कहीं स्त्रियाँ परस्पर आलिंगन किये सोती थीं। कहीं कोई स्त्री दूसरे के वस्त्र को छीन कर उससे अपने शरीर को लपेटे गहरी निद्रा में सोती दीख पड़ी। उनकी नि:श्वास वायु से शरीर के वस्त्र और मालाएँ धीरे-धीरे काँप रही थीं जैसे मन्द वायु से काँपती हों। चारों ओर शीतल मद-सुगन्ध पवन झोंके ले रहा था।

हनुमान ने वहाँ भी सीता को न पाया। इस प्रकार विलासोन्मत्त स्त्रियों को नग्न अवस्था में देखकर हनुमान ने सोचा कि परस्त्रियों को इस अवस्था में देखना मेरे धर्म का नाश करेगा लेकिन फिर उन्होंने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का निश्चय करके अपने चित्त को स्थिर किया।

'वाल्मीकीय रामायण' का यह वर्णन राक्षसों की घोर विलास-प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है। राक्षस योद्धा भी थे लेकिन उनके समाज में घोर विलास भी था। 'वाल्मीकीय रामायण' के वर्णन से तो हमको एक स्थान पर यही मिलता है कि राक्षसियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करती थीं लेकिन राक्षसियों की इस विलास-प्रवृत्ति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें भी किसी हद तक यौन-सम्बन्धों में स्वच्छन्दता

अवश्य थी, उतनी न हो जितनी गन्धर्वियों में। तभी तो रावण की बहन शूर्पणखा कामोन्मत्त होकर राम-लक्ष्मण के पास रमण की इच्छा से गई थी।

राक्षसों के इस विलासपूर्ण समाज का अन्य रामकथाओं में वर्णन नहीं है। परस्त्रियों के साथ बलात्कार करने की बात तो राक्षसों के लिये कही गई है लेकिन यह इनकी विलास प्रवृत्ति को प्रकट न करके अधार्मिक प्रवृत्ति को ही व्यक्त करती है। हो सकता है राम के दिव्य-रूप के सामने राक्षसों का यह वैभव दिखाना बाद के कथाकारों को रुचिकर न जान पड़ा हो, या इसका कारण यह भी है कि वाल्मीकि के पश्चात् रामकथा के स्रष्टा अधिकतर सम्प्रदाय-विशेषों के अनुयायी हुए और उन्होंने अपने सम्प्रदायों के अनुकूल सत्य को रामकथा में स्थान दिया। वे कवि अवश्य थे लेकिन वाल्मीकि के समान स्वतन्त्र-चेता कवि नहीं थे, बल्कि सम्प्रदाय की आवाज-में-आवाज मिलाने वाले कवि थे इसीलिये उन्होंने अपने इष्टदेव राम के गौरव के सामने राक्षसराज रावण के गौरव को अस्वीकार किया।

अब हनुमान ने उस राजभवन के बीच लतागृहों, चित्रशालाओं और रात्रिगृहों को रत्ती-रत्ती ढूँढ डाला पर जानकी न मिली। वे सोचने लगे कि कहीं अपने धर्म की रक्षा में तत्पर और पातिव्रत धर्म पर आरूढ़ उस बेचारी को इस दुष्ट राक्षस ने मार डाला होगा, या इन कुरूप, विकराल, भयंकर, बड़े-बड़े मुख वाली और टेढ़ी आकृति वाली राक्षसराज की स्त्रियों को देखकर डर कर उसने अपने प्राण त्याग दिये होंगे।

राक्षसियों के रूप-वर्णन में यहाँ विरोधाभास है क्योंकि इससे पहले राक्षसों की स्त्रियों को चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली कहा गया है, सम्भव है परवर्तीकाल में राक्षस तथा राक्षसियों के भयंकर तथा विकराल रूप की कल्पना से ही यह वर्णन प्रभावित हो। परवर्ती वर्णनों में तो राक्षसियों को बड़े-बड़े भयंकर नेत्रों वाली, कोई घोड़न के मुख वाली, कोई बड़े उदर वाली, कोई एक ही स्तन वाली के रूप में चित्रित किया गया लेकिन यह सारा वर्णन कल्पित है और राक्षसों के प्रति ब्राह्मण कथाकार की अपनी घृणामयी दृष्टि का ही प्रतिफल है।

जब हनुमान को सीता कहीं न मिली तो एक बार तो उनका हृदय निराश हो गया। उन्होंने बार-बार लंका के पुष्करिणी तालाब, झील, छोटी-बड़ी नदियाँ, उनके तीर के वन, किले और पर्वत, यहाँ तक एक-एक कर सारे भवन ढूँढ डाले थे। अब वे नाना तरह के अनुमान सीता के बारे में लगाने लगे। सम्भव है कि सीता रावण के वश में हो गई हो, या जब रावण उन्हें आकाश-मार्ग से लाया उसी समय विशाल समुद्र को देख डर के मारे उनके प्राण निकल गये हों, या रावण के बड़े वेग से और उसकी दोनों भुजाओं के दबाव से जानकी ने प्राण त्याग कर दिये हों, या समुद्र के ऊपर से आने में छटपटाती सीता समुद्र में गिर पड़ी हों, या अपने पातिव्रत धर्म की रक्षा में तत्पर उस असहाय सुन्दरी को इस नीच ने अथवा इसकी दुष्ट स्त्रियों ने खा लिया होगा।

लेकिन मुझे विश्वास है कि अवश्य वैदेही ने हा, राम ! हा लक्ष्मण ! हा अयोध्ये ! ऐसा बहुत विलाप करके ही प्राण त्याग किये होंगे अथवा इस दुष्ट राक्षस ने उसे किसी गुप्त स्थान में छिपा रखा होगा।

इस प्रकार विचार करते हुए हनुमान ने सोचा कि यदि मैं सीता को बिना देखे ही यहाँ से किष्किन्धा को लौट जाऊँ तो मेरा क्या पुरुषार्थ होगा। मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ जायगा। यदि मैं जाकर श्री रामचन्द्र से यह कठोर वचन कहूँ कि मैंने सीता को नहीं देखा है तो वे अवश्य प्राणों को त्याग देंगे। ज्येष्ठ भ्राता की ऐसी दशा देखकर अत्यंत प्रेमी लक्ष्मण भी देह न रखेंगे। इन दोनों भाइयों का नाश सुनकर भरत और शत्रुघ्न भी जीवित नहीं रहेंगे। पुत्रों का मरण सुनकर उनकी तीनों माताएँ भी चिता में जल मरेंगी। सुग्रीव तो कृतज्ञ और सत्यवादी हैं, वे भी राम की यह दशा देख प्राणों का त्याग कर देंगे। पति का मरण देख रुमा उदास और पीड़ित होकर पति के शोक से मर जायगी। तारा रानी भी सुग्रीव की यह दशा देख मारे शोक के कैसे जियेगी। माता-पिता के बिना और सुग्रीव के शोक से कुमार अङ्गद भी जीते न रहेंगे। अब रह गये वानर लोग, सो ये भी स्वामी का विनाश देख थप्पड़ों और मुष्टिकाओं से अपने मस्तकों को कूट डालेंगे। ये सब पुत्र-स्त्री-सहित और परिजनों के साथ पर्वतों से गिर-गिर कर अपने प्राणों को दे देंगे। जो कुछ बचेंगे वे विष खाकर या फाँसी लगाकर अथवा अग्नि-प्रवेश करके या उपवास अथवा शस्त्र द्वारा ये सब-के-सब वानर नष्ट हो जायेंगे। इस तरह इक्ष्वाकु-कुल का और वानर-कुल का साथ-साथ नाश हो जायगा।

इसलिये मैं इस सर्वनाश के लिये सीता का पता लगाये बिना वापस सुग्रीव के पास नहीं जाऊँगा। अब या तो चिता बनाकर अग्नि में प्रवेश करना ठीक है या प्रायोपवेशन द्वारा शरीर को सुखाकर समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर है, लेकिन उनके मन में तत्काल ही विचार आया कि आत्महत्या महापातक है इसलिये तपस्वी होना ही ठीक है। कभी वे सोचते कि इस खल रावण का वध करना ही ठीक है। या वैर का बदला लेने के लिये इस दुष्ट राक्षस को उठाकर समुद्र के ऊपर-ही-ऊपर से चलूँ और रामचन्द्र को भेंट दे दूँ, जैसे यज्ञकर्ता लोग शिव के लिये पशु भेंट चढ़ाते हैं। इस तरह शोकपीड़ित होकर वायुनन्दन अनेक प्रकार की चिन्ताएँ करने लगे। उन्होंने अपने हृदय में फिर संकल्प किया कि जब तक सीता न मिलेगी तब तक बार-बार लंका को ढूढ़ूँगा अथवा न हो तो रामचन्द्र जी [illegible] लाऊँ। यदि रामचन्द्र यहाँ सीता को न पावेंगे तो सारे राक्षसों [illegible] बाद अपनी क्रोधाग्नि से वे सारे वानरों को भी नष्ट [illegible] सीता का पता लगाना चाहिये। उन्हें उसी समय [illegible] को तो खोजा ही नहीं है।

हनुमान यह सोचकर उठ खड़े हुए और राम, लक्ष्मण, जानकी, रुद्र, इन्द्र, यम, वायु, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वसु और अश्विनीकुमारों को, और सब देवताओं को तथा सुग्रीव को प्रणाम करके उन्होंने सब दिशाओं को खोजा। राक्षसों से भरी अशोक-वाटिका में छिपकर घुसते हुए हनुमान ने देव, ऋषि, स्वयम्भू भगवान्, ब्रह्मा, देवर्षि लोग, अग्नि, वज्रधारी इन्द्र, पाशधारी वरुण, चन्द्र, सूर्य, अश्विनीकुमार, वायु, सब भूतगण और उनके स्वामी एवम् अदृश्य-रूप देवगण सबसे अपने कार्य की सिद्धि के लिये प्रार्थना की।

जिन देवताओं से हनुमान ने प्रार्थना की है वे अधिकतर वैदिक युग के देवता हैं, त्रेता युग में ये देवता ही आर्यों में प्रचलित थे, अनार्य जाति इन देवताओं को नहीं मानती थी। हनुमान का इन देवताओं से कार्यसिद्धि के लिये प्रार्थना करना आर्य-कथाकार द्वारा जोड़ा क्षेपक मालूम होता है क्योंकि चाहे आर्य राम की मित्रता सुग्रीव से हो गई थी फिर भी धर्म और उपासना के क्षेत्र में वानर आर्यों से प्रभावित नहीं हुए थे। बाद की रामकथाओं में तो इन देवताओं का उल्लेख आता ही नहीं क्योंकि महाभारत-युद्ध के पश्चात् ही ये देवता अपना वैदिक स्वरूप खो चुके थे और उसके बाद के समाज में तो विभिन्न जातियों की अन्तर्भुक्ति के फलस्वरूप देवताओं का भी रूप अपना प्रारम्भिक स्वरूप खोकर विभिन्न जातियों के देवताओं का मिश्रित-रूप ही अपना सका। इन्द्र, वरुण, अश्विनीकुमार, वायु, चन्द्र, सूर्य की मान्यता कम हो गई थी, अब तो नाग और गरुड़ टॉटम से मिलकर विष्णु का रूप समाज के सामने आ रहा था, दूसरी ओर जगत् के सृष्टि के रूप में ब्रह्मा आया। शिव की मान्यता आर्यों से पहले की है लेकिन अब उसका रूप विलक्षण हो गया क्योंकि उसके साथ भी विभिन्न टॉटम घुस गये थे जैसे नाग, वृषभ आदि। अनेक अनार्य देवी-देवता उसके गण के रूप में स्वीकार कर लिये गये थे।

'महाभारत' के बाद, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों ही सर्वोच्च देवता माने गये। आर्य-अनार्य का भेद अब प्रायः लुप्त होता जा रहा था। इसलिये परवर्ती राम-कथाओं में इन देवताओं का नाम नहीं मिलता, यों परम्परावश एकाध जगह इनका नाम आया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। 'रामचरित मानस' में तो रावण भी विष्णु को जगत् का स्वामी मानता है और राम को उन्हीं का अवतार समझकर उनके हाथ से मरकर मुक्ति प्राप्त करने की बात सोचता है। इसी प्रकार वानरों का स्वामी वालि भी राम को उन्हीं विष्णु का अवतार समझकर उनके हाथ से मरकर अपने को कृतार्थ समझता है। इसका अर्थ है कि दोनों-वानर और राक्षस, विष्णु को भगवान् मानते थे और उसके साथ भगवान् के अवतार में भी आस्था रखते थे। यह ऐतिहासिक सत्य न होकर बाद की साम्प्रदायिक मान्यताओं के साँचे में ढली कथा का ही परवर्ती रूप है। इसी रूप के अन्तर्गत जैन-रामकथा में तो राम को जैन-तीर्थंकरों

का उपासक बताया है। यह सब सम्प्रदायगत मनोवृत्ति का ही प्रभाव है। सम्भव हो सकता है कि राक्षसों में शिव के किसी रूप की उपासना रही हो।

हनुमान के सीता के खोजने का जितना वृत्तान्त 'वाल्मीकीय रामायण' मे है उतना अन्य रामकथाओं में नहीं। उनमें तो ऐसा मालूम होता है मानो हनुमान को मालूम था कि सीता अशोक वाटिका में हैं इसलिये उन्होंने व्यर्थ इधर-उधर लका मे चक्कर लगाना ठीक नहीं समझा। यही कारण था कि उन कथाओं मे हनुमान सीता के न मिलने पर इतने शोक-युक्त नहीं हुए जितने 'वाल्मीकीय रामायण' मे। 'राम-चरित-मानस' में तो हनुमान लेशमात्र भी चिन्तायुक्त नहीं होते। यह क्यो?

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥

'अध्यात्म रामायण' में भी हनुमान को चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि लंकिनी ने पहले ही सीता का पता बता दिया था, उसी पते से वे अशोक-वाटिका पहुँच गये। इसी प्रकार अन्य रामकथाओं में भी हनुमान के शोकयुक्त होकर कभी आत्म-हत्या का, कभी प्रायोपवेशन का, कभी तपस्वी बनने के विचार करने का उल्लेख नहीं है। लेकिन यह नहीं माना जा सकता कि परवर्ती रामकथाओं के अनुसार हनुमान को सीता के खोजने में कोई आपत्ति नहीं हुई होगी और बड़ी आसानी से उसे उस वैदेही का पता मिल गया होगा बल्कि 'वाल्मीकीय रामायण' का वर्णन ही सत्य के अधिक निकट मालूम होता है। हनुमान का वेष बदल कर उन अनजान राक्षसों के बीच जाना ही बड़ी आपत्ति को निमन्त्रित करना था और फिर राक्षसराज रावण के अन्तःपुर तक का देख आना प्रमाणित करता है कि हनुमान एक अद्वितीय कौशल के गुप्तचर थे। इतनी विशाल लंका नगरी में सीता को ढूँढना आसान काम नहीं था और उस हालत में जब कि हनुमान सीता को पहचानते न थे।

अन्य रामकथाओं के वर्णन राम के दिव्य-रूप से उत्पन्न चमत्कारों से प्रभावित दीखते हैं। इसीलिये हनुमान का एक मच्छर के रूप मे लंका मे प्रवेश करना भी कवि की कल्पना का चमत्कार है। 'वाल्मीकीय रामायण' मे भी हनुमान के छोटे रूप करने का वर्णन है।

इसके पश्चात् अशोक वाटिका का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में अत्यन्त विस्तृत रूप से दिया गया है। ऐसा चित्रमयी वर्णन अन्य रामकथाओं में नहीं मिलता। 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में तो सीता का अशोक वाटिका में होना तक उल्लिखित नहीं है। उसमें तो हनुमान राम से कहते हैं—हे रामचन्द्र! वहाँ लंका में राक्षसराज रावण के निवास-स्थल में जाकर मैंने देखा कि पति-दर्शन की लालसा रखने वाली, उपवास करती हुई सीता तपस्या कर रही थी। उसके बालो की उलझ कर एक चोटी

बन गई थी। सारे शरीर में धूल भरी थी और उसके सब अंग सूख कर काँटा हो गये थे। आपके बताये हुए सब लक्षणों को देख कर मुझे निश्चय हो गया कि यह अवश्य वैदेही हैं।

हो सकता है 'महाभारत' के स्रष्टा ने रावण के निवास-स्थल में केवल उसके राजप्रासाद को न लेकर पूरी लंका को ही लिया हो, जिसमें अशोक वाटिका भी आ जाती है।

अशोक वाटिका में अनेक सुन्दर भवन थे, एक ऊँचा मेघाकार अपूर्व पर्वत था। उस पर्वत से निकली एक नदी वहाँ बह रही थी। वहाँ नाना प्रकार के पक्षियों से भूषित झीलें और कृत्रिम बावलियाँ भी थीं। उसी में एक हजार खम्भों वाला गोल गृह था, जो कैलाश के तुल्य सफेद था। उसमें मूँगे की बनी सीढ़ियाँ लगी थी; सुवर्ण की मनोहर वेदियाँ थीं। वह भवन अपनी चमक से नेत्रों को चकाचौंध कर देता था। ऊँचा इतना था कि आकाश को छूता मालूम होता था। वहाँ मैले कपड़े पहने एक स्त्री को हनुमान ने देखा। वह राक्षसियों से घिरी, उपवास से कृश, दीन और बार-बार ऊँची साँस ले रही थी। उसकी देह पर कोई विशेष भूषण न थे। वह पुष्पहीन *कमलिनी के तुल्य, दुःख से संतप्त, प्रतिक्षीण तपस्विनी मंगल ग्रह से पीड़ित रोहिणी* के तुल्य थी। उसके नेत्रों में आँसू भरे थे। वह दीन, भूखी रहने के कारण दुबली, शोक और ध्यान में तत्पर थी और काले साँप के तुल्य एक वेणी को जो पीठ पर पड़ी थी, धारण किये थी, जैसे वर्षा के अन्त में नीले रंग की वन-पंक्ति को पृथ्वी धारण करती है। उस विशाल नयनों वाली दुःखी स्त्री को देखकर हनुमान ने जाना कि यही सीता है। उन्होंने दुःखी होकर अपने मन में आश्चर्य किया कि सारे जगत् की इष्ट देवी तपस्विनी की तरह भूमि पर बैठी है। भूषण के योग्य होकर भी वह भूषण से रहित मेघों से घिरी चन्द्रप्रभा के तुल्य थी।

हनुमान ने सीता के शरीर के कुछ आभूषणों को भी पहचान लिया क्योंकि राम ने उन्हें इनकी पहचान बता दी थी। इस तरह 'वाल्मीकीय रामायण' में हनुमान सीता को बड़ी मुश्किलों के बाद ही खोज पाये थे और उतनी ही मुश्किल से उन्होंने उसे पहचाना था। अन्य रामकथाओं में अशोक वाटिका के गोल गृह का उल्लेख नहीं है, उनमें तो सीता एक अशोक वृक्ष के नीचे ही बैठी मिलती है।

सीता की दीन अवस्था का वर्णन भी 'वाल्मीकीय रामायण' में अन्य रामकथाओं की अपेक्षा अधिक सजीव और करुणा उत्पन्न करने वाला है। इसमें काव्य का निखरा हुआ स्वरूप प्राप्त होता है, कवि की कल्पना निर्बाध रूप से आगे बढ़ी है और उसने अनेक रूपकों में भावक्षेत्र को बाँध कर अलंकृत किया है। वाल्मीकि की काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन हम आगे प्रस्तुत करेंगे। इतना अवश्य है कि जिस कुशल मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'वाल्मीकीय रामायण' में परिस्थिति को आँका गया है

वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि रखना ही कवि की सबसे बड़ी विशेषता है, वह हमें 'वाल्मीकीय रामायण' में अधिक मिलती है।

हनुमान सीता को इस तरह क्षीणकाय और दुःखी देखकर आंखों में आंसू भर कर विलाप करने लगे। 'अध्यात्म रामायण', 'रामचरित मानस' तथा अन्य राम-कथाओं में हनुमान के शोकजन्य हृदयोद्गारों को प्रगट नहीं किया गया है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में हनुमान के हृदय में उठी भावनाओं को एक-एक करके कथाकार ने व्यक्त किया है। सीता की असह्य वेदना को देख हनुमान का हृदय रो उठा। वे कहने लगे—हा! पृथ्वी के तुल्य क्षमा करने वाली सीता की रक्षा राम और लक्ष्मण करते थे, वह ही इस घड़ी इन विकराल राक्षसियों से वृक्ष के नीचे रक्षित हो रही हैं। पाले से नष्ट हुई कमलिनी की तरह ये अनेक दुःखों से पीड़ा पाती और चकवाक से बिछुड़ी हुई चक्रवाकी की तरह दुर्दशा भोग रही हैं। यह कनकवर्णी इस अनर्थ के घोर दुःखों के अयोग्य हैं फिर भी इस यातना को सह रही हैं। वसन्त का कितना सुहावना समय आ गया है। अशोक वृक्षों की शाखाएँ फूलों के मारे झुक रही हैं, निर्मल चाँद अपनी ज्योत्स्ना बिखेर रहा है लेकिन ये सब इस देवी के शोक को प्रज्वलित करने वाली अग्नि के समान हैं।

हनुमान ने एक वृक्ष की शाखाओं में छिपे हुए ही सीता को देखा। उन्होंने सीता के पास बैठी अनेक भयंकर राक्षसियों को देखा। 'वाल्मीकीय रामायण' में इन राक्षसियों का वर्णन निम्न प्रकार है:

१. कोई एक कान वाली।
२. कोई एक आँख वाली।
३. कोई बहुत बड़े कानों वाली।
४. कोई कर्ण-रहित।
५. किसी के कान खूँटे के समान।
६. किसी की नाक मस्तक पर थी जिससे वह साँस लेती थी।
७. किसी के शरीर के ऊपर का भाग बहुत ही विशाल था।
८. कोई पतली और लम्बी गरदन वाली।
९. किसी के केश झड़े हुए।
१०. किसी का शरीर केशहीन।
११ किसी के शरीर पर इतने केश जैसे मानो काला कम्बल ओढ़े हो।
१२. किसी के लम्बे-लम्बे कान, लम्बा कपाल, लम्बा पेट, लम्बे घुटने, लम्बे स्तन, और लम्बे ओंठ थे।
१३. कोई लम्ब मुखी।
१४. कोई लम्बोदरी, कोई नाटी थी।

१५. किसी के ओठ ठुड्डी तक फैले हुए थे।

१६. कोई लम्बी, कुबड़ी, टेढ़ी-मेढ़ी, बौनी और भग्नमुखी थी।

१७. कोई पीली आँखों वाली, विकृत मुखी, काली, पीली, क्रोध से भरी और कलह करने वाली थी।

१८. किसी का मुख शूकर के समान था, किसी का हरिण के समान था।

१९. किसी का मुख सिंह, महिष, बकरे और सियार के सदृश था और पैर हाथी, घोड़े और ऊँट के तुल्य थे।

२०. किसी के एक ही हाथ था।

२१. किसी के एक ही पैर था।

२२. कितनो के कान गदहे, घोड़े, गाय, हाथी और सिंहों के कानों जैसे थे।

२३. कितनो के मस्तक कबन्ध की तरह शरीर के भीतर गड़े, छाती में दीख पड़ते थे।

२४. कोई बड़ी भारी नाक वाली, तिरछी नाक वाली, बिना नाक की और हाथी के सुण्ड के सदृश नाक वाली थी।

२५. किसी के कपाल में नाक थी और उसी से वह साँस लेती थी।

२६. किसी के हाथी के ऐसे मोटे-मोटे पैर थे।

२७. किसी के गाय के ऐसे खुर थे और पैरों पर चोटी के ऐसे केश थे।

२८. कोई बड़े भारी सिर वाली, विशाल स्तनों वाली, बड़े लम्बे-चौड़े पेट वाली, विशाल मुख और विशाल नयनों वाली थी।

२९. किसी की बड़ी लम्बी जीभ थी।

३०. किसी के केश धुएँ के तुल्य थे।

ऐसी सैकड़ों, हजारों, *बड़ी विकट-रूपा राक्षसियाँ वहाँ दीख पड़ती थीं।* ये सब-की-सब सदा मद्यपान करती थीं। अपने शरीरों में वे सदा माँस और रक्त लपेटे रहती थीं और उसी को खाती-पीती थीं। वे सब राक्षसियाँ बड़े भारी एक वृक्ष को घेरे बैठी थीं। उसी वृक्ष के नीचे सीता थी।

कवि की कल्पना जितने भयंकर रूपों का सृजन कर पाई वे सब उपर्युक्त वर्णन में राक्षसियों के रूप हैं। राक्षसियों के ये विकट एवम् अद्भुत रूप सब वस्तु-सत्य से सबंध न रखकर केवल चमत्कारों की परम्परा में ही अपना स्थान रखते हैं। प्रत्येक रामकथा में राक्षसियों के इसी प्रकार के भयंकर रूपों की कल्पना की गई है लेकिन इस सबको दिखाने में कथाकार का उद्देश्य अधिक मात्रा मे सीता के प्रति पाठक के हृदय में करुणा का भाव उत्पन्न करना ही रहा है। यह सत्य है कि सीता अशोक वाटिका में अनेक आपत्तियों के बीच रहती होगी और रावण ने उसे अपने वश में करने के लिये अनेक प्रकार से त्रस्त किया होगा, उसी का काव्यात्मक रूपक हमें इन राक्षसियों के

वर्णन में मिलता है। राक्षसियों के विभिन्न रूपों का यह चित्र साधारण व्यक्ति के हृदय को कँपाने वाला है।

इसी प्रकार का वर्णन 'रामचरित मानस' में शिव के गणों का हुआ है। कुछ तो शिव के साथ विभिन्न रूपों के अनार्य देवता मिल गये थे जो उसके गण कहलाये, कुछ उसी आधार पर ब्राह्मण कथाकारों ने चमत्कारमयी रूपों का सृजन किया। शिव को संहार करने वाला देवता समझा जाता है उसी के अनुसार जितने डरावने, विध्वंसात्मक रूप मानव-कल्पना में अंकित हो सके उनकी शिव के गणों के रूप में कल्पना की गई जैसे :

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तनखीना ॥
तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनें।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनें ॥

राक्षसियों के रूप और इन गणों के रूप प्रायः मिलते-जुलते हैं। इन रूपों को किसी ऐतिहासिक सत्य में घटाने का प्रयत्न करना बेकार है।

रात-भर हनुमान अशोक वाटिका में छिपे रहे। जब थोड़ी सी रात रह गई तो रावण कामोन्मत्त हुआ सीता के पास आया। उसके पीछे काम के वश में हो सैकड़ों स्त्रियाँ मद्य के उतरने और निद्रा के कारण डगमगाती चली आ रही थीं। स्त्रियों की करधनियों और नूपुरों का शब्द हो रहा था। सुगन्ध तैल से पूर्ण अनेक दीपकों द्वारा किये प्रकाश में होकर अचिन्तनीय बल-पौरुष वाला वह रावण कामगर्व और मद्य से भरा हुआ सीता में चित्त को आसक्त किये मन्द गति से आ रहा था। महा-तेजस्वी हनुमान भी उस राक्षसराज के तेज के सामने दब गये और कूद कर बड़े सघन वृक्ष की शाखा में जा छिपे।

'वाल्मीकीय रामायण' का यह वर्णन विलास में डूबे हुए उस कामोन्मत्त रावण का चित्र सामने उपस्थित करता है। इसमें काव्य की धारा भी मदमत्त होकर स्वच्छन्द गति से बहती है, उसी स्थान पर 'रामचरित मानस' में गद्य के तुल्य एक चौपाई में ही इस प्रसंग का रूप वर्णन है :

तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा ॥

इसी प्रकार 'अध्यात्म रामायण' तथा अन्य रामकथाओं में प्रसंग को दिया है।

'अध्यात्म रामायण' के वर्णन में एक भेद और [illegible] .कीय-रामायण,' 'रामचरित मानस' तथा अन्य रामकथाओं में [illegible] . से

मोहित होकर सीता के पास जाना इस तरह 'अध्यात्म रामायण' में नहीं मिलता। इस अनुसार कथा इस प्रकार है :

अब रावण यह विचार करने लगा कि राम के हाथ मेरी मृत्यु कैसे हो सकती है। देखो, सीता के लिये भी राम नहीं आते। इसका क्या कारण है? इस प्रकार सदा हृदय में राम ही का ध्यान करते हुए रावण ने रात्रि में एक स्वप्न देखा। उसने देखा कि राम का भेजा हुआ एक वानर आकर सूक्ष्म-रूप धारण करके वृक्ष में छिपा हुआ है। ऐसा अद्भुत स्वप्न देखकर रावण अपने मन में विचार करने लगा कि अगर स्वप्न के अनुसार यह सत्य है कि कोई वानर अशोक वाटिका में छिप रहा है तो जाकर सीता से अत्यन्त कठोर वचन कहूँगा। सीता को इस प्रकार दुःखी देखकर वह वानर राम से कहेगा और राम अपनी स्त्री की मुक्ति के लिये अवश्य मुझसे युद्ध करने आयेंगे।

यह सोचकर अनेक स्त्रियों के साथ रावण सीता के पास गया।

'अध्यात्म रामायण' के कथाकार की दृष्टि के अनुसार रावण सीता का हरण भी इसी उद्देश्य से कर लाया था जिससे परब्रह्म-स्वरूप राम के हाथों मर कर वह मोक्ष प्राप्त कर सके। यह कथा की सृष्टि में कथाकार का अपना आध्यात्मिक दृष्टिकोण है और राम की अलौकिक सत्ता के चमत्कार का विषय है।

रावण को देखकर सीता की जो अवस्था हुई उसका सर्वश्रेष्ठ काव्यमय-वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में मिलता है अन्य कथाकारों की दृष्टि सीता के रुदन करते हुए करुणायुक्त अन्तस्तल का भेदन नहीं कर पाई; इसलिये 'वाल्मीकीय रामायण' के सिवाय अन्य रामकथाओं में किसी में या तो वर्णन है ही नहीं और कहीं है भी तो केवल कथा का तारतम्य मिलाने के लिये ही है।

उस दीन दुःखित तपस्विनी सीता को रावण बड़े अभिप्राय से भरे मधुर वचनों से लुभाने लगा। 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित रावण के वचनों से उसकी काम-वासना अपने नग्न रूपमें झलकती है। उदाहरण-स्वरूप हम उसके मदविह्वल हृदय के कुछ उद्गारों को उद्धृत करते हैं :

रावण ने सीता से कहा—हे सुन्दरि, तू मुझे देखकर अपने उदर और स्तनों को ढाँपती है और डर के मारे अपने को सम्पूर्ण रूप से छिपा लेना चाहती है।

हे विशाल नयनों वाली ! मैं तुझे चाहता हूँ। प्रिये ! मुझे तू आदर से मान। तू सम्पूर्ण अङ्गों के गुणों से भरी है, इसलिये सबके मन को हरण करती है। हे सीते ! यहाँ न तो कोई मनुष्य है और न कोई कामरूप राक्षस है, इसलिये जो तुझको मुझसे डर हुआ हो उसको छोड़ दे।

हे भीरु ! परस्त्री गमन करना अथवा बलात्कार से उनको हरना ही राक्षसों का सब दिन से धर्म है। अब फिर भी काम मेरे शरीर को कितनी ही पीड़ा क्यों न

दे, यदि तू मुझे नहीं चाहती तो मैं तेरा स्पर्श न करूँगा। हे देवि ! यहाँ डरो मत। इस प्रकार शोकपीड़ित न हो। तेरा जटारूप वेणी का धारण करना और उपवास करना बेठिकाने है। हे मैथिली ! मुझे प्राप्त करके तू चित्र-विचित्र पुष्प, चन्दन, अगुरु और नाना प्रकार के कपड़े, दिव्य भूषण, बड़े-बड़े मोल की सवारियाँ, पलग, आसन, गीत, नृत्य और वाद्य इन सब पदार्थों का भोग कर। स्त्रियों में तू रत्न के तुल्य है। देख, यह तेरी यौवनवस्था बीती जाती है और जो बीत गया वह फिर लौट-कर नहीं आता है। मैं जानता हूँ कि ब्रह्मा तेरे रूप और लावण्य को बनाकर सुचित्त हो गया, क्योंकि ऐसे रूप की उपमा कहीं पाई नहीं जाती।

हे सुन्दरि ! तुझ जैसी मनमोहिनी रूप वाली को पाकर कौन ऐसा होगा जो मर्यादा का उल्लंघन न करेगा ?

हे चन्द्रमुखि ! मैं तेरे शरीर को जिस ओर देखता हूँ उसी अङ्ग मे मेरी दृष्टि उलझ जाती है। हे मैथिलि ! तू मेरी भार्या हो। मेरी इन उत्तम स्त्रियों मे तू पट-रानी हो जा।

हे भीरु ! जिन रत्नों को मैं अनेक लोकों से जीत कर लाया हूँ, उन सब रत्नों को और राज्य को भी मैं तुझे देता हूँ। नाना नगरों से युक्त यह सम्पूर्ण पृथ्वी जीत कर मैं तेरे कारण तेरे पिता जनक को दे डालूँगा।

हे सुन्दरि ! देख, इस जगत् में कोई ऐसा नहीं है जो संग्राम मे मेरे पराक्रम के सामने टिक सके। दैत्यों और देवताओं को तो मैंने अनेक बार संग्रामों मे मार गिराया है।

हे देवि ! तू मुझे अंगीकार कर। स्नान इत्यादि से अपने शरीर को तू निर्मल कर ले, सुन्दर-सुन्दर प्रकाशमान आभूषण तेरे अङ्गो मे पहनाये जावें। तेरे रूप को मैं अच्छी तरह देखना चाहता हूँ। बहुत अच्छे प्रकार से शरीर को सजा कर यथेष्ट भोगों को झेल और पीने के पदार्थों को पी, विहार कर और इच्छापूर्वक तू जिसको चाहे, पृथ्वी या धन दे। विश्वासपूर्वक मेरे ऊपर अपना वश रख और ढिठाई से अपनी आज्ञा का प्रचार कर।

हे भद्रे ! देख, उस चीर के पहनने वाले राम के पास क्या रखा है, न उसके पास विजय की सामग्री है और न पास मे श्री है। केवल व्रत ग्रहण करके वन का वास और भूमि पर सोना उसने अंगीकार किया है और अब तो राम तुझे देख भी नहीं पावेगा, मेरे हाथ से राम तुझे पा भी नहीं सकता।

हे सुन्दर मुस्कराने वाली, मनोहर दाँतों वाली सुनयने सीते ! देख, जैसे गरुड़ बलात्कार से साँप को खींच लेता है वैसे ही तूने मेरे मन को खींच लिया है।

हे सुन्दरि ! यद्यपि तू इस सिकुड़े-फिकुड़े पट्ट वस्त्र को पहने है और अलंकारों से हीन है तो भी मैं तुझे देखकर अपनी पत्नियों को नहीं चाहता।

हे जानकी ! मेरे अतःपुर में जो सम्पूर्ण गुणों युक्त स्त्रियाँ हैं इन सबकी तू स्वामिनी हो जा। वे तेरी इस प्रकार सेवा करेंगी जैसे लक्ष्मी की सेवा अप्सराएं करती हैं।

……हे सुभ्रु ! कुबेर के पास जो रत्न और धन है उसका, और लोकों का उपयोग भी मेरे साथ यथेष्ट कर।

हे देवि ! देख, रामचन्द्र न तो तपस्या में मेरे तुल्य है, न बल में, न पराक्रम और न धन में। तेज और यश में भी वह मेरी बराबरी नहीं कर सकता। तू पान कर, विहार कर, क्रीड़ा कर, भोगों का उपभोग कर, और जिसको चाहे उसको पृथ्वी तथा धन-समूह दे डाल।

हे ललने ! तू मेरे साथ सुखपूर्वक विलास कर, फिर तेरे भाई-बन्धु भी मौज करेंगे।

उपर्युक्त वर्णन अत्यधिक कामोत्तेजक है और रावण की अतृप्त विलास-प्रवृत्ति को उत्कृष्ट काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है। लंका का पराक्रमी राजा रावण किस तरह काम के बाणों से बिधा हुआ अपने हृदय में सीता के लिये तड़प रहा था। वह अपना सर्वस्व उस सुन्दरि के लिये न्योछावर करने को तत्पर था लेकिन बदले में वह उससे प्रेम की भीख मांगता था। रावण के हृदय की असहाय एवम् दीन अवस्था का जिस सूक्ष्म व्यंजनात्मक दृष्टि से वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। इस में रावण की ढिठाई प्रकट नही होती बल्कि काम से पीड़ित उसके हृदय की तड़पन मिलती है। उस सुनयने सीता के रूप को देखकर वह स्वयं अपने वश में नही रह गया था।

'अध्यात्म रामायण' में जो वचन रावण ने सीता से कहे हैं उनमें कामवासना की गन्ध अपने विशुद्ध रूप में नही है, उसमें तो रावण ढोंगी, ढीठ (Hypocritical) दृष्टि से सीता को देखकर पहले राम के प्रति कटु व्यंग पूर्ण वचन कहता है। ठीक भी है, वह वहां काम से पीड़ित हुआ सीता को अपने वश में करने नही आया था बल्कि राम के प्रति कटु-से-कटु वचन कह कर हनुमान के हृदय को उत्तेजित करने आया था।

रावण ने सीता से कहा—हे सीते ! मुझको देखकर तू क्यों अपने शरीर को छिपा रही है। लक्ष्मण-सहित राम तो वनवासियों के मध्य में स्थित हो रहा है इस लिये वह किसी को दिखाई नहीं देता है। मैंने भी बहुत से दूत राम को देखने को भेजे परन्तु वह किसी को दिखाई नहीं दिया, इससे यह मालूम पड़ता है कि राम इस संसार में जीवित नहीं है और अगर कहीं होगा भी तो वह तेरी खबर नहीं लेता है। ऐसे प्रीति-रहित राम के साथ रह कर तू क्या करेगी। जब तेरे समीप राम रहा तो तूने हर समय उसका आलिंगन भी किया लेकिन फिर भी राम के हृदय में तेरे लिये प्रेम नहीं है। वह तेरे साथ सारे भोगों को भोगता है, ऐसा कृतघ्न, निर्गुण, और अधम वह राम है।

देख, तू अपने को पतिव्रता कहती है और अपने पति के लिये इतना शोक करती है लेकिन मैं तेरा हरण कर लाया तब भी वह राम मुझे देखने नहीं आता। वह आये भी क्यों? वह पूरी तरह भक्तिहीन है और तुझमें उसकी सच्ची प्रीति नहीं है। वह राम हर तरह से पराक्रमहीन है। और तुझमें वह ममता भी नहीं रखता है। वह बड़ा गर्वयुक्त है। वास्तव में तो वह बड़ा मूढ़ है परन्तु अपने को बड़ा पंडित मानता है।

हे भामिनी! मनुष्यों में अधम और तुझसे विमुख ऐसे प्रीति-रहित राम को पाकर तू क्या करेगी। तेरे लिये अत्यन्त प्रीतियुक्त मैं हूँ। तू मुझे प्राप्त कर। मैं असुरों में श्रेष्ठ हूँ। अगर तू मुझसे प्रेम करेगी तो देवता, गन्धर्व, यक्ष, और किन्नरों की स्त्रियाँ तेरी सेवा करेंगी। तू इन सबकी स्वामिनी होगी।

उक्त वर्णन में रावण ने अनेक प्रकार से राम की बुराई की है लेकिन 'अध्यात्म-रामायण' के टीकाकारों को यह जानते हुए भी कि रावण ने राम के हाथों अपनी मृत्यु चाह कर ही ये कठोर वचन कहे हैं, ये मर्यादा के प्रतिकूल शब्द असह्य हो उठे हैं तभी उन्होंने इसके साथ इन्हीं शब्दों का अर्थ एक आध्यात्मिक रूपक के रूप में प्रस्तुत किया है जिससे कुछ क्षण तक जो लेखनी विकारयुक्त शब्दों पर चली है अपने पाप का प्रायश्चित्त कर फिर राम की भक्ति-व्याख्या मे लीन हो जाय।

राम की निन्दा में कहे गये इन साढे छः श्लोकों का दूसरा गुप्त अर्थ इस प्रकार किया है:

(१) रावण ने यह कहा था कि राम वनवासियों के साथ रहता है, और कभी दिखाई देता है कभी नहीं इसका आशय है—वनवासी लोग अर्थात् संन्यासी अथवा योगी जिनका सांसारिक मनुष्यों से कोई सम्बन्ध नही होता उनके सग साक्षात् परमात्मा राम रहता है। यद्यपि सब प्राणियों के हृदय मे स्थित होने के कारण सबके साथ ही परमात्मा रहता है फिर भी मूढ़ पुरुषों को अविद्या के कारण दरिद्र पुरुष की निधि के समान उसका ज्ञान नही होता। ज्ञानी लोग सदा और सर्वत्र राम को छोड़कर और किसी वस्तु को सत्य मानकर नही देखते।

इसी आशय से रावण ने कहा है कि राम वनवासियों के साथ रहता है।

(२) रावण ने यह कहा कि मैंने अपने बहुत से दूत राम को देखने भेजे लेकिन वे राम को नही देख पाये इसका आशय है—यहाँ लोक (दूत) शब्द का व्याकरण की रीति से अर्थ होता है इन्द्रिय और इन्द्रियों के देवता; इसीलिये रावण कहता है कि मैंने अपनी इन्द्रियों के देवताओं के साथ मन, बुद्धि और इन्द्रियों को साक्षात् परमात्मा राम को देखने भेजा। इन सबने प्रयत्न भी किया लेकिन कोई भी राम को नहीं देख पाये क्योंकि राम बुद्धि से भी परे हैं। उसको रजोगुण-युक्त मेरी इन्द्रियाँ कैसे देख सकती हैं।

(३) रावण ने सीता से यह कहा था कि जो राम तेरी इच्छा नहीं करता उ राम को प्राप्त करके तू क्या करेगी ? इसका आशय है—राम तो आत्मा है जिसके अन्य पदार्थों में स्वभाव से ही रति नहीं है। सीता प्रकृति-रूपिणी है, उसमें उसकी प्रीति कैसे हो सकती है।

(४) रावण ने कहा था कि राम तुझे आलिंगन करता है, तेरे पास रहता है लेकिन फिर भी तुझको स्नेह नहीं करता इसका आशय है—जिस प्रकार शक्ति और शक्तिमान का भेद नहीं है उसी प्रकार शक्ति-रूप में आलिंगन की तरह परमात्मा सदा समीप रहता है लेकिन आत्म-रूप होने से वह आप्तकाम रहता है इसीलिये बाह्य पदार्थों से उसका सम्बन्ध नहीं रहता।

शक्ति की प्रतीति तो कार्य द्वारा होती है; परमेश्वर की शक्ति का कार्य यह सारा जगत् है इसीलिये अगर परमेश्वर का स्नेह इस जगत् में हो तो प्रकृति-रूप शक्ति में भी उसका स्नेह अवश्य होना चाहिये लेकिन जीव की तरह उसका प्रकृति में स्नेह नहीं होता है इसीलिये रावण ने सीता से कहा था कि राम का तुझमें स्नेह नहीं है।

(५) रावण ने सीता से कहा था कि तेरे किये हुए सब भोगों एवं गुणों को राम भोगता है फिर भी यह नहीं जानता कि मैंने कुछ भोगा इसीलिये वह कृतघ्न, निर्गुण और अधम है, इसका आशय है—जितने भोग करने के योग्य विषय हैं वे सब बुद्धि की वृत्तियों द्वारा प्राप्त किये गये हैं इसीलिये वे माया के विषय हैं। उन विषयों को और सुख-दुःखादि संकल्प जो बुद्धि के गुण हैं उनको भोग कर भी जो यह अभिमान नहीं करता कि मैं राम में भोगने वाला हूँ उसके किये हुए कर्मों का नाश करने वाला वह साक्षात् परमात्मा-रूप राम है इसीलिये उसका नाम कृतघ्न है अर्थात् भक्तों के किये हुए कर्मों को ज्ञान-रूपी अग्नि से भस्म करने वाला कृतघ्न राम।

परमात्मा राम के गुणों की क्या व्याख्या हो सकती है इसीलिये योगियों ने उसे निर्गुण माना है।

राम का रूप वाणी के लिये अगोचर है इसीलिये राम अधम है।

(६) रावण ने सीता से कहा था कि तुझ पतिव्रता को मैं हरकर ले भी आया फिर भी तेरी रक्षा करने को वह अभी तक नहीं आया वह तुझसे प्रीति नहीं करता है। वह हर तरह से पराक्रमहीन और ममत्वहीन है। वह मूढ़ गर्व-युक्त हो अपने को पण्डित समझे हुए है। इसका आशय है—यह बात प्रसिद्ध है कि रावण ने तप करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया था और उसी के प्रसाद से उसने सारे लोकों को वश में कर लिया था। ब्रह्मा सब प्रकृति-कार्य जगत् का स्वामी है और सीता प्रकृति-रूपिणी है, वह परमेश्वर राम की शक्ति है और सदा राम के अधीन रहती है। सब देव उसके अधीन हैं और सब जगत् सीता का स्वरूप है इस-

लिये जब रावण ने ब्रह्मा के वर से सारे जगत् को वश में कर लिया इसका अर्थ हुआ सीता को कार्य द्वारा ले आना और रावण के अन्याय से सब लोग दुःखी रहे यही सीता का दुःखी और शोकयुक्त होना है। चूँकि परमात्मा राम आप्तकाम होने से किसी में प्रीति नहीं रखता यही उसका सीता मे प्रीतिरहित रहना हुआ। चूँकि व्यापक परमात्मा का आना-जाना नही होता इसलिये राम न आया यह कहना भी ठीक है वैसे देवताओं की अधीश्वरी और परमेश्वर की शक्ति-रूप सीता लंका मे आकर भी राम से अलग नही रही क्योंकि शक्ति और शक्तिमान का भेद सर्वसम्मत है।

(७) रावण ने सीता से कहा था कि राम नराधम है, तुझसे विमुख है इसका आशय है—मनुष्य जिससे अधम है वही नराधम है अर्थात् सब मनुष्यों मे उत्तम है। विमुख अर्थात् जिसका सौन्दर्य में तेरे से भी विशिष्ट श्रेष्ठ मुखारविन्द है वही राम है, उसके सामने तू कौनसी अपनी श्रेष्ठता प्रकट करेगी।

इस तरह रावण के राम के प्रति कहे हुए निन्दायुक्त वचनों का दूसरा गूढार्थ निकाल कर सरस्वती ने परमात्मा राम की स्तुति ही की है। 'वाल्मीकीय रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' में रावण द्वारा सीता से कहे हुए वचनों में दृष्टिकोण का एक भेद और है। 'वाल्मीकीय रामायण' में कथा के अन्तर्गत जहाँ नाटकीयता का स्वच्छन्द विकास है वहाँ 'अध्यात्म रामायण' में उसकी घुटन है। 'वाल्मीकीय रामायण' में परिस्थिति के अनुकूल भाव की धारा पात्रों के बीच में निर्बाध गति से बही है उसमें किसी प्रकार की नैतिकता एवम् अध्यात्मिकता की छाप कथाकार ने नही लगाई है और न अपने स्वानुभूत दृष्टिकोण के अन्तर्गत प्रसंग का औचित्यीकरण करने का प्रयत्न किया है। 'वाल्मीकीय रामायण' के उक्त प्रसंग में मर्यादा की घुटन नही है बल्कि कवि की उस सूक्ष्म अन्तदृष्टि की अभिव्यक्ति है जो जीवन के सत्य को बाह्य 'धार्मिक-साम्प्रदायिक आडम्बरों से हटाकर अपने स्वाभाविक रूप मे चित्रित करना चाहती है।

'अध्यात्मक रामायण' के टीकाकार की उपर्युक्त दार्शनिक विवेचना यह स्पष्ट करती है कि किस तरह परवर्ती कथाकारों एवम् टीकाकारों ने एक ऐतिहासिक कथा के रूप को अपनी लौकिक परिधि से हटाकर अलौकिक के आवरण मे चिन्तनात्मक स्वरूप की दार्शनिक व्याख्या की गौण पृष्ठभूमि के रूप में रही और उसका कोई ऐतिहासिक महत्व न होकर केवल धार्मिक महत्व ही रहा। कारण स्पष्ट है—इन परवर्ती कथाकारों द्वारा रचित कथाओं का प्रमुख पात्र राम एक क्षत्रिय राजकुमार न था, न वह केवल एक महापुरुष था, वह तो साक्षात् परमात्मा था, वह परमात्मा जिसका ध्यान योगी निरन्तर किया करते हैं। वह संसार से परे है निर्लिप्त है, सबके हृदय मे वास करता है लेकिन उस सर्वव्यापी परमेश्वर को जानना बड़ा कठिन है। राम के इसी निर्गुण स्वरूप को तथा साथ में अधिक सहज प्राप्त होने वाले उसके

सगुण स्वरूप की महिमा वर्णन करने में ही तो इन कथाकारों की लेखिनी अपनी सार्थकता ढूंढती है। भ्रमवश या मायावश आगे चलकर लोग कथा को स्थूल भौतिक दृष्टि से न आंकें इसीलिये कथाकार के साथ टीकाकार भी कथा की आध्यात्मिक विवेचना करके अपने धार्मिक दृष्टिकोण की स्थापना करने में काफी सजग रहे हैं।

'अध्यात्म रामायण' मूलतः चिंतन-प्रधान ग्रंथ है इसलिये इसमें अन्य रामकथाओं से कहीं अधिक राम के दिव्य रूप की दार्शनिक विवेचना मिलती है। 'वाल्मीकीय रामायण' रामकथा का आदि ग्रंथ है, उसमें तो राम के अलौकिक रूप की स्थापना में ही कई स्थान पर अन्तर्विरोध मिलता है। उसमें कथाकार ने राम के मानवीय रूप की चरित्रगत शिथिलताओं को आध्यात्मिक विवेचना के नीचे ढांपने का सजग प्रयत्न नहीं किया है। 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा के वर्तमान स्वरूप से तो हमें यही लगता है कि जिस मूलकथा का यह सम्पादित रूप आया है उसमें राम को अवश्य एक क्षत्रिय राजा एवं महापुरुष ही माना गया होगा। उसी के समकालीन 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में भी यद्यपि एक स्थान पर राम को अलौकिक रूप में लिया गया है लेकिन बाकी कथा मानव-राम की कथा है। इनके अलावा बाद की रामकथाओं में तो पग-पग पर कथाकार सजग रहा है कि कहीं पाठक यह भूल न जाय कि ये राम जो संसार में मनुष्यवत लीला कर रहे हैं, मूल-रूप में भगवान हैं, और केवल भक्तों के संकट-निवारणार्थ ही इन्होंने यह माया-रूप स्वीकार किया है। जैन कथाकारों ने ब्राह्मणों की टक्कर पर राम को तीर्थंकर देव ऋषभदेव का अवतार ही माना है। ये सब परवर्ती साम्प्रदायिक दृष्टिकोण हैं जिनका मूल उद्गम भागवत सम्प्रदाय तथा भक्ति के क्षेत्र में उसका विकास है। बौद्धों की प्रतिक्रिया में ब्राह्मणों द्वारा भगवान् के अवतारवाद के दृष्टिकोण का स्थापित किया जाना भी अधिकतम मात्रा में इन साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के लिये उत्तरदायी है।

यह अवतारवाद का दृष्टिकोण किस तरह समाज में जमा, इसने किस तरह अपना विकास किया तथा इसका अपने युग के चिंतन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसका विस्तृत विवेचन हम कथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अनुशीलन करते समय करेंगे।

'रामचरित मानस' में रावण द्वारा सीता से कहे गये मन को लुभाने वाले वचनों का उल्लेख नहीं है उसमें तो केवल सांकेतिक रूप में निम्न चौपाइयाँ हैं :

> बहु विधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥
> कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥
> तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥

हो सकता है तुलसीदास जी ने नैतिकता एवं मर्यादा का विरोध समझकर ही 'वाल्मीकीय रामायण' के रावण द्वारा ... एवं विलास पूर्ण शब्दों

को यहाँ नही लिया क्योंकि फिर उन्हे भी 'अध्यात्म रामायण' की तरह उसके गूढार्थ की विवेचना करनी पड़ती।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में यह रावण-सीता-संवाद बहुत वृहत् रूप में है। इसीप्रकार 'अद्भुत रामायण' में भी इस प्रसंग का वर्णन नही है। 'पद्म पुराण' में सांकेतिक रूप से यह प्रसंग वर्णित है। 'श्रीमद्भागवत' की रामकथा में भी शुकदेव जी केवल कथा का तारतम्य मिलाने के लिये ही परीक्षित से कहते हैं कि रावण ने हर तरह से सीता को लुभाया, उसे त्रस्त भी किया लेकिन वह पतिव्रता नारी उसके वश मे न आई।

'सूरसागर' की रामावतार की कथा में रावण-सीता-संवाद है लेकिन अति संक्षिप्त रूप मे। इसमे मूल रूप से 'रामचरित मानस' का ही अनुकरण-मात्र है।

रावण के इस तरह के अधर्मयुक्त वचन सीता के अन्तर को असह्य हो उठे। वह तपस्विनी तृण को बीच में रखकर दीन स्वर से बोली—हे रावण! तू अपने मन को मुझसे हटाकर अपनी स्त्रियों में लगा क्योंकि तू मुझे चाहने के योग्य वैसे ही नही है जैसे पापी पुरुष सिद्धि की चाह करने योग्य नही होता। बड़े पवित्र कुल की पतिव्रता बहू-बेटी के लिये जो निन्दित है वैसे अकार्य मैं नही कर सकती।

इतना कहकर सीता ने मुँह फेर लिया और रावण से अनेक नीतियुक्त बातें कहीं। उसने कहा हे राक्षसाधम। मैं तेरे भोग के योग्य भार्या नही हूँ क्योंकि एक तो पराई पत्नी हूँ, दूसरे पतिव्रता हूँ। तू अच्छी तरह धर्म की ओर दृष्टि कर और सज्जनो के धर्म पर आरूढ़ हो। जैसे तू अपनी स्त्रियों की रक्षा करता है उसी तरह तुझे दूसरो की स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये। देख, जो अपनी ही स्त्रियों से संतुष्ट न होकर चंचलता करता है उस अजितेन्द्रीय और बुरे कर्म पर आरूढ पुरुष को पर स्त्रियाँ नष्ट कर देती हैं। क्या यहाँ सज्जन लोग नही हैं अथवा तू उनका सत्संग नहीं करता; क्योंकि यदि तूने उनका अनुसरण किया होता तो तेरी बुद्धि ऐसी विपरीत और आचारहीन क्यों होती? देख, जो राजा हितकारी और धर्मवचनों को नहीं सुनता तथा अन्याय मे तत्पर रहता है उसके राष्ट्र और नगर अत्यंत समृद्ध होने पर भी नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये रत्नों से भरी तेरी लंका केवल एक तेरे ही अपराध से शीघ्र ही नष्ट हो जायगी।

यदि तू लंका को बचाना चाहता है और अपने प्राणों का नाश नही चाहता है तो राम को अपना मित्र बना ले और मुझ दु:खिनी को मेरे पति राम से मिला दे। अगर तू अन्यथा करेगा तो लोकनाथ श्री राघव के हाथों तेरी मृत्यु अवश्यम्भावी है। वे रामचन्द्र तेरे इन बड़े-बड़े राक्षसो को ऐसे उखाड़ फेंकेंगे जैसे साँप को गरुड़ उठा ले जाता है। जैसे श्री वामन ने तीन पैरो से तीनों लोको को नापकर दैत्यों के हाथ से देवताओं की राज्यलक्ष्मी को छुड़ा लिया था वैसे ही वे शत्रुनाशक, राम तेरा नाश

करके मुझे मुक्त करेंगे। जैसे एक भुजा वाले वृत्रासुर को मारने में इन्द्र को कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ा इसी प्रकार तुझ अकेले को मारते राम और लक्ष्मण को क्या विलम्ब लगेगा।

हे अधम! आश्रम में उन मनुष्य-सिंहों को न देखकर तू कुत्ते की तरह उसमें घुसा और मुझे हर लाया। अब अगर तू कुबेर के पर्वत पर या उसके घर में अथवा वरुण की सभा में भी जा छिपेगा तो भी श्री राघव तुझे स्वयं अवश्य मारेंगे। अब तेरी स्वयं काल भी रक्षा नहीं कर सकता। भला वज्र से मारा महावृक्ष बच सकता है।

उपर्युक्त कथन में पहले सीता ने रावण को धर्म तथा मर्यादा की बातें बताई हैं फिर उससे कठोर वचन कहे हैं और उसके नाश को भी अवश्यम्भावी बताया है क्योंकि धर्म के प्रतिकूल आचरण करके दैव से कौन बच सकता है। राम की अपार शक्ति का भय दिखाकर एक बार सीता ने फिर रावण को राम से मित्रता करके नीति के पथ पर आने की सलाह दी है।

'अध्यात्म रामायण' में सीता संतुलित वाणी में रावण को धर्म और नीति की बातें नहीं समझाती बल्कि क्रोध-युक्त वाणी में उसके नाश की भविष्यवाणी करती दिखाई देती है। वह रावण से कहती है—हे नीच! राम या तो बाणों से समुद्र को सुखाकर या समुद्र का सेतु बाँधकर तेरा नाश करने आयेंगे।

इस प्रकार 'रामचरित मानस' में सीता तिनके की आड़ में अनेक क्रोध-युक्त वचन रावण से कहती है। यहाँ वह नीतियुक्त बातें करके रावण के हृदय-परिवर्तन का प्रयत्न नहीं करती, और न उसे राम से मित्रता करने की सलाह देती है। तुलसीदास जी के सामने तो रावण की राम से मित्रता का प्रश्न ही नहीं उठता था, वे तो रावण का त्राहिमाम् त्राहिमाम् करते राम की शरण में जाना स्वीकार कर सकते थे।

'सूरसागर' की रामकथा में भी 'मानस' की तरह सीता के केवल क्रोधयुक्त तथा चुनौतीपूर्ण (challenging) वचनों का उल्लेख है।

इन सबसे हम एक निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'वाल्मीकीय रामायण' के सम्पादन-काल के पश्चात् अन्य रामकथाओं के रचना-काल तक स्त्री का शिक्षा के क्षेत्र में स्वतंत्र अस्तित्व प्रायः समाप्त हो चुका था। वह केवल पतिव्रत धर्म की मर्यादा के भीतर पुरुष की दासी-स्वरूप एक गृहिणी ही रह गई थी। यों तो मातृ-सत्तात्मक समाज के ह्रास तथा पितृसत्तात्मक समाज के उदय के साथ ही स्त्री अपना स्वतंत्र सामाजिक अस्तित्व खो बैठी थी, फिर भी व्यवस्था का बदल जाना एक झटके के साथ सामाजिक सम्बन्धों को नहीं बदल सकता, वह एक साथ पूर्व-प्रचलित संस्कारों में आमूलचूल परिवर्तन नहीं ला सकता। इसलिये ऐतिहासिक विकास-क्रम का अध्ययन करने से हमें पता लगता है कि पितृसत्तात्मक समाज के आ जाने के

स्त्री गण-व्यवस्था में अपना राजनीतिक स्वत्व खो बैठी थी, लेकिन उसके सामाजिक अधिकार फिर भी बरकरार थे। वह पुरुष की दासी न बनकर उसकी सहयोगिनी के रूप में रही थी। उसके साथ युद्ध में जाती थी, मन्त्रणा में भी पुरुष के साथ बैठती थी शिक्षा के क्षेत्र में भी इसका अधिकार था, वेद और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने का उसे खुला अधिकार था। यहाँ तक कि वैदिक-काल, जो पितृसत्तात्मक समाज के उदय का समय है उस समय स्त्री यज्ञोपवीत धारण करने की भी अधिकारिणी थी लेकिन धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों के पुरुष के हाथ में केन्द्रीभूत हो जाने के कारण स्त्री अपना स्वत्व खोने लगी। वह नाम-मात्र की पुरुष की सहयोगिनी रह गई बल्कि पूरी तरह उसकी दासी बनी। पातिव्रत धर्म के अन्तर्गत इस बदलती परिस्थिति का धर्म के रूप में समर्थन किया गया। अब पति ही स्त्री के लिये ईश्वर बन गया, उसके बिना स्त्री की मुक्ति कहीं नहीं हो सकती थी। वह ही समस्त-तीर्थ स्थानों के पुण्यफल के रूपमें मान्य हुआ। पति, विरोध धर्म-विरोध माना गया। सार-रूप में पति ही स्त्री के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के देने वाला स्वीकृत हुआ। अब स्त्री के अधिकारों का यहाँ तक ह्रास हुआ कि उसे कोई पूर्ण नहीं माना गया और शूद्र योनि समझ कर ही उसका सारा शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया। उसे शिक्षा की क्या आवश्यकता थी? पुरुष स्त्री के स्वतन्त्र चिन्तन के पक्ष में नहीं था क्योंकि उससे अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष की निरंकुश सत्ता का विरोधी-पक्ष सबल होता था। प्राचीन काल में अनेक सुशिक्षित विदुषी स्त्रियों की कथा आती है। गार्गी, मैत्रेयी आदि उस समय की काफ़ी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ थी। चिन्तन के क्षेत्र में वे कितनी आगे बढ़ी हुई थीं इसके उदाहरण स्वरूप हम याज्ञवल्क्य के और गार्गी के बीच अलौकिक के सम्बन्ध में हुई वार्त्ता को उद्धृत करते हैं:

एक बार लाह्यायनि भुज्यु ने याज्ञवल्क्य से पूछना शुरू किया। उसने कहा— एक बार हम अनेक विद्यार्थी मद्र प्रान्तों में अध्ययनार्थ व्रतचरण करते हुए पर्यटन कर रहे थे। विचरते हुए पतंचल के घरों में जा पहुँचे। उस पतंचल की कन्या गन्धर्व-गृहीता थी। हमने गन्धर्व से पूछा—तू कौन है? उसने कहा—मैं गोत्र से आंगिरस सुधन्वा हूँ। उससे लोकों के अन्त जब हम पूछ रहे थे तो हमने उससे कहा—बताइये परीक्षित कहाँ होंगे? वही मैं तुमसे पूछता हूँ, हे याज्ञवल्क्य! परीक्षित कहाँ होंगे?

याज्ञवल्क्य ने बताया—वे वहाँ चले गये जहाँ अश्वमेध याजी जाते हैं।

वे कहाँ जाते हैं? सूर्य का चक्र देवरथ है। एक अहोरात्र का नाम देवरथाह्न्य है।

याज्ञवल्क्य ने कहा—यह लोक बत्तीस देवरथाह्न्य है। उसके चारों ओर दुगुनी पृथ्वी है, फिर दुगुना समुद्र है। फिर पृथ्वी और समुद्र के बीच उस्तरे की धार

से भी पतला आकाश है। इन्द्र ने सुपर्ण होकर उनको वहाँ वायु के प्रति समर्पित कर दिया। वायु उन्हें धारण कर वहाँ ले गया जहाँ अश्वमेध याजी रहते हैं।

भुज्यु लाह्यायनि चुप हो गया।

तब चाक्रायण उषस्त ने पूछा—परन्तु वह भी उत्तर पाकर चुप हो गया।

तब कुषीतक पुत्र कहोल ने पूछा। वह भी चुप हो गया क्योंकि उसे ठीक उत्तर मिल गया।

तदनन्त वाचक्नवी गार्गी ने पूछा—जो सब पार्थिव जल में ओत-प्रोत हैं, तो जल किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञवल्क्य—वायु में।'

'वायु किसमें ?''

'अन्तरिक्ष लोकों में।'

'वह किसमे ?'

'गन्धर्व लोकों में'

'वह किसमें ?'

'आदित्य लोक में।'

'वह किसमें ?'

'चन्द्र लोक में।'

'वह किसमें ?'

'नक्षत्र लोक मे।'

'वह किसमें ?'

'देव लोकों में।'

'वह किसमें ?'

'इन्द्र लोक में।'

'वह किसमे ?'

'प्रजापति लोक में।'

'वह किसमें ?'

'ब्रह्म लोक में।'

'वह किसमें ?'

याज्ञवल्क्य ने कहा—गार्गी। न अति पूछ। अति पूछने से तेरा सिर न गिर पड़े। तेरी बुद्धि न भ्रम में पड़ जाये। निश्चय तू मनति पूछने योग्य देवता को पूछ रही है, तू बहुत न पूछ।

तब वाचक्नवी गार्गी चुप हो गई।

यह स्त्री को दर्शन के क्षेत्र में उस विद्वान् ऋषि के ऊपर विजय थी। ज्ञान के लिये स्त्री की अतृप्त बुद्धि को याज्ञवल्क्य तर्क देकर संतुष्ट न कर सका। वाचक्नवी गार्गी सूक्ष्म से सूक्ष्मतम की ओर खोज करती बढ़ रही थी, वह सृष्टि के रहस्य को जानना चाहती थी लेकिन याज्ञवल्क्य तर्क द्वारा उसे सन्तुष्ट न कर सका। अन्त में उसने वाचक्नवी गार्गी को मन्य भय दिखाकर चुप कर दिया।

इसके बाद उद्दालक आरुणि ने कहा—एक बार हम विद्यार्थी-लोग पतंचल काप्य घर मद्र प्रान्त में पहुँचे। वहाँ हम यज्ञ पढ़ते थे। उस पतंचल काप्य की भार्या गन्धर्व-ग्रहीता थी। हमने पूछा—तू कौन है? वह बोला—आथर्वण कबन्ध हूँ।

उसने काप्य से, हम से, सबसे पूछा—वह सूत्र क्या है? जिससे लोक, परलोक सर्वभूत संग्रथित हैं।

हमने कहा—हम नहीं जानते। अब हे याज्ञवल्क्य, तू बता। यदि नहीं बताता और गौएँ ले जायेगा तो तेरा सिर गिर पड़ेगा।

याज्ञवल्क्य ने कहा—जानता हूँ।

'बता?'

'वह वायु है।'

'अन्तर्यामी का वर्णन कर।'

उसने वर्णन किया। तब वाचक्नवी गार्गी ने पूछा—पूज्य ब्राह्मणो! अब मैं याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछूँगी। यदि यह उत्तर देगा तो तुम सबसे बढ़कर यह ब्रह्म-ज्ञानी है।

उन्होंने कहा—गार्गी, पूछ।

उसने कहा—जैसे काशी का या वैदेह का उग्रपुत्र ज्यारहित धनुष ज्या-युक्त करके शत्रुओं को जीतने वाले, नोंक वाले दो तीर हाथ में पकड़कर शत्रु के सम्मुख खड़ा हो, ऐसे ही दो प्रश्न लेकर मैं तेरे सामने खड़ी होती हूँ। तू उत्तर दे।

याज्ञवल्क्य ने कहा—गार्गी! पूछ।

वाचक्नवी गार्गी ने पूछा—द्युलोक से ऊपर, पृथ्वी से नीचे, द्युलोक पृथ्वी के मध्य, भूत, वर्तमान और भविष्यत् जो कुछ है वह किसमें ओतप्रोत है?

'आकाश में।'

'तुझे नमस्कार हो। दूसरा प्रश्न सुन।'

'गार्गी कह।'

'आकाश किसमें है?'

'वह अक्षर में। वह अस्थूल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, न लाल, न चिकना, छाया-रहित, अन्धकारहीन, अवायु, आकाश-रहित, असंग, रस-रहित, गंध, नेत्र-श्रोत्र-वाणी, मन, अग्नि भाव, प्राण, मुख, परिमाण-रहित, अन्तर्रहित, बाहर रहित, है। वह कुछ नहीं

जाता। उसकी ही आज्ञा में सब-कुछ नियमित है। जो उसे न जानकर मरता है वह दीन है। जो जानकर आराधना करके मरता है वह ब्राह्मण है।

अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर संतुष्ट हुई गार्गी ने कहा—हे पूज्यनीय ब्राह्मणो! यदि नमस्कार करने से इससे तुम छूट जाओ तो इसी को बहुत मानो। तुममें से इस ब्रह्मवेत्ता को कोई भी नहीं जीत सकेगा।

तत्पश्चात् वचक्नु की पुत्री चुप हो गई।

(बृहदारण्यकोपनिषद्, ३ अ०)

उपर्युक्त वार्ता के अनुसार गार्गी याज्ञवल्क्य के टक्कर की विदुषी स्त्री है जो ब्रह्मवेत्ता ऋषि की भी परीक्षा लेती है। वह स्त्री ब्रह्मज्ञान के एकमात्र अधिकारी ब्राह्मणों के सामने ही ऋषि की विजय की घोषणा करती है।

परवर्त्ती-काल में स्त्रियाँ इतनी विदुषी न रहीं, यहाँ तक कि ऋषि-पत्नियों के बारे में भी जो कथाएँ मिलती हैं वह केवल उनके अपनी मर्यादा के भीतर संकुचित ज्ञान को ही प्रकट करती हैं। रामायण में ही वर्णित अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया सीता को वेद-पुराणों का साक्ष्य देकर पातिव्रत धर्म की शिक्षा देती है जबकि वेद मे पातिव्रत धर्म के ऊपर कोई विशेष जोर नहीं दिया गया है। विद्वानों का मत है कि श्वेतकेतु ने ही एक पुरुष तथा एक स्त्री की मर्यादा नियत की थी।

इस सबसे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि 'वाल्मीकीय रामायण' का सम्पादन-काल जो गण-व्यवस्था का अन्त तथा सामन्तवाद का उदयकाल माना जाता है स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व एवम् अधिकारों के ह्रास का समय तो था लेकिन फिर भी उसके शिक्षा के अधिकार का पूरी तरह से लोप नहीं हुआ था। पातिव्रत धर्म के बन्धनों ने उसे पूरी तरह जकड़ लिया था लेकिन फिर भी वह प्रत्येक आपत्ति में केवल स्वामी-पति की ही दुहाई नहीं देती थी बल्कि उसे अपनी बुद्धि पर भी भरोसा था। इसी सामाजिक परिस्थिति का अप्रत्यक्ष रूप से 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णित सीता के चरित्र पर प्रभाव पड़ा है जो परवर्त्ती रामकथाओं में देखने में नहीं आता।

× × ×

सीता के तिरस्कार भरे शब्द सुनकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और उसने सीता से कहा—क्या करूँ तेरे ऊपर जो मेरी आसक्ति है वही मेरे क्रोध को रोकती है, इसीलिये हे सुन्दरमुखि! मैं तेरा घात नहीं करता, नहीं तो तू वध और अनादर के योग्य है। तू मुझे जो कठोर वचन कहती है उनके लिये तेरा बड़ी निर्दयता से वध करना ही ठीक है। मैं दो महीने तक तेरी बाट और देखता हूँ, इस अवधि में यदि मुझे तू अपना पति न करना चाहेगी तो रसोईदार लोग मेरे प्रातःकाल के भोजन के लिये तेरे शरीर को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।

सीता ने यह सुनकर अनेक कठोर शब्दों से रावण को दुतकारा और अन्त में अपने हरे जाने का गूढ़ रहस्य भी उसे बताया। उसने कहा—हे दशग्रीव ! मैं अपने तेज से तुझे भस्म कर सकती हूँ परन्तु एक तो इस विषय में मुझे राम की आज्ञा नहीं है दूसरे तपस्या की रक्षा के लिये यह काम मैं नहीं कर सकती। तेरा सामर्थ्य नहीं था कि राम के पास से मुझे हर लाता, परन्तु तेरे वध के लिये यह उपाय रचा गया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

इन असह्य शब्दों को सुनकर रावण लाल नेत्रों से सीता को देखता हुआ साँप के तुल्य हाँकता बोला—तू नीति और अर्थ से हीन व्रत का पालन कर रही है, मैं अभी तेरा नाश करता हूँ जैसे सूर्य संध्या का नाश करता है।

इसके बाद रावण ने उन विचित्र भयानक स्वरूप वाली राक्षसियों से कहा—हे राक्षसियो ! सीधे-उलटे उपाय से, चाहे साम, दान, दण्ड, भेद से किसी प्रकार वैदेही को मेरे वश में करो।

रावण क्रोधयुक्त वाणी से गरज रहा था इतने में ही धान्यमालिनी नाम की राक्षसी रावण से लिपट कर बोली—महाराज, आओ मेरे साथ विहार करो। इस सीता से आपको क्या काम है ? इसके विरह में आपका पाण्डुवर्ण हो गया है। जो स्त्री चाहती न हो उसकी चाह करने वाले पुरुष का शरीर भी सतप्त होता है और अभिलाषिणी कामिनी की जो इच्छा करता है उसको सुन्दर प्रीति प्राप्त होती है।

यह सुनकर रावण हँसकर अपने प्रदीप्त सूर्य-सदृश मन्दिर में घुस गया।

'रामचरित मानस' के अनुसार रावण ने केवल एक मास की अवधि ही सीता को दी थी :

मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना ॥

इसके अनुसार रावण सीता को मारने को दौड़ा था लेकिन मन्दोदरी ने नीति-युक्त बातें कहकर उसे रोक लिया।

रावण के चले जाने के पश्चात् उन भयंकर रूप वाली राक्षसियों ने सीता को अनेक तरह से धमकाना और डराना शुरू किया। 'वाल्मीकीय ... तेईसवें
तथा चौबीसवें सर्ग (सुन्दरकाण्ड) में एकजटा, विकटा, हरिजटा ...
कराल शुष्कोदरी विनता, लम्बे स्तनों वाली एक विकटा रा...
प्रयसा, अजामुखी तथा शूर्पणखा आदि ...
सीता को समझाया लेकिन
राक्षसियों द्वारा सीता
किया है, जिसे
उच्चता

आनन्दयुक्त होकर राम के समीप बैठा है। वह भक्ति-युक्त हो राम के चरणारविन्द की सेवा रहा है।

'रामचरित मानस' में त्रिजटा ने अपना स्वप्न इस प्रकार कहा :

सपने बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥

'सूरसागर' की रामकथा में सार-रूप में वही वर्णन है जो 'वाल्मीकीय रामायण' में—लेकिन वह अति संक्षिप्त रूप में है। उसमें स्वप्न का वर्णन तो चित्र-रूप में न्यूनतम अंश में नहीं आ पाया है। उसमें 'मानस' की तरह हनुमान के लंका को जला देने की बात नहीं है बल्कि निम्न पंक्ति है :

प्रगट्यो आइ लंक दल कपि को, फिरी रघुबीर दुहाई।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में स्वप्न का वर्णन संक्षिप्त-रूप से 'वाल्मीकीय- रामायण' जैसा है लेकिन वह एक स्वप्न न होकर बहुत से स्वप्न हैं। उनमें एक स्वप्न त्रिजटा ने यह भी देखा था कि श्री रामचन्द्र के बाण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर छाये हुए हैं। *त्रिजटा ने स्वप्न में यह भी देखा था कि लक्ष्मण हड्डियों* के ढेर पर चढ़े हुए मधु और खीर खा रहे हैं और ऐसा जान पड़ता था कि वे सब दिशाओं को जला कर भस्म कर देंगे।

इसके बाद त्रिजटा ने यह भी देखा कि वैदेही का सारा शरीर खून से तर हो रहा था और एक बाघ उसकी रक्षा कर रहा था। इसके बाद फिर वह उत्तर दिशा में चली गई।

'महाभारत' में ही त्रिजटा सीता को धैर्य्य बँधाती हुई यह और कहती है—सखी सीता, तुम मुझ पर विश्वास करो और निडर होकर मेरी बात सुनो। *अविन्ध्य नाम* के एक बुद्धिमान बुड्ढे राक्षस हैं। वे राम के हितचिन्तक हैं। उन्होंने तुमसे कहने के लिये मुझे कहा कि तुम मेरी ओर से समझा कर और प्रसन्न करके सीता से कहना कि तुम्हारे स्वामी राम अपने भाई लक्ष्मण सहित कुशल से हैं। वे इन्द्र के समान बली वानरराज सुग्रीव से मित्रता करके तुम्हारे उद्धार के लिये यत्न कर रहे हैं। हे भीरु! सब लोग उसकी निन्दा करते है, उस पापी रावण से तुम्हें *तनिक भी डर नहीं है।* ...के शाप के कारण वह तुम पर अत्याचार नहीं कर सकता। तुम्हारे स्वामी लक्ष्मण और सुग्रीव-सहित शीघ्र आयेंगे और एक विशाल सेना भी लायेंगे, तब वे ... उद्धार करके ले जायेंगे।

उपर्युक्त स्वप्नों के वर्णन से ऐसा लगता है जैसे मानो प्रत्येक कथाकार ने

कथा की आगे होने वाली घटनाओं को न्यूनाधिक रूप में इन स्वप्नों के वर्णन में समाविष्ट कर दिया हो। 'वाल्मीकीय रामायण' में स्वप्न का जैसा वीभत्स चित्रण यहाँ हुआ है वैसा ही प्रायः भरत के साथ हुआ है, जब उस स्वप्न को देखकर भरत का हृदय अपने परिजनों अथवा अयोध्या के विनाश की कल्पना कर काँप उठा था। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी अवश्यम्भावी विनाशकारी घटना की पृष्ठभूमि के रूप में ही पूर्व-मध्यकालीन एवम् मध्यकालीन कथाकारों ने स्वप्न एवम् अपशकुनों की कल्पना अपनी कथा में की। यह कल्पना पूरी तरह स्वतन्त्र न थी बल्कि समाज-सापेक्ष थी क्योंकि स्वप्न एवम् अपशकुनों का विश्वास समाज में प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। 'वाल्मीकीय रामायण' में यह स्वप्न का प्रसंग सम्भव है मूल रामकथा की एक कड़ी बन कर ही आया हो, लेकिन उसके वर्तमान स्वरूप में कवि की कल्पना अधिक है, जिसने परम्परा के रूप में चली आई घटना को भावमयी शैली में चित्रित किया है।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में त्रिजटा सीता से अविन्ध्य नामक राक्षस का समाचार कहती है। ऐतिहासिक दृष्टि से कथा के इन विविध प्रसंगों को मिला कर हम यही सोच सकते हैं कि रावण की निरंकुशता के विरुद्ध जो क्षोभ राक्षसों में पैदा हो गया था और निरन्तर बढ़ता जा रहा था उसी को विभीषण, त्रिजटा, अविन्ध्य राक्षसों के हृदय में हम पाते हैं। दबे-दबे यह आग सुलग रही थी और अन्याय के विरुद्ध अपने पक्ष को सबल कर रही थी। हो सकता है खुले रूप में अपने विचार को राक्षसियों के सामने रखना सम्भव न जानकर त्रिजटा ने स्वप्न का आश्रय लिया हो, या यह भी हो सकता है कि राक्षसों में उठी यह विद्रोही भावना कालान्तर में अपने मूल ऐतिहासिक स्वरूप को खोकर रामकथाओं में एक काव्यमयी रूपक के रूप में ही अपने यथार्थ की झाँकी दे पाई हो।

त्रिजटा द्वारा कहे हुए भयानक स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर सीता फिर विलाप करने लगी। वह अनेक प्रकार से राम, लक्ष्मण, सुमित्रा, कौशल्या आदि को याद करके अपनी मृत्यु की अभिलाषा करने लगी। वह डरने लगी क्योंकि दो महीने की अवधि समाप्त होने के बाद वह राक्षसराज उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगा। वह अपने जीवन को धिक्कारती हुई कहने लगी—मैं इसे त्याग दूँगी। मैं विष खाकर अथवा पैने शस्त्र द्वारा शीघ्र ही अपने प्राण त्याग दूँगी, पर न तो कोई मुझे विष देने वाला है और न इस राक्षस के घर में शस्त्र ही मिल सकता है।

सीता इस प्रकार विलाप करती हुई राम का स्मरण कर एक वृक्ष के पास चली गई और बहुत-कुछ सोच-विचार करती हुई अपनी वेणी का बन्धन पकड़ कर कहने लगी कि इसी बन्धन से गले में फाँसी लगाकर मैं यमलोक को चली जाऊँगी। इतने में ही श्रेष्ठ शकुन हुए। उन्होंने सीता के शोक को हर लिया।

'अध्यात्म रामायण' में सीता के विलाप करने के बारे में तो लिखा है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' की तरह सीता की दारुण भावनाओं का चित्रण विलाप के अन्तर्गत नहीं किया गया है। 'मानस' में सीता विलाप करती है। वह त्रिजटा से कहती है :

तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥

इस पर त्रिजटा उत्तर देती है :

निसि न अनल मिलि सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

सीता सोचती है कि अगर आग न मिलेगी तो मेरी पीड़ा कैसे मिटेगी। देखो, आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं लेकिन पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता है। चन्द्रमा अग्निमय है किन्तु वह भी मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। वह अशोक वृक्ष से प्रार्थना करती है :

सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥

'मानस' में सीता अपनी वेणी से गला बाँधकर आत्महत्या करने का प्रयत्न नहीं करती दिखाई देती। वह आत्महत्या की कामना तो करती है, तभी त्रिजटा से अग्नि लाने के लिये कहती है। अशोक वृक्ष से सीता कवि की सुन्दर अभिव्यंजनात्मक शैली के माध्यम से कुछ विरह-वेदना-युक्त वचन कहती है।

शुभसूचक शकुनों का वर्णन भी 'अध्यात्म रामायण', 'मानस' तथा अन्य राम-कथाओं में नहीं मिलता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में सुन्दरकाण्ड के २४ वें सर्ग में अनेक शुभ शकुनों की कल्पना की गई है।

इसके पश्चात् वृक्ष पर चढ़ हनुमान अपने हृदय में अनेक तर्क-वितर्क करने लगे। वे सोचने लगे—पूर्णचन्द्रवदनी सीता ने दुःखों को नहीं देखा है पर इस समय यह दुःख समुद्र में डूबी हुई पार नहीं पा रही है। ऐसे शोक से व्याकुल सीता को यदि मैं समझाये बिना ही चला जाऊँ तो मेरा जाना दोषयुक्त होगा क्योंकि मेरे चले जाने पर राजपुत्री जानकी किसी प्रकार अपनी रक्षा न देख कदाचित् प्राण छोड़ दे। परन्तु इन राक्षसियों के सामने सीता से बातचीत करना भी ठीक नहीं है। अब क्या करूँ, थोड़ी-सी रात्रि रह गई, मैं इतने में यदि समाश्वासन न करूँ तो ये अपने प्राण को छोड़ देंगी फिर श्री राघव सीता का सन्देश न पाकर क्रोधपूर्ण दृष्टि से मुझे भस्म कर देंगे। सीता से सम्भाषण किये बिना यदि मैं राम के लिये वानरराज से उद्योग भी करवाऊँ और इधर सीता प्राण त्याग दें तो सेना-सहित उनका यहाँ आना व्यर्थ हो जायगा। इसलिये मैं अंग बचाकर सन्ताप-पीड़ित श्री जानकी को धीरे से समझाये देता हूँ।

परन्तु मुझे एक आशंका है कि यदि मैं संस्कृत वाणि बोलूँ तो शायद सीता मुझे रावण जानकर डर जाय इसलिये मनुष्य की साधारण बोली में ही इनको समझाना ठीक होगा।

परन्तु इसमें भी एक अड़चन है। यदि जानकी मेरा यह रूप देखेगी और मेरी बोली सुनेंगी तो और भी डर जायेंगी। अगर डर से मुझे कामरूपी रावण जानकर वे चिल्ला उठी तो राक्षसियों का झुण्ड नाना शस्त्र धारण किये उपस्थित हो जायगा और मुझे घेर कर मारने अथवा पकड़ने का उपाय किया जायगा। तब मैं इस शाखा से उस शाखा पर,दौड़ता फिरूँगा तब तो सीता को और भी शंका होगी। मेरे विशाल रूप को देखकर राक्षसियाँ भय के मारे विकराल शब्द करेंगी। राक्षस शूल, बाण, तलवार, इत्यादि नाना शस्त्र लेकर बड़े वेग से अवश्य ही आवेंगे और मुझे चारों ओर से घेर लेंगे। मैं उस समय राक्षसी सेना को मारूँगा तो सही, पर थक जाऊँगा। फिर समुद्र के पार न जा सकूँगा; अथवा वे सब आकर मुझे शीघ्रतापूर्वक पकड़ लें तो सीता को इधर रामचन्द्र का सन्देश भी न मिले और मैं पकड़ा जाऊँ। फिर महादुष्ट हिंसाप्रिय राक्षस कदाचित् सीता को ही मार डाले तो रामचन्द्र और सुग्रीव का सब कार्य ही चौपट हो जायगा। यदि मैं मारा गया या बाँधा गया तो ऐसा कोई नहीं दीख पड़ता जो राम के कार्य को कर दे। अगर मार्गरहित समुद्र से वेष्ठित गुप्त स्थान में रहती जानकी का पता लग भी गया तो ऐसा कोई वानर नहीं है जो मेरे मारे जाने पर सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ कर इस स्थान पर पहुँच सके।

इन हजारों राक्षसों के मारने के लिये मैं समर्थ हूँ परन्तु फिर मैं समुद्र के पार न जा सकूँगा। इसके सिवा संग्राम में जय और पराजय के विषय में सर्वदा सन्देह ही रहता है। इसलिये ऐसा कौन पुरुष होगा जो पण्डित होकर सन्देहयुक्त कार्य को निःसंदेह होकर करेगा। सीता से बोलने में इन पूर्वोक्त महा दोषों की सम्भावना है और जो न बोलूँ तो सीता का प्राण-त्याग होगा।

कायर दूत सिद्ध-कार्य को भी देशकाल का विचार न करके बिगाड़ते हैं। अर्थ और अनर्थ के मध्य में बुद्धि का निश्चय करना भी काम नहीं देता, क्योंकि अपने को पण्डित मानने वाले दूत अवश्य कार्य का नाश करते हैं। अब क्या करूँ, जिससे कार्य का नाश न हो और मैं कायर भी न ठहरूँ, तथा मेरा समुद्र लाँघना भी वृथा न हो।

इस प्रकार सोच-विचार कर हनुमान ने निश्चय किया कि अब मैं श्री रामचन्द्र की कथा कहना आरम्भ करता हूँ जिससे सीता को विश्वास प्राप्त हो। अब हनुमान उसी शाखा में छिपे-छिपे मधुर वचन बोलने लगे। उन्होंने राम-जन्म से लेकर अपने लंका आने तक की सारी कथा कह सुनाई।

'अध्यात्म रामायण' में या 'मानस' में तथा अन्य रामकथाओं में कहीं पर हनुमान के हृदय में उठे इन तर्क-वितर्कों का वर्णन नहीं है। 'वाल्मीकीय रामायण' में इसका

वर्णन कथा की स्वाभाविकता को अधिक निभा सका है जो अन्य रामकथाओं में अलौकिक के प्रभाव से कहीं भंग होती दीख पड़ती है।

'रामचरित मानस' में इसके साथ हनुमान के मुद्रिका डालने का वर्णन और आता है :

कपि कर हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अङ्गार दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ ॥

जब सीता ने राम-नाम से अंकित वह मुद्रिका देखी तो वह आश्चर्यचकित हो उठी और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठी। वह सोचने लगी :

जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तें असि रचि नहिं जाई ॥

सीता इस प्रकार विचार कर रही थी कि उसी समय हनुमान ने मधुर वाणी में श्रीराम की कथा सुनाना प्रारम्भ कर दिया।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में कथा की तरतीब दूसरे प्रकार से है। उसमें न तो हनुमान के सामने रावण सीता के पास आता है और न विभिन्न आकार वाली राक्षसियाँ उसके सामने सीता को डराती हैं। रावण के सीता के प्रति कहे गये कामोन्मत्त वचनों का उल्लेख तो इस कथा में उसी समय आता है जब रावण ने लाकर सीता को पहले-पहल अशोक वाटिका में बिठाया था। उसी समय वे विकटरूप वाली राक्षसियाँ अनेक प्रकार से सीता को त्रस्त करती हैं। उसी समय त्रिजटा अपने स्वप्न का वृत्तान्त सब राक्षसियों को सुनाकर उनको सावधान करती है। उस समय अशोक-वाटिका में हनुमान नहीं थे। उन्होंने तो सीता को अत्यंत दीन अवस्था में रावण के निवास-स्थल में देखा था और जब उन्हें यह निश्चय हो गया था कि यही सीता है तो उन्होंने सीता से कहा था—आर्ये वैदेहि ! मैं श्रीराम का दूत पवनपुत्र हनुमान हूं। मैं आपको देखने आकाश-मार्ग से यहाँ आया हूं। राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मण सकुशल हैं। सब वानरों के राजा सुग्रीव उनके सहायक, रक्षक और मित्र हैं। राम-लक्ष्मण ने आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। महाराज सुग्रीव ने भी राम के मित्र के नाते, आपके कुशल-समाचार जानने की इच्छा की है। आपके स्वामी रामचन्द्र सब वानरों के साथ यहाँ आवेंगे। देवी, आप मेरी बात पर विश्वास करें। मैं राक्षस नहीं हूँ—वानर हूँ।

सीता ने दम-भर सोचकर कहा—हे महाबाहो ! धर्मात्मा राक्षस अविन्ध्य के कथनानुसार मैं जानती हूँ कि तुम वानर हनुमान ही हो। उस श्रेष्ठ राक्षस से मुझे यह खबर मिल चुकी है कि हनुमान आदि वानर सुग्रीव के सचिव और साथी हैं।

इसके पश्चात् हनुमान ने श्रीराम की दी हुई मुद्रिका सीता को दी और अपनी पहचान के लिये चित्रकूट में कौए का रूप बनाये जयन्त की सारी कथा कही।

'अध्यात्म रामायण' तथा 'वाल्मीकीय रामायण' में जब सीता के हृदय से यह

शंका किसी तरह नहीं हटती है कि हनुमान रावण का ही कोई मायावी वानर-रूप है तब हनुमान सीता को पहचान के लिये राम-नाम से अङ्कित वह मुद्रिका देते हैं।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि जब कपि ने वृक्ष में छिपे हुए मधुर वाणी से राम की कथा सीता को सुनाई तो सीता ने दिशा-विदिशाओं में चारों ओर देखा पर कोई नहीं दीख पड़ा। तब वे मन से राम का ध्यान करती हुई अपने-आप अत्यंत हर्षित हुईं, फिर अगल-बगल और ऊपर-नीचे देखने लगीं, तब बुद्धिमान वायुपुत्र उदयाचल पर उगे सूर्य के तुल्य उन्हें दीख पड़े। हनुमान पीला कपड़ा पहने, सुवर्ण के सदृश नेत्रों से शोभित और नम्रता धारण किये बैठे थे। वे अशोक पुष्पों के गुच्छों के तुल्य कान्तिमान लग रहे थे।

सीता उन्हें देखकर घबरा उठी और भयभीत स्वर में कहने लगी! इस वानर का रूप बड़ा भयंकर है और देखा नहीं जा सकता।

वह डर के मारे करुणा-भरे स्वर में 'हा राम, हा लक्ष्मण' कहकर विलाप करने लगी। उसने सोचा कि क्या यह कोई स्वप्न है? फिर सीता ने हनुमान की ओर देखा तो उनका टेढ़ा और विशाल मुख देखकर वह फिर डर कर मूर्च्छित हो गई। बहुत देर में सचेत होकर वह इसे कोई विकराल और अशुभ स्वप्न समझकर अपने पिता जनक तथा राम, लक्ष्मण की मंगलकामना करने लगी। फिर वह सोच में पड़ गई। इसी बीच में हनुमान वृक्ष से उतरे और दीनतापूर्वक मधुर वाणी में बोले—हे कमल नयनि! तुम कौन हो, जो इस प्रकार के मैले कपड़े पहने वृक्ष की शाखा थामे खड़ी हो? तुम्हारे नेत्रों से जल किस कारण बह रहा है और शोक से इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो? सुर, असुर, नाग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरों में से तुम कौन हो? तुम रुद्रों में से कोई हो अथवा वायु या वसुओं में से कोई हो? क्योंकि मुझे तुम देवता-सी जान पड़ती हो अथवा चन्द्रमा से हीन स्वर्ग से गिरी रोहिणी तो तुम नहीं हो? क्योंकि तुम सब गुणों में अधिक हो जान पड़ती हो।

हे कल्याणी! हे सुन्दर लोचने! तुम कौन हो? तुम अरुन्धती तो नहीं हो जो कोप से या मोह से अपने पति वशिष्ठ को कुपित करके यहाँ चली आई हो?

हे सुमध्यमे! इस लोक से तुम्हारा कोई परलोक को तो नहीं चला गया है जिसके लिए तुम शोक कर रही हो? मुझे बतला दो कि वह तुम्हारा कौन था—पुत्र, पिता, भ्राता या पति? एक बात का तो मुझे [illegible] कि तुम देवी नहीं हो, क्योंकि एक तो तुम रो रही हो, दूसरे [illegible] को छू रही हो। देवताओं में इनमें से [illegible] का नाम लेती हो। तुम्हारे [illegible] तुम किसी राजा की पटरानी [illegible]

हे वैदेहि ! अब तो रामचन्द्र ने मांस और मधु का खाना-पीना छोड़ दिया है
वे अरण्य के उपयुक्त आहार संध्या को करते हैं ।

हे देवि ! वे सदा काम के वश में होकर तुम्हारा ध्यान किया करते हैं । शो
ग्रस्त बने रहते हैं । एक तो उनको नींद ही नहीं आती और यदि सोते भी हैं तो म
वाणी से 'हे सीते' कहकर जाग उठते हैं ।

हे वैदेहि ! बहुत क्या कहूँ, वे नित्य ही सीता-सीता कहा करते हैं । वे व्रत
धारण किये तुमको प्राप्त करने के उद्योग में तत्पर रहते हैं ।

हनुमान के राम के प्रति ये वचन सुनकर सीता का हृदय प्रेम से गद्गद ह
उठा । उसने अपनी विपत्ति को अब दैवाधीन समझ कर सन्तोष कर लिया । व
कहने लगी—हे वानरश्रेष्ठ ! दैव रोका नहीं जा सकता । हे कपे ! तुम रामचन्द्र
कहना कि वर्ष पूरा होने तक ही मेरा जीवन शेष है । यह दसवाँ महीना है, शेष द
ही रह गये हैं, शीघ्रता करें ।

विभीषण, अविन्ध्य आदि राक्षसों ने अनेक प्रकार से रावण को समझाया थ
कि वह मुझे राम को वापस लौटा दे, लेकिन वह दुष्ट राक्षसाधिप उनके शब्दों पर
कान नहीं देता ।

फिर राम के पराक्रम का स्मरण करके सीता रोने लगी ।

हनुमान ने कहा—हे देवि ! तुम्हारा सन्देश मिलते ही राम वानरों की सेना
लेकर यहाँ आ जायेंगे अथवा तुम कहो तो मैं अपनी पीठ पर बिठा कर तुम्हें अभी
राम के पास पहुँचा देता हूँ । हे मैथिलि ! जैसे अग्नि हवन किया हुआ पदार्थ इन्द्र को
पहुँचाता है इसी तरह मैं आज तुमको श्री रामचन्द्र के पास प्रस्रवण गिरि पर पहुँचा
दूँगा ।

हे जानकी ! अब तुम देर न करो और मेरी पीठ पर सवार हो जाओ । मैं
तुम्हें बात-की-बात में राम के पास पहुँचाता हूँ । लंका वालों में इतनी सामर्थ्य नहीं
कि मेरे पीछे पहुँच कर वे मुझे पकड़ लें ।

कपि का यह अद्भुत वचन सुनकर सीता को हर्ष और विस्मय हुआ । उन्होंने
कहा—हे हनुमान ! इतनी दूर तुम मुझे किस प्रकार ले जा सकते हो ? बस, यहीं
तो तुमने अपना वानर का धर्म मुझे दिखलाया है । फिर तुम्हारा तो यह छोटा-
सा शरीर है ।

हनुमान ने सीता को अपना पौरुष दिखाने के लिये अपने शरीर को मेरु,
मन्दराचल के तुल्य विशाल और प्रज्वलित अग्नि के तुल्य कान्तिमान कर लिया ।

अब श्री कपि श्रेष्ठ पर्वताकार, ताम्रमुख और महाबली हो गये। उनके नख और दाँत वज्र के तुल्य थे। उन्होंने सीता से कहा—हे देवि ! मुझमें इतनी शक्ति है कि पर्वत, वन, गृह प्राकार और तोरण-सहित इस लंका को उठाकर ले चलूँ। इसलिये अब तुम चलने का निश्चय करो। व्यर्थ सन्देह मत करो, आओ, मेरी पीठ पर सवार हो जाओ और चलकर दोनों भाइयों के शोक को दूर करो।

हनुमान का यह पर्वताकार रूप देखकर कमलनयनी सीता बोली—हे महाकपे ! तुम्हारे वीर्य और बल को मैंने देख लिया लेकिन मुझे भी तो अपनी कार्य-सिद्धि का विचार कर लेना चाहिये। सुनो, तुम्हारे साथ मेरा चलना ठीक नहीं है; क्योंकि तुम्हारा वायु के तुल्य वेग मुझे अवश्य मूर्छित कर देगा। तुम समुद्र के ऊपर-ऊपर चलोगे। तुम्हारे वेग से चलते समय यदि मैं गिर पड़ी और समुद्र के मगरमच्छ मुझे पकड़ कर ला गये तो तुम क्या करोगे ? तुमको मुझे लेकर भागते देख रावण के भेजे हुए बड़े-बड़े राक्षस अवश्य पीछा करेंगे। शूल, मुग्दर लिये हुए वे तुम्हें मार्ग में घेर लेंगे। तब तो तुम मुझे ले जाकर संकट में पड़ जाओगे। तब तुम कैसे लड़ सकोगे और कैसे मुझे बचा सकोगे ? उन क्रूरकर्माओं से कदाचित् तुम युद्ध भी करने लगे और मारे डर के मैं तुम्हारी पीठ पर से गिर पड़ी तब क्या होगा ? अथवा तुम्हारे ही हाथों से छीन कर वे मुझे मार डालें। युद्ध में जय और पराजय दोनों होती हैं। अथवा राक्षसों की डपट से ही मैं मर गई तो हे हरिश्रेष्ठ, तुम्हारा इतना भारी प्रयत्न और परिश्रम वृथा हो जायगा। मैंने मान लिया कि तुम राक्षसों को मारने में समर्थ हो परन्तु यदि तुम्हीं राक्षसों को मार डालोगे तो रामचन्द्र का यश नष्ट हो जायगा अथवा राक्षस लोग मुझे ऐसे गुप्त स्थान में रख दें जहाँ का पता न वानरों को लगे और न रामचन्द्र को, तब तो मेरे लिये तुम्हारा इतना भारी समारम्भ व्यर्थ हो जायगा।

हे वानर ! यह भी एक कारण है कि मेरा पतिव्रत बड़ा कठिन है। मैं पति में ऐसी भक्ति रखती हूँ कि इच्छापूर्वक दूसरे के शरीर को छूना भी नहीं चाहती और जो मुझे रावण के अंग का स्पर्श हुआ वह तो बलात्कार से हुआ। अब जिस घड़ी राक्षसों-सहित रावण को मारकर रामचन्द्र यहाँ से मुझे ले चलें तो उनके योग्य है। इस-लिए हे कपि श्रेष्ठ ! लक्ष्मण और सुग्रीव सहित मेरे प्यारे रामचन्द्र को तुम यहाँ बुला लाओ और मुझ शोकपीड़ित को आनन्द दो।

यह सुनकर हनुमान सीता के पतिव्रत धर्म की सराहना करने लगा। उन्होंने सीता से श्री राम को दिखाने को कोई निशानी माँगी। सीता ने रोते हुए इन्द्र के पुत्र जयन्त की कथा सुनाई। अन्त में वह करुण करुण-स्वर से कहने लगी— वे दोनों पुरुष-व्याघ्र वायु और इन्द्र के तुल्य तेजस्वी और देवताओं के लिए भी दुर्जय हैं। वे क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। हे वानर सुवर, मेरे नाथ रामचन्द्र से

मानस में हनुमान कहते हैं :

अबहि मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥

'अद्भुत रामायण' में हनुमान का समुद्र लाँघना तथा लंका में सीता से मिलना वर्णित नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि जब हनुमान सीता से विदा लेकर चले तो वे सोचने लगे कि अब एक काम तो हो गया, लेकिन रावण के बल का पता लगाना भी आवश्यक है। उन्होंने राजनीति पर विचार किया, तो इसी निष्कर्ष पर आये कि यहाँ केवल दण्ड से काम लेना चाहिये क्योंकि ये राक्षस शूरवीर हैं। साम से यहाँ काम नहीं होगा। फिर दान भी ठीक नहीं है क्योंकि ये सब बड़े सम्पत्तिवान हैं, और भेद भी यहाँ काम नहीं देगा क्योंकि इन्हें अपने बल का बड़ा गर्व है। अतः पराक्रम के बिना यहाँ किसी और निश्चय से काम सिद्ध न होगा। जब यहाँ राक्षसों के बड़े-बड़े प्रधान मारे जायेंगे तब ये किसी प्रकार से ढीले पड़ेंगे। मुख्य कार्य करने के अनन्तर जो और भी ऐसे बहुत से कार्य करता है जिनका कृत कार्य के साथ विरोध नहीं होता वही व्यक्ति कार्य करने में कुशल है। देखो, जो कोई जन अल्प कार्यों का साधन बहुत बड़े यत्न से करता है तो वह कार्य-साधन नहीं कहा जा सकता; कार्यसाधक व्यक्ति तो वह है जो साधारण उपाय से अपने कार्य को अनेक प्रकार से करे। यहाँ का कार्य हो गया, इसलिए मैंने तो अब सुग्रीव के पास जाने का निश्चय कर रखा है परन्तु अपने और शत्रु के बलाबल का ठीक भेद लेकर मैं यहाँ से चलूँ तो स्वामी का कार्य सम्पन्न माना जाय।

इस घड़ी राक्षसों के साथ मेरा युद्ध अनायास किस प्रकार हो जिसमें कि रावण अपनी सेना वालों का और मेरा पराक्रम जान ले। इसके अनन्तर मन्त्री, सेना और सुहृदगणों के साथ रावण संग्राम में मिल जाय तो मैं सुख से उसके हृदयस्थित विचार को और उसके बल को जान लूँ, और फिर यहाँ से जाऊँ। इस विषय में मुझे अब यही उपाय सूझता है कि इस दुष्ट के वन को ध्वंस कर डालूँ। यह वन नन्दन वन के तुल्य है। इसके ध्वस्त होने पर रावण क्रोध करेगा ही, तब वह घोड़े, रथ और हाथियों सहित अपनी सेना ले आवेगा। बड़े-बड़े राक्षस त्रिशूल, लोहमुग्दर और पटा इत्यादि शस्त्र ले-लेकर उपस्थित होंगे। तब बड़ा भारी युद्ध होगा। मैं उन महा पराक्रमियों का सामना करूँगा।

यह विचार कर वायुपुत्र हनुमान क्रोध से बड़े वेगपूर्वक, वायु के सदृश वृक्षों को उखाड़ने लगे।

उपर्युक्त प्रसंग में कथाकार का जो दृष्टिकोण हनुमान के प्रति तथा उनसे सम्बन्धित घटना के प्रति रहा है उससे बिलकुल पृथक् दृष्टिकोण तुलसीदास जी का

'मानस' में रहा है। तुलसीदास जी के महाकाव्य में हनुमान के इस प्रकार के कूटनीतिक दृष्टिकोण का संकेत-मात्र भी नहीं है जैसा 'वाल्मीकीय रामायण' में है बल्कि 'मानस' में तो हनुमान को अपने सहज वानर-स्वभाव के अनुसार कार्य करता हुआ चित्रित किया गया है। जब वे सीता से विदा लेकर चले तो बार-बार माता के चरणों में सिर नवाकर बोले :

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥

इस पर सीता माता कहने लगीं :

सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥

यह सुनकर हनुमान बोले :

तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

इसके पश्चात् :

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकीं जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥

'अध्यात्म रामायण' में भी यही वर्णन है कि हनुमान ने अपनी भूख मिटाने के लिये ही अशोक-वन को उजाड़ा। एकाध श्लोक में हनुमान के कूटनीतिक दृष्टिकोण का संकेत अवश्य मिलता है लेकिन वह इस प्रसंग में अपना गौण स्थान रखता है।

'वाल्मीकीय रामायण' तथा परवर्ती रामायणों में इस भेद का मूल कारण यही है कि 'वाल्मीकीय रामायण' ने हनुमान को सुग्रीव का एक वेदज्ञ तथा नीतिज्ञ मन्त्री माना है। यद्यपि पौराणिक चमत्कारों में कथा के सहज सत्य को झुठाकर परवर्ती सम्पादकों ने हनुमान को इस कथा में एक बन्दर ही माना है लेकिन उसके चरित्र पर इस चमत्कारमयी कल्पना का प्रभाव अपने न्यूनतम अंश में पड़ पाया है, वह अन्त तक मनुष्य की तरह सोचता है, उसी तरह कार्य करता है लेकिन परवर्ती रामकथाओं में हनुमान के बारे में यह कल्पित चमत्कार अपने पूरे विश्वास के साथ उतर आया है। इसका प्रभाव कथा में चित्रित उसके चरित्र पर पड़ना आवश्यक था, वह पड़ा भी है।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' के अनुसार हनुमान जान-बूझकर राक्षसों के हाथों में जा फँसे थे।

अन्य रामकथाओं में इस पक्ष पर विशेष कुछ नहीं मिलता। 'सूरसागर' की रामकथा में भी 'मानस' की तरह ही प्रसंग का चित्रण है।

शत्रु के बल का पता लगाने के लिये हनुमान अशोक वाटिका को उजाड़ने लगे। वृक्षों के टूट जाने, जलाशयों के फूट जाने, पर्वतों के अग्रभागों के चूर्ण हो जाने और जलाशयों के नाना पक्षियों के तितर-बितर होकर चिल्लाने से तथा नये कोमल पत्तों के छितर-बितर हो जाने से वह वन ऐसा हो गया जैसे दावाग्नि लगने से जंगल वीरान हो जाता

है। चारों तरफ़ कोलाहल सुनकर वे विकटरूप राक्षसियाँ जो सो रही थीं, एक साथ जाग पड़ी और सीता से पूछने लगीं—हे सीता! यह किसका और कौन है? यहाँ कहाँ से और किसलिए आया है? इसने तुमसे किस प्रकार बातचीत की है? हे विशाल नयने! हम को सब हाल बता दो। डरो मत! इसने तुम्हारे साथ क्या बातचीत की है?

सीता ने उत्तर दिया—कामरूपी राक्षसों के जानने की मुझे क्या गति है। तुम्हीं जान सकती हो कि यह कौन है और क्या करेगा; क्योंकि, साँप के पैरों को साँप ही जानता है। मैं भी बहुत डर गई हूँ। मैं नहीं जानती कि यह कौन है। अटकल से मुझे यह जान पड़ता है कि यह कोई कामरूपी राक्षस है।

यह सुनकर राक्षसियाँ वहाँ से भागकर रावण के पास गईं और उन्होंने सारा हाल रावण को सुना दिया। रावण यह समाचार सुनकर चिताग्नि की तरह प्रज्ज्वलित हो क्रोध से नेत्रों को घुमाने लगा। उसने कपि को दण्ड देने के लिए अपने तुल्य योद्धा ८०,००० राक्षसों को भेजा। हनुमान वाटिका के तोरण पर बैठे थे। वहाँ आकर वे राक्षस विचित्र गदाओं, सुवर्णपट्टभूषित परिघों और चमकीले बाणों से कपि को मारने लगे। उनमें से बहुत से मुग्दर, पट्ट, प्रास और तोमर शस्त्र लेकर हनुमान को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए। यह देखकर हनुमान ने अपनी पूँछ को फटकारकर बड़ा घोर नाद किया और अपने शरीर को बढ़ाकर पर्वताकार कर लिया। उन्होंने तोरण के पास से एक बड़ा भारी परिघ उठा लिया और उससे राक्षसों को मारने लगे। उनमें से अधिकतर राक्षस तो मर गये और बचे-खुचे अपनी जान बचाकर भाग गये।

इसके पश्चात् प्रहस्त का पुत्र जाम्बुमाली लड़ने आया। हनुमान ने उसे मूसल से मार गिराया। इसी तरह वृक्ष, शिलाओं तथा मूसल आदि अस्त्रों से हनुमान ने सात मन्त्रि-पुत्रों को, रावण की सेना के पाँच मुख्य नायकों को तथा रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मार गिराया। इसके पश्चात् इन्द्रजीत मेघनाद ब्रह्मास्त्र में बाँधकर हनुमान को रावण के पास ले गया।

'वाल्मीकीय रामायण' के उपर्युक्त वर्णन में चमत्कार अधिक है। हनुमान का ८०,००० शूरवीर राक्षसों का पराजित करना, तथा उनमें से अधिकतर राक्षसों को जान से मार देना चमत्कारमयी कल्पना है, जो राम के सेवक हनुमान के अजेय पराक्रम को व्यक्त करने के लिए ही की गई है। इसी प्रकार युद्ध के वर्णन में भी कवि ने काफ़ी बढ़ा-चढ़ा कर हनुमान के पराक्रम की कल्पना की है। पूरे वर्णन को पढ़कर ऐसा लगता है मानो राम के सेवक हनुमान अपने अन्दर कोई दैवी शक्ति रखते थे जिसके कारण राक्षसों के कितने भी भीषण बाणों के होते हुए भी वे पृथ्वी पर नहीं गिरते थे। राक्षसों के तो विभिन्न प्रकार के भीषण अस्त्र तथा शस्त्र भी उनके शरीर पर असर नहीं करते थे और उनकी वृक्षों की शाखायें, शिलायें राक्षसों के बड़े सुभट वीरों को भी धराशायी

कर देती थी। इस वर्णन में चाहे प्रत्यक्ष में न हो परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से राम को एक अलौकिक शक्ति स्वीकार किया गया है, तभी तो उनका दूत इतना दुर्जेय था। राम की इस अलौकिकता को अप्रत्यक्ष रूप से कथा मे स्थापित करने के लिए ही परवर्ती कथाकार ने वाल्मीकि की मूल रामकथा में इतने अधिक चमत्कारमयी क्षेपक जोड़ दिए।

'वाल्मीकीय रामायण' के सम्पादन-काल मे कुछ पहले ही राम का अलौकिक स्वरूप समाज में मान्य हुआ था और वह भी कोई वृहत्‌रूप मे नहीं, इसलिये इसका प्रभाव 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा पर कहीं प्रत्यक्ष रूप से पड़ा है तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से, और इस गड़बड़ी के कारण कथा मे राम के मानवीय स्वरूप तथा अलौकिक स्वरूप का अन्तर्विरोध पर्याप्त मात्रा मे रह गया है लेकिन परवर्ती रामकथाओं में आदि से अन्त तक राम के अलौकिक रूप की व्याख्या में ही कथा का सृजन हुआ है।

'रामचरित मानस' में हनुमान द्वारा राक्षसों के मारे जाने का वर्णन इस प्रकार है:

कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल भूरि॥

भगवान् राम के सेवक हनुमान के अतुलनीय बल का वर्णन तुलसीदास जी ने काफी बढ़ा-चढ़ा कर किया है, वे राक्षसों को इस तरह मसल रहे थे जैसे कोई पराक्रमी योद्धा मिट्टी के खिलौनों को मसल कर चूर्ण कर दे। इसी प्रकार 'अध्यात्म रामायण', 'सूरसागर' तथा अन्य रामकथाओं मे हनुमान के पौरुष का वर्णन है।

हम यह मानते हैं कि सुग्रीव के नीतिकुशल मन्त्री हनुमान परम योद्धा थे लेकिन उनका इतना बढ़ा-चढ़ा हुआ वर्णन तर्कसंगत नही है। मध्यकालीन साहित्य में कवि ने इस प्रकार की चमत्कारमयी कल्पना की, और समाज मे वह पूरी तरह मान्य हो गई इसके दो कारण हैं—नवचेतना काल अर्थात् वैज्ञानिक तर्क के युग से पहले का समाज विभिन्न धार्मिक विश्वास तथा साम्प्रदायिक मत-मतान्तर की प्रधानता रखने वाला समाज था जिसमें अलौकिक के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास अधिक था। तर्क न्यूनतम मात्रा में था और उसकी भी परिधि अलौकिक मान्यताओं की वृहत परिधि के अन्दर सीमित थी। इसलिये जहाँ किसी महाकाव्य तथा अन्य किसी कथा में कोई ऐतिहासिक पात्र भगवान् अर्थात् उपास्य देव के रूप मे कथाकार के सामने खड़ा होता था तो उसका चित्रण उसे सर्वशक्तिमान्, सर्वव्याप्त, सर्वसमर्थ, ब्रह्म मानकर ही किया जाता था, उसमे किसी प्रकार की भी चमत्कारमयी कल्पना अत्युक्ति तथा तर्क के विरुद्ध मानी ही नही जा सकती थी क्योंकि एक तो भगवान् के बारे में मनुष्य के लिए तर्क देना कहाँ तक संगत था और फिर उसकी छोटी-सी जड़ बुद्धि भगवान् के स्वरूप को तर्क से कैसे

समझ सकती थी, यही कारण था कि इस तरह की चमत्कारमयी कल्पनायें समाज में निर्बाध गति से मान्य रहीं और आज भी हिन्दू समाज की अधिकतर जनता में मान्य हैं। भारत की अधिकांश ग्रामीण जनता आज भी तुलसीदास जी की चमत्कारों से भरी रामकथा को सुनने में आनन्द लेती है। मैथिलीशरण का 'साकेत' उनके हृदय पर असर नहीं जमा सका है।

इसके अलावा सीता के पूछे जाने पर भी हनुमान का पता न देना, यह बात केवल 'वाल्मीकीय रामायण' और सांकेतिक रूप से 'अध्यात्म रामायण' में मिलती है। 'मानस' में सीता के सम्बन्ध में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' में उल्लेख है कि मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र में कपि को बाँध लिया। हनुमान ने सोचा यह अस्त्र ब्रह्मा के मन्त्रों से अभिमन्त्रित है, इसलिए पितामह के अस्त्र-बन्ध का मुझे अनुसरण करना चाहिए। वे इस अस्त्र में बँधे रहे। राक्षस हनुमान को अनेक गालियाँ देने लगे। उन राक्षसों ने उन्हें चेष्टारहित देखकर सन के रस्सों और वृक्ष की छाल से कसकर बाँध लिया लेकिन उससे ब्रह्मास्त्र का प्रभाव समाप्त हो गया। मेघनाद सोचने लगे अब क्या करूँ, इस ब्रह्मास्त्र का प्रभाव तो इन राक्षसों ने नष्ट कर दिया, दूसरा अस्त्र-बन्धन हो नहीं सकता। अब फिर विपत्ति में हम पड़ गये। अस्त्र के छूटने पर भी हनुमान सचेत नहीं हो रहे थे। अब वे राक्षस अपनी कठोर मुष्टिकाओं से हनुमान को मारते-पीटते रावण के पास खींच ले चले।

'रामचरित मानस' के अनुसार मेघनाद ने हनुमान को नागपाश में बाँधा था :

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ॥

तुलसीदास जी ने इस उद्देश्य से कि कहीं इससे रामभक्त हनुमान की मान्यता समाज में न घट जाय, साथ ही उनके पराक्रम का वर्णन करते हुए उनके बंधन में पड़ जाने का कारण बताया है।

शिवजी भवानी से उसी शंका को समाधान करते हुए कहते हैं :

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा। प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

'अध्यात्म रामायण' में भी भगवान् राम के दूत के बँध जाने पर फौरन कथाकार के हृदय में शंका रही है। वही शंका पार्वती जी के हृदय में उठी है :

जिस रामचन्द्र के नाम को निरन्तर लोग जपते हैं और जिससे मनुष्य अज्ञान से उत्पन्न हुए कर्म-बन्धन से छूट जाते हैं। उसी राम के चरणारविन्द की सदा सेवा करने वाला हनुमान् स्थूल पाश-बन्धनों में कैसे बँध सकता है ?

महादेव जी इस शंका को निवारण करते हुए, कहते हैं :

ब्रह्मास्त्र का बंधन तो ब्रह्मा के वरदान से क्षणमात्र में ही हनुमान के शरीर से छूट गया फिर भी तुच्छ रस्सियों में बँधे हनुमान सब कुछ जानते हुए भी रावण से मिलने के उद्देश्य से राक्षसो के साथ चलने लगे। वे स्वामी के कार्य के लिए ही राक्षसों की गालियों तथा मार को सहन कर रहे थे।

उपर्युक्त तीनों रामायणों के प्रसंगों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रह्मास्त्र कोई ब्रह्मा के वरदान से दिया हुआ या उसके मन्त्रो से अभिमन्त्रित अस्त्र नही था, यह सम्भव हो सकता है कि शत्रु पर अस्त्र छोड़ते समय राक्षस तथा आर्य भी किसी प्रकार के मन्त्र का स्मरण करते हों और फिर इस अस्त्र को उस मन्त्र से अभिमन्त्रित जानकर उसका प्रभाव उस मन्त्र के कारण या उस मन्त्र के देवता के कारण मानते हों। ब्रह्मा का अस्त्र समझकर हनुमान उस बधन मे जान-बूझकर ब्रह्मा की मर्यादा रखने के हेतु बँधे रहे, यह एक चमत्कारमयी कल्पना है। हनुमान अवश्य मेघनाद के द्वारा छोडे ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित हो गये थे और उसी अवस्था में राक्षस उन्हें मारते-पीटते रावण के पास ले गये थे। इस सत्य के अलावा सब-कुछ चमत्कार लगता है जो हनुमान (एक देवता) की प्रतिष्ठा को ऊँचा रखने के लिए परवर्ती कथाकारों ने मूल-कथा में जोड़ दिया मालूम होता है।

जब हनुमान लंकापति रावण के सम्मुख आकर खड़े हुए तो रावण ने उनका पता पूछा। हनुमान ने अपने-आपको महापराक्रमी श्री राघव का दूत बताया और फिर उस राक्षसराज से कुछ नीति-युक्त वचन कहने लगे। पहले तो हनुमान ने श्री रामचन्द्र का पूरा परिचय रावण को दिया और फिर राम-लक्ष्मण के बल-पौरुष का बखान करके वे कहने लगे—हे रावण! तुम धर्म के तात्पर्य को जानते हो, सोचो, दूसरे की स्त्री को अपने बंधन मे रखना कहाँ तक धर्म-युक्त है? हे राजन! तुमने बड़ी तपस्या से जिस ऐश्वर्य्य और बहुकाल-व्यापी जीवन को प्राप्त कर रखा है उसका नाश करना तुमको उचित नही है। जो तुम यह सोचते हो कि देवता और दैत्य तुमको नही मार सकते हैं तो सुग्रीव तो वानरों के राजा वानर हैं और उसी प्रकार रामचन्द्र मनुष्य हैं। तुम उन रामचन्द्र के पराक्रम को नहीं जानते हो। वे लंका-सहित तुम्हारा नाश कर देंगे, इसलिये इस सीता को कालरात्रि समझकर मुक्त कर दो।

हे राक्षसेन्द्र! जो मैं कहता हूँ उसे सच समझो। चराचर प्राणियों-सहित इन लोकों का संहार करके फिर नई सृष्टि रचने की शक्ति रामचन्द्र में है। देव, दैत्य मनुष्य, यक्ष, राक्षस, नाग विद्याधर, साँप, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किन्नर और पक्षी इनमें, और सब स्थानों तथा सब कालों में ऐसा कोई नहीं है जो विष्णु के तुल्य पराक्रमी श्री रामचन्द्र का युद्ध मे सामना करे

हे रावण! सर्व लोकेश्वर राजसिंह श्री रामचन्द्र का यह अप्रिय कार्य करके तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभ है। चाहे स्वयम्भू चतुर्मुख ब्रह्मा हों, चाहे रुद्र-त्रिनेत्र

त्रिपुरासुर के मारने वाले हों और चाहे देवताओं के राजा इन्द्र हों परन्तु संग्राम में रामचन्द्र के सामने वे खड़े नहीं हो सकते।

'वाल्मीकीय रामायण' के ये अन्तिम दो पैरा स्पष्ट क्षेपक लगते हैं। इनमें यद्यपि हनुमान ने राम के पराक्रम की तुलना प्रस्तुत की है लेकिन राम का अलौकिक रूप इसमें स्पष्ट हो जाता है, इस रूप की व्याख्या अपने कथन के प्रारम्भ में हनुमान ने नहीं की है बल्कि बीच में तो यहाँ तक कहा है कि श्री राघव मनुष्य हैं और अन्त में वे मनुष्य से भी अविजित हो गये हैं अर्थात् देवताओं से भी ऊपर अलौकिक सत्ता में जा मिले हैं। फिर भी पूरी तरह यह साम्प्रदायिक दृष्टिकोण उतर कर नहीं आ सका है, नहीं तो हनुमान कहीं-न-कहीं रावण से यह अवश्य कहते कि मूर्ख ! सब स्वार्थों को छोड़ भगवान् राम के चरणों में जाकर शरण ले और अपने परलोक को बना।

यह दृष्टिकोण हनुमान के कथन में 'रामचरित मानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' की रामकथा में आ गया है। 'रामचरित मानस' में हनुमान रावण से कहते हैं :

> देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी॥
> जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
> तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥
>
> प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि।
> गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

इसके साथ तुलसीदास जी के मत का प्रचार करते हुए हनुमान रावण को राम की भक्ति का उपदेश करने लगे :

> सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
> संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥
>
> मोहमूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान।
> भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

'अध्यात्म रामायण' में यह भक्ति का उपदेश तो है लेकिन इसकी पृष्ठभूमि में भगवान् राम के ब्रह्म-स्वरूप की दार्शनिक विवेचना और है।

हनुमान रावण से बोले—लोकगति का विचार करके अपनी आसुरी प्रवृत्तियों को छोड़ दो। संसार से मोक्ष दिलाने वाली जो दैवी सम्पत्ति की बुद्धि है, उसे ग्रहण करो। तुम पुलस्त्य ऋषि के पौत्र कुलीन ब्राह्मण हो, इसलिये तुम अगर देहात्म बुद्धि से देखो या आत्म-विचार करके देखो तो तुम राक्षस नहीं हो। स्थूल शरीर, बुद्धि-प्रधान लिङ्ग-शरीर तथा सब इन्द्रियों से जो दुःख पैदा होता है वह तुम्हें नहीं है। दुःख तुममें नहीं रह सकता क्योंकि तुम निर्विकार हो। दुःख तो अज्ञान से उत्पन्न

होता है इसलिये स्वप्न के तुल्य मिथ्या है, इसी प्रकार संसार भी मिथ्या है। तुम्हारा सच्चा स्वरूप आत्मा सत्य है, उसमें कोई विकार नहीं है। अज्ञान से ही मनुष्य उसमे विकार देखता है लेकिन वह सब मिथ्या है।

वेद ने अद्वैत आत्मा कहा है। इस कारण चित्त के सम्बन्ध से आत्मा में दु:खादि सम्भव नही। आत्मा अति सूक्ष्म होने के कारण देह-धर्मों से लिप्त नही होता। अविवेक से ही मनुष्य देह, इन्द्रिय और प्राण से बने स्वरूप को सत्य समझकर दुःख भोगता है। जब विवेकपूर्ण हो अपने को वह इस प्रकार देखता है कि मैं चैतन्य हूँ, जन्म-रहित हूँ, नाश-रहित हूँ, मैं आनन्दस्वरूप हूं तभी वह मोक्ष प्राप्त करता है। देह और प्राण तो इन धर्मों से विपरीत हैं इसलिये, आत्मा नही हो सकते। मन भी आत्मा नही है, क्योंकि इसमें अहंकार का विकार है इसलिये जो चिदानन्दमय है और विकार-रहित है, तथा देहादि संग से रहित है वही आत्मा है, वही ईश्वर है। वही निरञ्जन है और निर्मल है। इसलिये उपाधि रूप मल से छूटे ऐसे आत्मा को जानकर पुरुष मोक्ष पाता है।

हे श्रेष्ठ मति रावण ! इस मुक्ति का अत्यन्त उत्तम साधन मैं और कहता हूँ। एकाग्र चित्त हो सुन :

विष्णु की भक्ति चित्त के शोधन करने के लिये सबसे उत्तम है। उससे अति निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है। उस ज्ञान से आत्म-साक्षात्कार होता है। आत्म-स्वरूप को जानकर मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है अर्थात् ब्रह्म-रूप हो जाता है। इस कारण से लक्ष्मी के पति, प्रकृति से परे और व्यापक पुराण-पुरुष राम का इस समय में भजन करो और अपनी मूर्खता को और राम में शत्रुभाव को त्याग कर शरणागत-वत्सल भगवान् राम का भजन करो और सीता को उन्हे समर्पित कर दो। अगर तुम अज्ञान-रूपी अग्नि से जलती हुई अपनी आत्मा की रक्षा नहीं करोगे तो अपने किये हुए पापों के फलस्वरूप नीचे-से-नीचे लोक में जाओगे और मृत्यु-बन्धन से कभी नहीं छूटोगे।

उपर्युक्त वर्णन मे हनुमान श्री रामचन्द्र के पराक्रम का वर्णन नही करते बल्कि आत्मा के स्वरूप की व्याख्या करके रावण की अज्ञान से विकृत हुई आत्मा के परिष्कार का प्रयत्न करते हैं। इसी आत्म-साक्षात्कार द्वारा वे मनुष्य की मुक्ति बताते हैं। 'अध्यात्म रामायण' के कथाकार तो श्री रामचन्द्र के अवतार-रूप मे भी पराक्रमयुक्त कार्यों का उल्लेख नही किया है बल्कि उसने तो दार्शनिक व्याख्या करके राम के व्यापक ब्रह्म-स्वरूप की प्रतिष्ठापना की है और वहीं निष्कर्ष-रूप में हनुमान ने मानवोचित उपदेश रावण को दे दिया है।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' मे हनुमान-रावण संवाद नहीं है।

'सूरसागर' की रामकथा में संक्षेप में हनुमान-रावण-संवाद है।

'अद्भुत रामायण' में यह प्रसंग बिलकुल नहीं है।

हनुमान के अप्रिय वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर आज्ञा दी—इस बन्दर का वध कर दो। उसी समय विभीषण वहाँ आ गये। उन्होंने रावण से नीतियुक्त बात कही—हे राक्षसेन्द्र ! जो सज्जन राजा लोग पूर्वापर में ज्ञानवान होते हैं वह दूत को हत्या नहीं कराते। राजन् ! तुम धर्मज्ञ हो। दूत के रूप में आये हुए इस कपि का घात करना तुम्हारे लिये धर्म से विरुद्ध, लोकाचार से निन्दित और अयोग्य कर्म है। अगर इसको दण्ड देना ही है तो इसके प्राण न लेकर उसे दूसरी तरह का दण्ड दिया जा सकता है; जैसे अङ्ग भङ्ग कर देना, कोड़े मारना, सिर मुँडा देना, अथवा उसके शरीर में किसी तरह का निशान अंकित कर देना। दूतों के लिये ये ही दण्ड कहे गये हैं।

विभीषण रावण की धर्मज्ञता तथा धीरता की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगे। वे कूटनीति की बात रावण को समझा कर कहने लगे—हे दनुनायक ! यदि यह दूत नष्ट कर दिया जायगा तो फिर ऐसा दूसरा न मिलेगा। जो तुम्हारे विरोधी उन दुर्विनीत राजपुत्रों को लड़ने के लिये उत्साह दे। मेरी समझ में यही आता है कि तुम्हारी सेना का कोई एक भाग जाय और उन मूढ़ राजपुत्रों का पकड़ लावे। इससे तुम्हारा प्रभाव उन्हें विदित हो जायगा।

विभीषण के नीतियुक्त वचन सुनकर रावण बोला—कपियों की पूँछ उनका बड़ा प्यारा भूषण है, यह जला दी जाय और इस वानर को सारे नगर में घुमाया जाय।

राक्षसों ने पुराने कपड़े हनुमान की पूँछ में लपेट दिये और तेल डाल कर आग लगा दी।

सभी रामकथाओं में उपर्युक्त वर्णन प्रायः एक-सा है, 'मानस' में विभीषण-रावण-संवाद अति संक्षिप्त है, इसी प्रकार 'अध्यात्म रामायण' में भी। 'मानस' में विभीषण श्री रामचन्द्र के प्रति किसी प्रकार के अपशब्द बोलते नहीं दिखाई देते लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में विभीषण ने राम-लक्ष्मण को मूढ़ राजपुत्र कहकर सम्बोधित किया है।

'रामचरित मानस' में एक अद्भुत चमत्कार यहाँ मिलता है। हनुमान की पूँछ के लपेटने में इतना कपड़ा लगा कि :

रहा न नगर बसन घृत तेला। बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥

हनुमान के पूँछ बढ़ाने का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में भी है। वानर हनुमान के पूँछ होना ही रामकथा का एक चमत्कार मालूम होता है। हमारा अनुमान है कि जिस प्रकार अन्य टॉटम मानने वाली जातियाँ अपने-अपने टॉटम का कोई

रूप अपने शरीर पर धारण करती थी इसी प्रकार वानर-टॉटम को मानने वाली यह वानर जाति भी अवश्य अपने देवता के चिह्न-स्वरूप अपने शरीर में पूँछ लगाती होगी, इनमें से कुछ मॉस्क (चेहरे) भी लगाते होंगे। इसी पूँछ को जलवाने का आदेश दिया होगा।

हनुमान ने चारों तरफ़ दौड़कर सारे नगर को जला डाला। केवल विभीषण के घर को छोड़कर सबके घरों को जलाकर खाक कर डाला। 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि हनुमान ने चैत्यों पर बने राक्षसों के देव-मन्दिरों को नष्ट कर डाला। यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन काल में भी एक जाति दूसरी जाति पर विजय प्राप्त करके अपने धार्मिक विश्वासों तथा अपने देवताओं को उस पर लादती थी और उसके मान्य देवताओं को भी नष्ट करती थी। वही परम्परा मुसलमानों के शासन-काल तक भारत में चली। महमूद गज़नवी ने सोमनाथ को तोड़ा औरङ्गज़ेब ने जो हिन्दू, मन्दिरों को तुड़वाकर मस्जिदें बनवाईं यह सब उसी परम्परा के अन्तर्गत दीखता है। एक देवता पर दूसरे देवता का हावी हो जाना अर्थात् किसी बलशाली जाति के देवता में कमज़ोर जातियों के देवताओं का अन्तर्भुक्त हो जाना तो महाभारत-युद्ध के पश्चात् खूब चला है। शिव और विष्णु के स्वरूपों का अध्ययन इस बात का साक्षी है। विपक्षी जाति या सम्प्रदाय के देवताओं को नष्ट करने की या उनको छोटा करके देखने की प्रवृत्ति तो प्रायः हर एक सम्प्रदाय में रही है, बौद्ध तथा जैनों में भी यह खूब पली है। यह प्रवृत्ति मूल में साम्राज्यवादी है इसलिये हेय है। रामायण के कथाकारों ने इसे इस रूप में नहीं लिया है क्योंकि वह राम के पक्ष में अधिक झुके हैं। लंका-दहन के समय लंका में जो कोलाहल मच उठा था उसका सजीव चित्रण 'वाल्मीकीय रामायण' में ही मिलता है, अन्य रामकथाओं में इस प्रकार का चित्रमयी वर्णन नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि लंका को चारों ओर से जलती देखकर हनुमान सीता को याद करके शोकग्रस्त हो गये। वे सोचने लगे कि कहीं सीता इस आग में न जल गई हों, नहीं तो स्वामी का सारा काम चौपट हो जायगा। यह मैंने क्रोध में क्या किया। परन्तु इस पर उनका हृदय विश्वास नहीं करता था। वे उस स्थान पर आये जहाँ सीता बैठी थीं। उसे सुरक्षित देखकर उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन्होंने सीता से वापस जाने की आज्ञा ली। वे अरिष्ट नामक पर्वत पर कूद कर जा चढ़े। उस समय इनके पैरों के आघात से अरिष्ट के शृंग की शिलाएँ भर-भराकर चूर हो गईं। उस पर चढ़ कर हनुमान बढ़े और वायु की तरह उत्तर की ओर उड़ चले। उस समय हनुमान के पैरों से दबाया गया वह पर्वत अनेक प्राणियों की चिल्लाहट के साथ भूमि के तुल्य हो गया।

'वाल्मीकीय रामायण' में हनुमान के वापस आकाश-मार्ग से जाने का काफ़ी बढ़ा-चढ़ा चमत्कारमयी वर्णन मिलता है।

'सूरसागर' की रामकथा में संक्षेप में हनुमान-राव
'अद्भुत रामायण' में यह प्रसंग बिलकुल नहीं है
हनुमान के अप्रिय वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध हो
वध कर दो। उसी समय विभीषण वहाँ आ गये। उन्हों
कही—हे राक्षसेन्द्र ! जो सज्जन राजा लोग पूर्वापर में
हत्या नहीं कराते। राजन्! तुम धर्मज्ञ हो। दूत के रूप में
करना तुम्हारे लिये धर्म से विरुद्ध, लोकाचार से निन्दित
इसको दण्ड देना ही है तो इसके प्राण न लेकर उसे दूस
सकता हैं; जैसे अङ्ग भङ्ग कर देना, कोड़े मारना, सिर मु
में किसी तरह का निशान अंकित कर देना। दूतों के लिये

विभीषण रावण की धर्मज्ञता तथा वीरता की
लगे। वे कूटनीति की बात रावण को समझा कर कहने लगे
दूत नष्ट कर दिया जायगा तो फिर ऐसा दूसरा न मिले
दुर्विनीत राजपूत्रों को लड़ने के लिये उत्साह दे। मेरी
तुम्हारी सेना का कोई एक भाग जाय और उन मूढ़ रा
तुम्हारा प्रभाव उन्हें विदित हो जायगा।

विभीषण के नीतियुक्त वचन सुनकर रावण
बड़ा प्यारा भूषण है, वह जला दी जाय और इस
जाय।

राक्षसों ने पुराने कपड़े हनुमान की पूँछ में
आग लगा दी।

सभी रामकथाओं में उपर्युक्त वर्णन प्रायः
रावण-संवाद अति संक्षिप्त है, इसी प्रकार 'अध्या
विभीषण श्री रामचन्द्र के प्रति किसी प्रकार के अप
'वाल्मीकीय रामायण' में विभीषण ने राम-लक्ष्मण
किया है।

'रामचरित मानस' में
पूँछ के लपेटने में इतना
रहा न न
हनुमान के
हनुमान के पूँ
मान

रूप अपने शरीर पर धारण करती थीं इसी प्रकार वानर-टॉटम को मानने वाली यह वानर जाति भी अवश्य अपने देवता के चिह्न-स्वरूप अपने शरीर में पूँछ लगाती होगी, इनमें से कुछ मॉस्क (चेहरे) भी लगाते होंगे। इसी पूँछ को जलवाने का आदेश दिया होगा।

हनुमान ने चारों तरफ़ दौड़कर सारे नगर को जला डाला। केवल विभीषण के घर को छोड़कर सबके घरों को जलाकर खाक कर डाला। 'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि हनुमान ने चैत्यों पर बने राक्षसों के देव-मन्दिरों को नष्ट कर डाला। यह स्पष्ट करता है कि प्राचीन काल में भी एक जाति दूसरी जाति पर विजय प्राप्त करके अपने धार्मिक विश्वासों तथा अपने देवताओं को उस पर लादती थी और उसके मान्य देवताओं को भी नष्ट करती थी। वही परम्परा मुसलमानों के शासन-काल तक भारत में चली। महमूद गजनवी ने सोमनाथ को तोड़ा औरङ्गजेब ने जो हिन्दू, मन्दिरों को तुड़वाकर मस्जिदें बनवाईं यह सब उसी परम्परा के अन्तर्गत दीखता है। एक देवता पर दूसरे देवता का हावी हो जाना अर्थात् किसी बलशाली जाति के देवता में कमज़ोर जातियों के देवताओं का अन्तर्भुक्त हो जाना तो महाभारत-युद्ध के पश्चात् खूब चला है। शिव और विष्णु के स्वरूपों का अध्ययन इस बात का साक्षी है। विपक्षी जाति या सम्प्रदाय के देवताओं को नष्ट करने की या उनको छोटा करके देखने की प्रवृत्ति तो प्रायः हर एक सम्प्रदाय में रही है, बौद्ध तथा जैनों में भी यह खूब पली है। यह प्रवृत्ति मूल में साम्राज्यवादी है इसलिये हेय है। रामायण के कथाकारों ने इसे इस रूप में नहीं लिया है क्योंकि वह राम के पक्ष में अधिक झुके हैं। लंका-दहन के समय लंका में जो कोलाहल मच उठा था उसका सजीव चित्रण 'वाल्मीकीय रामायण' में ही मिलता है, अन्य रामकथाओं में इस प्रकार का चित्रमयी वर्णन नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन है कि लंका को चारों ओर से जलती देखकर हनुमान सीता की याद करके शोकग्रस्त हो गये। वे सोचने लगे कि कहीं सीता इस आग में न जल गई हो, नहीं तो स्वामी का सारा काम चौपट हो जायगा। यह मैंने क्रोध में क्या किया। परन्तु इस पर उनका हृदय विश्वास नहीं करता था। वे उस स्थान पर आये जहाँ सीता बैठी थीं। उसे सुरक्षित देखकर उनका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन्होंने सीता से वापस जाने की आज्ञा ली। वे अरिष्ट नामक पर्वत पर कूद कर जा चढ़े। उस समय इनके पैरों के आघात से अरिष्ट के शृंग की शिलाएँ भर-भराकर चूर हो गई। उस पर चढ़ कर हनुमान बड़े और की तरह उत्तर की ओर उड़ चले। उस समय हनुमान के पैरों से ...
पर्वत अनेक प्राणियों की बिल्लाहट के साथ भूमि के तुल्य हो गया।

'वाल्मीकीय रामायण' में हनुमान के
बढ़ा-चढ़ा चमत्कारमयी वर्णन

'रामचरित मानस' में चलते समय सीता ने हनुमान को चूड़ामणी उतार कर दी और साथ में इन्द्रपुत्र जयंत की कथा कही। इसमें हनुमान का सीता के जलने के बारे में शंकायुक्त होकर शोकग्रस्त होने का वर्णन नहीं है।

हनुमान के वापस जाने का वर्णन यहाँ भी चमत्कारमयी है :

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥

'अध्यात्म रामायण' में भी इसका प्रभाव नहीं है।

'वाल्मीकीय रामायण' तथा अन्य रामकथाओं में हनुमान के आकाश-मार्ग से ही वापस आने का वर्णन है, उसके लिये आकाश-मार्ग का एक चित्र भी रामायण में प्रस्तुत किया गया है, लेकिन हम अपने पूर्व-अनुमान के अनुसार हनुमान का समुद्री-मार्ग से आना ही मानते हैं जिसमें किसी प्रकार के चमत्कार की सम्भावना ही शेष नहीं रह जाती है।

× × ×

जैन-स्रोत के अनुसार सुग्रीव के किष्किन्धा का राज्य मिलने से लेकर हनुमान के लंका से वापस आने तक कथा एक विचित्र गतिविधि को लेकर चलती है। अन्य रामकथाओं से जैन-कथा में दृष्टिकोण का अन्तर तो स्पष्ट है, इसके अलावा घटनाओं तथा पात्रों के आपसी सम्बन्धों में भी काफ़ी अन्तर दिखाई देता है, देखा जाय तो जैन-कथाकारों ने रामकथा को अपने मत के अनुसार इतना परिवर्तित किया है कि वह बिलकुल अलग-सी दिखाई देती है, उसके सभी पात्र एक अलग तरह की मर्यादा के अन्दर ही बात करते हैं, उसमें तुलसीदास जी का-सा सम्प्रदायवादी पक्ष नहीं है वरन् रामकथा के प्रति पूरे वैष्णव दृष्टिकोण की एक सजग प्रतिक्रिया है जो कथा को जैन-सम्प्रदाय के रंग में रंग गई है।

जैन-स्रोत के अनुसार उपर्युक्त कथा इस प्रकार है :

जब सुग्रीव की तेरह पुत्रियों का विवाह राम के साथ हो गया तो वे महा-सुन्दरी कन्याएँ अनेक चेष्टाओं से राम के मन को अपनी-अपनी तरफ आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगीं। राम का चित्त सीता में था। सीता के वियोग में उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था। उधर जब सुग्रीव सुतारा के महल में ही रहा और बहुत दिन तक राम के पास नहीं आया तो राम सोचने लगे कि या तो मेरे वियोग से पीड़ित होकर सीता मर गई इसलिये सुग्रीव मेरे पास नहीं आता है या वह राज्य-मद में डूबा हुआ हमारे दुःख को भूल गया है। इस तरह विचार करते हुए राम की आँखों से आँसू गिर पड़े, यह देखकर लक्ष्मण अत्यन्त दुःखी हुआ और क्रोध में नंगी तलवार हाथ में लेकर सुग्रीव के नगर की तरफ चला। वहाँ महल में पहुँचकर लक्ष्मण ने क्रोधाग्नि मे जलते हुए लाल-लाल नेत्रों से सुग्रीव की तरफ़ देखकर कहा—रे पापी!

अपने परमेश्वर राम तो स्त्री के दुःख में दुःखी हैं और तू दुर्बुद्धि स्त्री-सहित सुख से राज्य कर रहा है। रे विद्याधर वायस विषयलुब्ध दुष्ट ! जहाँ रघुनाथ ने तेरा शत्रु भेजा है वहाँ मैं तुझे भेजूँगा।

सुग्रीव लक्ष्मण के क्रोध-भरे वचनों को सुनकर अत्यन्त दीन स्वर में बोला—हे देव ! मेरी भूल क्षमा करें। मैं अपना वायदा भूल गया था। आप तो जानते हैं कि हम जैसे क्षुद्र मनुष्यों की तो खोटी बुद्धि ही होती है।

लक्ष्मण के क्रोध को देखकर सुग्रीव की सब स्त्रियाँ काँपती हुई उन्हें अर्घ्य देकर आरती करने लगी। उन्होंने हाथ जोड़कर लक्ष्मण से पति की भिक्षा माँगी। लक्ष्मण ने सुग्रीव को अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कराके इसी प्रकार उपकार किया जैसे यक्षदत्त को माता का स्मरण कराके मुनि ने उपकार किया था।

यहाँ गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक को क्रौंचपुर नगर के राजा यक्ष के पुत्र यक्षदत्त की कथा सुनाई है।

अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके सुग्रीव लक्ष्मण के साथ श्रीराम के पास आया। उसने महाकुल के उपजे अपने सब विद्याधर सेवकों को बुलाया। सुग्रीव ने उनसे कहा—देखो, राम ने मेरा बड़ा उपकार किया है, अब सीता की खबर लाकर इन्हें दो। सब दिशाओं में, समस्त पृथ्वी पर, जल, थल, आकाश में सब जगह सीता को खोजो। जम्बू द्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड, कुलाचल वन, सुमेरु अनेक विद्याधरों के नगरों में जाकर सीता को ढूँढो।

सुग्रीव की आज्ञा मानकर सब विद्याधर चारों दिशाओं में दौड़े। भामण्डल को भी सीता-हरण की सूचना भेज दी गई थी। वह अपनी बहन के हरे जाने पर अति दुःखी हुआ और स्वयं सीता को ढूँढने निकला। सुग्रीव भी सीता की खोज में निकला। वह ज्योतिषचक्र के ऊपर होकर विमान में बैठा हुआ दुष्ट विद्याधरों के सब नगरों को देखता जाता था। समुद्र के बीच जम्बूद्वीप को देखकर वहाँ महेन्द्र पर्वत पर सुग्रीव उतरा। पर्वत पर स्थित रत्नजटी इसे देखकर ऐसे डरा जैसे गरुड़ को देखकर साँप डरता है। उसने सोचा कि लंकापति ने क्रुद्ध हो सुग्रीव को मेरे पास भेजा है, अब यह मुझे मारेगा। हाय ! मेरी विद्या तो रावण हर कर ले गया, अब प्राण हरने उसने इस सुग्रीव को भेजा है। मैं किसी तरह भामण्डल के पास भी नहीं पहुँच सका, नहीं तो सब काम ठीक हो जाता।

सुग्रीव ने पास आकर रत्नजटी से पूछा—हे भाई ! यह तेरी क्या अवस्था हुई है, तेरी विद्या कहाँ चली गई।

रत्नजटी ने काँपते हुए सारा वृत्तान्त कह सुनाया और कहा—दुष्ट रावण सीता को हर ले जा रहा था, उसी समय मैंने उसका सामना किया। उसी ने मेरी यह हालत कर दी है।

सुग्रीव हर्षित होकर रत्नजटी को राम के पास लाया। रत्नजटी ने राम-लक्ष्मण को नमस्कार करके कहना प्रारम्भ किया—हे देव ! सीता महासती है। दुष्ट, निर्दयी लंकापति रावण उसको हर ले गया है। मैंने देखा था कि वह मृगी के समान व्याकुल थी और विलाप कर रही थी। वह बलवान बलात्कार से उसे ले जा रहा था। मैंने क्रुद्ध हो उससे कहा कि यह महासती मेरे स्वामी भामण्डल की बहन है, तू इसे छोड़ दे। वह दुष्ट, जिसने युद्ध में इन्द्र को जीता, कैलाश पर्वत को उठाया और जो तीनों खण्डों का स्वामी है मेरी यह अवस्था कर गया है।

यह सारा वृतान्त सुनकर राम ने रत्नजटी को हृदय से लगा लिया। वे विद्याधरों से पूछने लगे कि लंका कितनी दूर है ?

यह सुनकर विद्याधरों ने अपने मुख नीचे कर लिये। उनके मुख की छाया कुछ और ही हो गई। वे राम के सामने निश्चल होकर खड़े रहे। राम ने सोचा कि ये रावण से डर गये हैं इसलिये उन्होंने इन सब विद्याधरों की तरफ मन्दहष्टि से देखा। तब सभी कहने लगे—हे देव ! क्या आप हमको कायर समझते हैं ? भला सोचिये, जिसका नाम सुनकर ही हमारा हृदय भयभीत हो जाता है उसकी बात हम कैसे करें। कहाँ हम अल्प-शक्ति वाले और कहाँ वह लंका का ईश्वर। आप अपना हठ छोड़ दो। अपनी वस्तु को गई ही समझो। अगर आप रावण के बारे में जानना चाहते हैं तो सुनिये :

लवण समुद्र में राक्षस द्वीप प्रसिद्ध है। वह सात सौ (७००) योजन चौड़ा है और २१०० योजन उसकी परिधि है। अपार धन-सम्पदा उसमें भरी हुई है। उसके बीच में सुमेरु के समान त्रिकूटाचल पर्वत है, जो नव योजन ऊँचा, पचास योजन के विस्तार में फैला हुआ है। वह नाना प्रकार के मणि और सुवर्ण से मण्डित है। मेघवाहन को राक्षसों के इन्द्र ने उसे दिया था। उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नामक नगरी है। वहाँ रत्नों से जड़े विमानों के समान घर हैं। तीस योजन का इसका कोट है जिसके चारों ओर खाई है। लंका के चारों ओर बड़े रमणीक स्थान हैं, वहाँ रावण के बन्धुजन रहते हैं। उस लंका में भ्राता, पुत्र, मित्र, स्त्री, बांधव तथा सेवकों के सहित लंकापति इस प्रकार वास करता है जैसे मानो साक्षात् इन्द्र ही हो। उसका महाबली भाई विभीषण युद्ध में अजेय है। उसकी-सी बुद्धि देवताओं में भी नहीं है। उसके समान कोई दूसरा मनुष्य नहीं है। रावण का एक भाई त्रिशूल धारण करने वाला कुम्भकर्ण है जिसकी टेढ़ी भौहों को युद्ध मे देवता भी नहीं सह सकते, मनुष्यों की तो बात ही क्या है। रावण का पुत्र इन्द्रजीत पृथ्वी पर प्रसिद्ध है, जिसको देखकर वैरी अपने गर्व को छोड़ देते हैं, वह किसी से पराजित नहीं होता। फिर रावण का तो चित्र देखकर या नाम सुनकर ही शत्रु भयभीत हो जाता है। उस रावण से कौन युद्ध कर सकता है। इसलिये इस बात को छोड़कर दूसरी कोई बात करो।

विद्याधरों की यह बात सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध हो मेघ के समान गरजा। वह कहने लगा—तुम्हारी यह सारी प्रशंसा मिथ्या है। अगर वह रावण बलवान होता तो छिपकर स्त्री को चुरा कर क्यों ले जाता। वह पाखण्डी, अज्ञानी, पापी, नीच राक्षस अत्यन्त कायर है। शौर्य उसमें लेशमात्र भी नहीं है।

राम कहने लगे—हे विद्याधरो! मुझे कोई और बात नहीं सूझती। जब सीता का पता लग गया है तो उसको लाने का प्रयत्न करो।

यह सुनकर वृद्ध विद्याधर क्षण-भर विचार करके बोले—हे देव! आप शोक को तज दीजिये और हमारे स्वामी हो जाइये। देवांगनाओं के समान अनेक विद्याधरों की पुत्रियों के आप पति बन जाइये और इस सारे दुःख को भूल जाइये।

राम कहने लगे—मुझे किसी दूसरी स्त्री की अभिलाषा नहीं है। अगर तुम मुझे सच्चे हृदय से प्यार करते हो तो सीता को दिखाओ।

जाम्बूनद ने कहा—हे प्रभो! इस हठ को छोड़ दो। एक क्षुद्र पुरुष ने कृत्रिम मयूर का हठ किया, उसी की तरह स्त्री का हठ करके आप दुःखी मत होइये।

इसके साथ ही जाम्बूनद ने आत्मश्रेय नामक कुमार के मंत्रमयी लोहे के कड़े की कहानी सुनाई। एक बार एक गोह उस कड़े को लेकर बिल में घुस गई, वहाँ से वह भयंकर शब्द करने लगी। आत्मश्रेय ने शिलाओं और वृक्षों से आच्छादित उस बिल को खोद डाला।

इसी तरह हे राम! आप तो आत्मश्रेय के समान हैं, सीता मंत्रमयी लोहे के कड़े के समान है, बिल लंका है और वह भयानक शब्द करने वाली गोह रावण के समान है।

हे देव! अनन्तवीर्य योगीन्द्र को रावण ने नमस्कार करके एक बार अपनी मृत्यु का कारण पूछा, तो अनन्तवीर्य ने कहा कि जो कोटशिला को उठा लेगा उसी के हाथों तेरी मृत्यु होगी।

उसी समय लक्ष्मण बोले कि मैं अभी जाकर इस शिला को उठाऊँगा। जाम्बूनद, सुग्रीव, विराधत, अर्कमाली, नल तथा नील आदि नामी पुरुष राम-लक्ष्मण को विमान में बैठा कर कोटशिला की ओर ले चले। वहाँ लक्ष्मण ने चन्दन-चर्चित शिला की पूजा करके उसको नमोकार मन्त्र बोलते हुए उठा लिया। सुग्रीवादि वानर-वंशी सब जय-जयकार करने लगे। वे महास्तोत्र पढ़ते हुए सिद्धों की स्तुति करने लगे।

'जैन पद्मपुराण' के अनुसार वे सिद्ध भगवान् के अवतार के या कुछ-कुछ देवताओं के समान हो हैं।

लक्ष्मण सिद्धों का ध्यान करके और शिला को नमस्कार करके उठा। इसके बाद वे सब सम्मेद शिखर, कैलाश पर्वत तथा भारत-क्षेत्र के सर्व तीर्थों की यात्रा करते

हुए वापस किष्किन्धापुरी आ गये। सब विद्याधर एकत्र होकर परस्पर बातें करने लगे। उनको अब निश्चय हो गया था कि लक्ष्मण रावण को मारेगा, क्योंकि कोटिशिला को उठाने वाला यह कोई सामान्य मनुष्य नहीं है। उनमें से बहुत से कहने लगे कि रावण भी कम पराक्रमी नहीं है क्योंकि उसने भी तो कैलाश पर्वत उठाया था। तब कई विद्याधर कहने लगे—क्यों इतना विवाद करते हो? जगत् के कल्याण के लिये इनका समझौता करा दो। इसके बराबर अच्छी कोई बात नहीं है। रावण से प्रार्थना करके सीता को ले आओ और उसे राम को सौंप दो। युद्ध से क्या फायदा है। बड़े-बड़े बलवान राजा युद्ध में परलोक सिधार गये, इससे तो परस्पर मिलना ही श्रेष्ठ है।

इस तरह विचार करके सभी विद्याधर राम के पास आये और उनसे विनती करने लगे—हे देव! सीता को खोजने में हमारी कोई ढील नहीं है लेकिन यह कहो कि आपका प्रयोजन केवल सीता को लाने का है या युद्ध करने का है? यह सामान्य युद्ध नहीं होगा। इसमें विजय पाना अति कठिन है। यह रावण भरत-क्षेत्र के तीन खण्डों पर निष्कंटक राज्य करता है। उससे युद्ध करना ठीक नहीं है इसलिए आप युद्ध का विचार छोड़ कर हमसे कहिये, हम क्या करें?

हे देव! उसके सम्मुख युद्ध करने से संसार में महाक्षोभ उत्पन्न होगा। प्राणियों का नाश होगा। समस्त उत्तम क्रियाएँ संसार से नष्ट हो जायेंगी। दूसरे, रावण का भाई विभीषण पाप कर्म-रहित श्रावक व्रत का धारण करने वाला है। वह रावण को अत्यन्त प्रेम से समझायेगा तो रावण उसकी बात की अवहेलना न करके सीता को वापस भेज देगा। इसलिए विचार करके रावण के पास ऐसा पुरुष भेजना चाहिए जो बातें करने में प्रवीण हो और राजनीति में भी कुशल हो। साथ में वह रावण का भी कृपापात्र हो।

यह सुनकर महोदधि नामक विद्याधर बोला—क्या तुम नहीं जानते कि लंका के चारों ओर मायामयी यन्त्र लगा हुआ है, जिससे न तो कोई आकाश-मार्ग से और न पृथ्वी के मार्ग से लंका में घुस सकता है। वह मायामयी यन्त्र महाभयानक है, इस-लिए लंका दुर्गम है। जितने विद्याधर यहाँ उपस्थित हैं उनमें कोई लंका में प्रवेश करने में समर्थ नहीं है इसलिए पवनंजय के पुत्र श्रीशैल (हनुमान) को बुलाना चाहिए। वह रावण का परम मित्र है और उत्तम पुरुष है। वह रावण को समझा कर इस विघ्न को समाप्त करा देगा।

सबने इस निर्णय को मान लिया। श्रीभूति नामक दूत हनुमान के पास भेजा गया। वह दूत आकाश मार्ग से श्रीपुर नामक नगर को गया। नगर में पहुँच कर उसने [illegible] के समान राजमन्दिरों को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया। वह राजा हनुमान की रानी अनंगकुसुमा के महल पर आया। उस समय हनुमान खर-दूषण की [illegible] खरदूषण की मृत्यु पर अनेक प्रकार से विलाप कर रही थी।

थे। मर्यादा नामक द्वारपाली ने दूत के आगमन का समाचार कहा। हनुमान ने दूत को अन्दर बुला लिया।

श्रीभूत ने सारा समाचार कह सुनाया। अनंगकुसुमा पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर फिर मूच्छित हो गई। वह व्याकुल होकर विलाप करने लगी—हाय पिता ! हाय भाई शंबूक ! तुम एक बार तो मुझे दर्शन दो।

चन्द्रनखा (शूर्पणखा) की पुत्री अनंगकुसुमा जो जिन-मार्ग में प्रवीण थी लोकाचार के अनुसार पिता के मरण की अन्तिम क्रिया करने लगी। हनुमान अपने श्वसुर खरदूषण के वध का समाचार सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गईं, चेहरा क्रोधाग्नि से लाल हो गया। यह देखकर श्रीभूत ने अति विनीत स्वर में राम और सुग्रीव की मित्रता का सारा वृतान्त कहा। हनुमान की दूसरी स्त्री पद्मरागा, जो सुग्रीव की पुत्री थी अपने पिता की कुशलता सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई। वह दान-पूजा आदि अनेक शुभ कार्य करने लगी। हनुमान स्वयं यह देखकर अति प्रसन्न हुए। वे अपनी महाऋद्धि से युक्त सेना को लेकर आकाश-मार्ग से किष्किन्धा की ओर चले। हनुमान का जाना सुनकर अनेक राजा उनके साथ चल दिये, जैसे इन्द्र के साथ बड़े-बड़े देव चलते हैं। विद्याधरों के वचनाद से आकाश गूँज उठा। अश्व, गज तथा सुन्दर रथों से युक्त आकाश इस प्रकार शोभायमान लग रहा था जैसे कोई कुमुदिनी का वन हो। हनुमान की सेना के बाजों का घोष सुनकर सब कपिवंशी अति हर्षित हुए। सुग्रीव ने हनुमान के स्वागत में सब नगर की सजावट कराई। सबके पूज्य देवताओं की तरह हनुमान ने नगर में प्रवेश किया। सुग्रीव ने अपने महल में उनका खूब सत्कार किया और राम का समस्त वृत्तान्त कह दिया।

सुग्रीव हनुमान को लेकर श्री राम के पास आये। श्री राम के शरीर की कान्ति हनुमान पर पड़ी तो वे उनके प्रभाव में वशीभूत हो गये। वे सोचने लगे कि ये दशरथ-पुत्र श्री राम हैं, जिनका आज्ञाकारी भाई लक्ष्मण है, जो अत्यन्त पराक्रमी है। मैंने इन्द्र को भी देखा है परन्तु इनको देखकर मेरे हृदय में अत्यन्त आनन्द हो रहा है।

अब हनुमान आगे आये। श्री राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया। हनुमान हृदय में गद्गद होकर बोले—हे देव ! शास्त्र में कहा है कि प्रशंसा परोक्ष करिये प्रत्यक्ष न करिये, परन्तु आपके गुणों को देख मेरा मन वशीभूत हो गया है। मैंने जैसी आपकी महिमा सुनी थी वैसी ही पाई। आपने सुग्रीव का बड़ा उपकार किया है, अब हम आपकी क्या सेवा करें। हम प्राण तज कर भी आपके काम को पूरा करेंगे। मैं लंकापति को समझाकर आपकी स्त्री को वापस लाऊँगा।

उसी समय जाम्बूनद बोला—हे हनुमान ! हमारे तुम ही एक आश्रय हो। लंका को जाओ और किसी से विरोध न करते हुए रावण को समझाओ।

हनुमान मन्त्री जाम्बूनद के वचन सुनकर लंका को जाने के लिये तत्पर हुए। उसी समय राम ने हनुमान से कहा—हे वायुपुत्र ! सीता से कहना कि वह अपने प्राण न तजे क्योंकि यह देह मिलना अति दुर्लभ है और फिर उसमें जिनेन्द्र का धर्म और भी दुर्लभ है, इसलिये उससे कहना कि अपने चित्त को वश में रखे। उसके हृदय में विश्वास पैदा करने के लिये यह मेरी मुद्रिका ले जाओ और उससे चूड़ामणि ले आना।

हनुमान राम का यह सन्देश ले अपने विमान पर चढ़ कर लंका को चल दिये। रास्ते में अपने मामा राजा महेन्द्र का नगर एक पर्वत पर स्थित देखा। अपने मामा से हनुमान क्रुद्ध थे क्योंकि उसने उनकी माता का अपमान किया था, इसलिये उन्होंने उसके गर्व को नष्ट करने के लिये उससे युद्ध किया। युद्ध में राजा महेन्द्र अपने पुत्र-सहित पराजित हुए। राजा ने हनुमान की बहुत प्रशंसा की, तब हनुमान ने भी अपनी बाल-बुद्धि से जो अविनय किया था उसके लिये मामा से क्षमा माँगी और राम तथा सुग्रीव का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने मामा को किष्किन्धापुरी राम के पास भेज दिया और कहा कि मैं लंका होकर आता हूँ तब तक तुम भी राम की सेवा करना।

हनुमान आकाश-मार्ग से फिर आगे बढ़े। मार्ग में दीपमुख नामक नगर मिला। इस नगर से दूर एक सघन वन था, जिसमें अनेक प्रकार के भयानक जीव-जन्तु निवास करते थे। उस वन में ही दो चारणमुनि अष्ट दिन का कायोत्सर्ग किये खड़े थे और वहाँ से चार कोस की दूरी पर तीन कन्यायें खड़ी थीं जो श्वेत वस्त्र पहने थीं और जिनके सिर पर जटायें थीं। उस वन में आग लग गई। दोनों मुनि वृक्ष की तरह अटल खड़े रहे। हनुमान यह देखकर व्याकुल हो गये। उन्होंने समुद्र का जल लेकर मूसलाधार पानी बरसाया। सारी पृथ्वी जलमय हो गई। यह देखकर तीनों कन्यायें उस स्थान पर आईं जहाँ हनुमान उन दोनों मुनियों की पूजा कर रहे थे। उन कन्याओं ने हनुमान की पूजा की और कहा—हे तात ! हमारे ही कारण दुष्ट अंगारक ने इस वन में आग लगाई है। हम दीपमुख नामक नगर के गन्धर्वराजा की तीन कन्यायें हैं। अष्टांग निमित्त के वेत्ता ऋषि ने पिता जी से कहा है कि साहसगति को युद्ध में मारने वाला ही हमारा पति होगा। यह दुष्ट अंगारक हमको वरना चाहता है। हम यहाँ वन में अनुगामिनी नामक विद्या की साधना करने आई हैं जिससे साहसगति के मारने वाले को शीघ्र देखें। इस दुष्ट ने हमारे काम में विघ्न डालने के लिये ही इस वन में आग लगाई है।

हनुमान के आने का समाचार सुनकर गन्धर्वराज उनके पास आया, तब हनुमान ने राम का सारा वृत्तान्त उसे सुनाया। गन्धर्वराज अपनी पुत्रियों के साथ

किष्किन्धा पुरी राम के पास चला गया। वहाँ उसने अपनी पुत्रियों का पाणिग्रहण राम के साथ कर दिया।

अब हनुमान अपनी सेना-सहित त्रिकूटाचल पर्वत पर आये। वहाँ मायामयी मन्त्र के प्रभाव से उनकी सेना आगे न बढ़ सकी। हनुमान ने पृथुमन्त्री से पूछा। उसने उत्तर दिया—हे देव ! यह लंका का कोट विरक्त स्त्री के मन के समान दुष्प्रवेश है। इसमें देवता भी प्रवेश नहीं कर सकते हैं। इसके अग्रभाग में हजारों माया-मयी सर्प हैं, जो कोई इस कोट में प्रवेश करना चाहता है उसे वे सर्प इस प्रकार आसानी से खा जाते हैं जैसे मेढकों को। हनुमान ने सोचा कि राक्षसों के राजा ने इस मायामयी कोट की रचना की है, अब मुझे इसके गर्व को नष्ट करना चाहिये। उन्होंने अपनी सेना को तो आकाश में ही छोड़ दिया और स्वयं विद्यामयी बख्तर पहन कर हाथ में गदा ले मायामयी कोट के भीतर घुसने लगे। वे उसमें इस प्रकार घुस गये जैसे राहु के मुख में चन्द्रमा घुस जाता है। उन्होंने उस कोट को तोड डाला और सारी मायामयी विद्या को नष्ट कर डाला। जब यह कोट टूटा तो प्रलयकाल के मेघ के समान घोर शब्द हुआ। कोट का अधिकारी वज्रमुख यह देखकर क्रुद्ध हो हनुमान को मारने के लिये दौड़ा। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। हनुमान ने सूर्य से भी अधिक ज्योतिर्मयी अपने चक्र से वज्रधर का सिर काट डाला। बाकी के योद्धा यह देखकर भाग गये।

अपने पिता का मरण सुन वज्रमुख की पुत्री लंकासुन्दरी क्रुद्ध होकर हनुमान को मारने को दौड़ी। वह अनेक कठोर शब्द हनुमान से कहने लगी। दोनों में परस्पर युद्ध हुआ। लंकासुन्दरी ने हनुमान पर विजय पाई परन्तु वह काम के बाणों से बुरी तरह पीड़ित हो गई। पवनपुत्र भी उसके ऊपर मोहित हो गये। लंकासुन्दरी ने बाण मे लगाकर एक प्रेमपत्र हनुमान के पास भेजा। हनुमान लंकासुन्दरी से इसी प्रकार मिले जैसे काम रति से मिलता है। उन्होंने पिता की मृत्यु पर शोक करती लंकासुन्दरी को समझा-बुझा कर शान्त किया। रात्रि-भर हनुमान लंकासुन्दरी के पास रहे। प्रातःकाल वे चलने लगे तब लंकासुन्दरी ने कहा—हे देव ! आप लंका न जाओ क्योंकि रावण सारा हाल सुनकर आप पर क्रुद्ध होगा।

तब हनुमान ने राम का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और कहा—मैं तो अपने नाथ की महा पतिव्रता स्त्री सीता को देखने जा रहा हूँ। वह हमारी माता के समान है। मैं जाकर रावण को समझाऊँगा जिससे वह उसको छोड़ दे।

इसके बाद हनुमान लंका नगरी में पहुँचे। पहले वे विभीषण के मन्दिर में गये। वहाँ उन्होंने विभीषण से रावण को समझाने के लिये कहा कि परस्त्री को इस तरह रखना राजा की मर्यादा के विरुद्ध है।

विभीषण ने कहा, मैंने भाई को बहुत समझाया लेकिन वह नहीं मानता है। जिस दिन वह सीता को लाया था उसी दिन से हमसे बात नहीं करता है फिर भी एक बार मैं और कहूँगा। आज ग्यारहवाँ दिन है; सीता निराहार है, वह जल तक नहीं पीती, परन्तु रावण को काम से विरक्ति नहीं होती है।

सीता के निराहार रहने की बात सुनकर हनुमान का हृदय दुःख और दया से भर गया। वे सीता को देखने प्रमद नामक उद्यान में गये। वहाँ सीता निरन्तर अश्रु बहाती हुई अपना मुख नीचा किये अत्यन्त दीन अवस्था में बैठी थी। हनुमान ने श्रीराम की मुद्रिका उसके पास डाली। सीता उसे देखकर एक साथ हर्षित हो उठी। सीता की प्रसन्नता का समाचार राक्षसियों ने मन्दोदरी के पास भेज दिया। मन्दोदरी आकर कहने लगी—हे बाले ! आज तू प्रसन्न हुई, तूने हम पर बड़ी कृपा की है। अब लोक के स्वामी रावण को अंगीकार कर लो।

यह सुनकर क्रोध में सीता बोली—हे खेचरी ! आज मेरे पति का समाचार आया है इसलिये मैं प्रसन्न हूँ।

सीता हनुमान से कहने लगी—हे भाई ! मेरे पति की मुद्रिका लाने वाले तुम कौन हो, और कहाँ हो, शीघ्र आकर मुझे दर्शन दो।

हनुमान सीता के सामने प्रकट हो गये। उन्हें देखकर रावण की स्त्री मन्दोदरी आदि दूर से ही हाथ जोड़कर सीता को शीश नवाकर नमस्कार करने लगीं। हनुमान ने राम का सारा सन्देश सीता को कह सुनाया। सीता ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—मेरे नाथ अभी तक जीवित हैं या परलोक सिधार गये, या जिन-मार्ग का अनुसरण करते हुए सकल परिग्रह को त्याग कर तप करने चले गये ? हे हनुमान ! मुझसे सारी बात बताओ कि तुम्हारा और उनका मिलन कैसे हुआ ?

हनुमान ने सारी कथा कह सुनाई। सीता वायुपुत्र के पराक्रम की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने लगी। यह सुनकर मन्दोदरी भी बोली—हे जानकी ! भरत-क्षेत्र में इस वीर के समान कोई नहीं है। यह महासुभट पवन तथा अञ्जनी का पुत्र और रावण का भानजा जमाई है। कई बार यह रावण का युद्ध में सहायक बना है। चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसमा इसकी स्त्री है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि यह वीर भूमि-गोचरियों का दूत बनकर आया है।

हनुमान ने कुछ कटु शब्द मन्दोदरी से कहे। मन्दोदरी ने भी अपने पति के अद्भुत पराक्रम का बखान करके कहा—हे पवनपुत्र ! तेरी मृत्यु निकट आ गई है जो तू उन मतिमूढ़, कृतघ्न, भूमिगोचरियों का सेवक बना है। तू मेरे पति के पराक्रम को भूल गया है।

इस पर सीता क्रुद्ध होकर बोली—हे मन्दबुद्धि ! तेरे पति का क्या पराक्रम

है। मेरे पति राम-लक्ष्मण सहित शीघ्र समुद्र पार करके आयेंगे, तब तू अपने पति को युद्धस्थल में मरा हुआ देखेगी।

यह सुनकर मन्दोदरी के साथ रावण की १८,००० रानियाँ सीता के ऊपर झपटीं, परन्तु हनुमान ने उन्हें बीच में ही रोक लिया। तब अपमानित होकर सब रानियाँ अपने पति रावण के पास गईं। उनके पीछे हनुमान ने सीता से भोजन करने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा—हे देवि! यह सागरान्त पृथ्वी श्री रामचन्द्र जी की है, इसलिये यहाँ का अन्न उनका ही है; वैरी का नहीं है।

सीता अपने पति का कुशल समाचार सुनकर अन्न ग्रहण करने को राजी हो गईं। हनुमान ने ईरा नामक एक कुलपालिका को श्रेष्ठ अन्न लाने की आज्ञा दी। ईरा चार मुहूर्त में ही सर्वसामग्री ले आई। उसने पहले तो दर्पण के समान पृथ्वी को चंदन से लीपा और सुवर्ण के पात्रों में भोजन निकाल लाई। कई पात्र घृत से भरे थे। कई कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल चावलों से भरे थे। कई पात्र दाल से भरे थे। और भी नाना प्रकार के व्यंजन दूध, दही वहाँ सीता के लिये उपस्थित थे। सीता ने अपने स्वामी श्रीराम का हृदय में स्मरण कर भोजन किया। तब हनुमान कहने लगे–हे पतिव्रते! हे कुलभूषणे! मेरे कंधे पर चढ़कर समुद्र से पार चलो। मैं शीघ्र ही तुम्हें श्रीराम से मिलाऊँगा।

सीता ने कहा—हे भाई! पति की आज्ञा के बिना जाना उचित नहीं है क्योंकि यदि राम ने पूछा कि तुम बिना बुलाये क्यों आईं, तो मैं क्या जवाब दूँगी। अब तुम शीघ्र यहाँ से जाओ, क्योंकि रावण ने सारे उपद्रव का हाल सुन लिया होगा।

सीता ने कई रहस्य की बातें हनुमान से कहीं और अपने सिर से उतारकर चूड़ामणि उन्हें दे दी। वे रुदन करती हुई कहने लगीं—हे भाई! श्रीराम से कहना कि आपकी कृपा मुझ पर है, फिर भी आप अपने प्राणों की रक्षा करना और ऐसा यत्न करना जिससे हमारा मिलाप हो।

हनुमान सीता को धैर्य्य बँधाकर तथा उसके हृदय में पूरी तरह विश्वास जमाकर वहाँ से चल दिये। प्रमदवन की स्त्रियाँ आश्चर्य में भरकर हनुमान के बारे में बातें करने लगीं। उनकी बातें सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर अपने योद्धाओं को आज्ञा दी कि इस दुष्ट विद्याधर को मार डालो। वे महानिर्दयी किंकर वन में आये। हनुमान ने आकाश में जाकर उनको अनेक भयंकर रूप दिखाये। वे सब वीर राक्षस डरकर भाग गये। शक्ति, तोमर, खड्ग, चक्र, गदा, धनुष इत्यादि अस्त्र-शस्त्रों को लेकर कुछ योद्धा और आये। हनुमान ने वृक्ष और शिलाओं को उनके ऊपर फेंका। बहुतों को मुक्के और लातों से मार डाला। इस तरह क्षण-भर में वह सारी सेना नष्ट हो गई। हनुमान ने लंका के तथा प्रमद-वन के सब ऊँचे-ऊँचे महलों को नष्ट

कर डाला। बाजारों को ऐसा कर दिया मानो वह रणभूमि हो। उन्होंने हजारों राक्षसों को मार डाला। चारों तरफ़ नगर में हाहाकार मच गया। उसी समय मेघवाहन अपनी सेना ले आया, उसी के पीछे इन्द्रजीत आ गया। हनुमान का उससे युद्ध हुआ। इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपाश में बाँध लिया और नगर में ले आया।

रावण ने हनुमान को लोहे की साँकल से बँधवा दिया और कहने लगा—इस दुष्ट को इसके अपराधों के बदले में मार देना चाहिए।

उस समय सभा में सब माथा पीट-पीट कर कहने लगे—हे हनुमान ! जिसके प्रसाद से तुझे पृथ्वी-भर में ऐसी प्रभुता प्राप्त हुई है, ऐसे स्वामी को छोड़कर तू भूमिगोचरियों का दूत होकर यहाँ आया है। तू कृतघ्न है, क्योंकि रावण की दी हुई कृपा को तू भूल गया है और भिखारी की तरह फिरते उन निर्धन भूमिगोचरियों का सेवक बन गया है। तू पवन का पुत्र नहीं है, किसी और ने तुझे उत्पन्न किया है। तू राजद्वार का द्रोही है इसलिये वध किये जाने योग्य है।

तब हनुमान हँसकर कहने लगे—हे रावण ! तेरी दुर्बुद्धि से तेरा नाश समीप है। राम लक्ष्मण-सहित एक विशाल सेना लेकर आवेंगे, उनसे तेरे विनाश को कोई नहीं बचा सकता। सज्जनों के उपदेशों को तू नहीं मानता है इसलिये जैसा भवितव्य है वैसा ही होगा। विनाशकाल आने पर बुद्धि का अपने-आप नाश हो जाता है। हे रावण ! तू रत्नश्रवा राजा के कुलक्षय-स्वरूप नीच पुत्र पैदा हुआ है। तेरे कारण ही यह राक्षसों का वंश नष्ट हो जायगा।

हनुमान के ये दुर्वचन सुनकर रावण क्रोध से लाल होकर बोला—यह पापी, दुष्ट, वाचाल मृत्यु से भी नहीं डरता है। इसके हाथ-पाँव-ग्रीवा सब लोहे की साकलों से बाँधकर इसे सारे नगर में घुमाओ, जिससे सब इसको धिक्कारें, बालक और श्वान इसके ऊपर धूल उड़ावें। इसको हर तरफ़ से दुःख दो।

यह समाचार सुनकर सीता को बड़ा दुःख हुआ, तब पास बैठी वज्रोदरी ने कहा—हे देवी ! वृथा क्यों शोक करती है, देखो, वह हनुमान तो साँकल तोड़ कर आकाश में उड़ा चला जा रहा है।

तब सीता का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। वह हनुमान को अनेक प्रकार से परोक्ष आशीष देने लगी। हनुमान लंका से लौटकर किष्किन्धापुरी आ गये।

× × ×

उपर्युक्त जैन-कथा में लंका-दहन का वर्णन नहीं है बल्कि हनुमान द्वारा लंका के उजाड़े जाने का ही वर्णन है। इसके अलावा अन्य रामकथाओं से इसमें घटनाओं का भी काफ़ी अन्तर है। हमें इसमें जैनों का अहिंसा का सिद्धान्त विशेषरूप से मिलता है जो ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई भगवान् राम के प्रति मर्यादा का उल्लंघन करके कथा को जैन विचारधारा का प्रतिपादन करने के लिए आगे बढ़ा ले गया है।

जैन-कथाकार ने यद्यपि राम और विद्याधरों के बीच स्वामी तथा सेवक के सम्बन्ध को ही चित्रित किया है लेकिन उसने राम के अलौकिक रूप की रचना करके किसी प्रकार की भक्ति या दासत्व की मर्यादा नहीं बाँधी है। जैन-कथा में लंकापति रावण के व्यक्तित्व का भी निष्पक्ष लेखनी से चित्रण किया गया है, भगवान् राम के सामने उसे एक तिनके के समान नहीं माना गया है।

जैन-कथा में अनेक चमत्कार भी हैं लेकिन इसके अनुसार हनुमान को एक बन्दर नहीं माना गया है, न उसकी पूँछ का कहीं वर्णन आता है। यह जैन-कथाकारों का कथा के औचित्यीकरण (Rationalisation) का प्रयत्न ही मालूम होता है। इसके अलावा सब पात्रों को जिनशासन के अन्तर्गत दिखाना तो जैन-कथा की पहली विशेषता है। उपर्युक्त कथा में रामायण के पात्रों के आपसी सम्बन्ध बड़े विचित्र से दीखते हैं जैसे हनुमान का सुग्रीव और खरदूषण का जमाई होना, खरदूषण का रावण का बहनोई होना इत्यादि। जैन-कथाकार ने सम्भवतया इस प्रकार राक्षस और वानर जाति के सम्बन्धों को दिखाया है।

मूल-रूप में देखा जाय तो 'जैन पद्मपुराण' की यह कथा अन्य रामकथाओं पर ही आधारित है। 'वाल्मीकीय रामायण' के पश्चात् यह जैनों का कथा को अपने सम्प्रदाय के रंग में रंगने का प्रयास मालूम होता है। यह जैनों में ब्राह्मणों के दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया ही थी जो कथा में इतना भीषण परिवर्तन ले आई।

लंका-दहन से रावण-वध तक

हनुमान समुद्र लांघकर लंका से दूसरी पार आ गये और उन्होंने सारा समाचार वानरों को सुना दिया। वानरों ने बड़ी उत्सुकता से वह समाचार सुना। यह सुनकर अंगद हनुमान के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे—हे वानर भाइयो ! क्यों न हम राक्षसों का नाश करके सीता जी को श्रीराम के पास ले जायें ? वानर इस बात पर राजी नहीं हुए क्योंकि यह श्रीराम की प्रतिज्ञा और आज्ञा के विरुद्ध बात थी। अब सभी वानर हर्षित हो सुग्रीव के पास आये। पहले तो उन्होंने प्रसन्नता में किल्लोल करते हुए मधुवन को उजाड़ दिया परन्तु इस पर सुग्रीव प्रसन्न ही हुए; क्योंकि हनुमान सीता का पता ले आये थे। हनुमान ने सीता की सारी अवस्था तथा उसकी सारी परिस्थिति राम को सुना दी, इसके साथ सीता के द्वारा दी हुई चूड़ामणि राम को देकर उन्होंने सीता का सारा सन्देश उन्हें कह सुनाया राम के नेत्रों से उस चूड़ामणि को देखकर आंसू गिर पड़े। उन्होंने हनुमान की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और उन्हें उत्तम कोटि का सेवक बताते हुए कहा—हे वीर ! तुम्हारे इस उपकार के लिए मैं सदा ऋणी रहूँगा।

अब राम मन में कुछ सोच-विचार कर सुग्रीव से बोले—हे भाई ! सीता का पता तो लग गया, पर समुद्र की ओर देखकर मेरा मन निराश हो गया है। दुःख से पार होने योग्य समुद्र के दक्षिण किनारे पर ये वानर किस तरह पहुँचेंगे ? यद्यपि मैंने सीता का समाचार पा लिया है तथापि वानरों को समुद्र पार पहुँचाने के लिये क्या किया जाय ?

यह कहकर शोक से पीड़ित श्री रामचंद्र हनुमान की तरफ देखकर कुछ सोचने लगे। रामचन्द्र को इस प्रकार (शोकपीड़ित देखकर वानरेन्द्र सुग्रीव बोले—हे वीर ! किसी असमर्थ साधारण मनुष्य की तरह आप क्यों शोक कर रहे हैं। ऐसा शोक न कीजिये। सन्ताप को ऐसे छोड़ दीजिये जैसे कि कृतघ्न मित्रता को त्याग देता है। हे राघव ! आपके सन्ताप का मैं कोई कारण नहीं देखता। आपने सीता का पता पा लिया और शत्रु के निवासस्थान का भी ठिकाना जान लिया। आप तो बुद्धिमान, शास्त्रज्ञ और पण्डित हैं, इसलिये अमंगल रूप बुद्धि का इस तरह त्याग कर दीजिये जिस तरह आत्मज्ञ मनुष्य मोक्ष में बाधा करने वाली बुद्धि को छोड़ देता है।

हे राघव ! हम लोग बड़े-बड़े ग्रहों से भरे इस समुद्र को लांघ और लंका पर चढ़ाई कर आपके शत्रु को अवश्य मारेंगे। देखिये, उत्साहित दीन और शोक से घबराये मनुष्य के सब काम बिगड़ जाते हैं। इससे वह दुःखी होता है। ये सब शूरवीर वानर-सेनापति आपके अभीष्ट के लिये इतने उत्साहित हो रहे हैं। इनके हर्ष से मेरा ज्ञान और तर्क दृढ होता है कि मैं पराक्रम से शत्रु को मारकर सीता को अवश्य पाऊँगा। आप भी ऐसा कीजिये कि जिससे यहाँ पर पुल बांधा जाय। इस भयंकर समुद्र को बिना पुल बांधे, पार करना देव और दानव के लिये भी कठिन है, दूसरे की तो बात ही क्या है। यहाँ पुल बँधने भर की देर है सेना तो चटपट पार उतर जायगी और जब सेना पार हो गई तो अपनी जीत ही समझो।

हे राजन ! यह सर्वनाशी कायर बुद्धि व्यर्थ है क्योंकि शोक मनुष्य की वीरता को खींच लेता है इसलिये हे महाप्रज्ञ ! इस समय शूर मनुष्य को जो करना उचित है उसी को कीजिये। आप अपने तेज का सहारा लीजिये। देखिये, आप जैसे महात्मा और शूर मनुष्यों के लिये चाहे अभीष्ट वस्तु का नाश हो अथवा विध्वंस, शोक, सर्वनाशक है। आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्वों को जानने वाले हैं; अतएव मेरे समान मन्त्रियों की सहायता से शत्रु का नाश करना ही चाहिये।

हे राघव ! मैं तो तीनों लोकों में कहीं भी ऐसे वीर मनुष्य को नहीं देखता जो आपका युद्ध में सामना कर सके। इस समय आपको इस घोर समुद्र के लाँघने के विषय में हमारे साथ सूक्ष्म बुद्धि से विचार करना चाहिए।

'वाल्मीकीय रामायण' के उपर्युक्त कथन में भी पूर्व कथनों की तरह राम का मानव-रूप ही स्पष्ट झलकता है। इसमें सुग्रीव एक मित्र की तरह राम के दुःखी हृदय को सन्तोष देते हैं। उनके कथन में ऐसा कहीं नहीं झलकता जैसे मानो वे यह जानते हुए कि राम भगवान् स्वरूप हैं, उन्हें कुछ उपदेश की बातें कह रहे हों और अगर इस प्रकार की चेतना सुग्रीव के मस्तिष्क में होती तो अवश्य वह भक्ति के रूप में उक्त कथन में झलकती। उस समय सुग्रीव मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् की मर्यादा के विरुद्ध उनसे यह नहीं कह सकते थे कि हे राम ! आप एक असमर्थ साधारण मनुष्य की तरह शोक क्यों कर रहे हैं, देखो, उत्साहित, दीन और शोक से घबराये मनुष्य के सारे काम बिगड़ जाते हैं इसलिये हे राजन ! यह सर्वनाशिनी कायर बुद्धि छोड़ दो।

अन्त के पैरा में सुग्रीव ने राम को तीनों लोकों में अविजित बताया है लेकिन यह बात उनके अवतार-स्वरूप को व्यक्त न करके, उनके पराक्रम के बारे में कवि की अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा सुन्दर कल्पना है। सुग्रीव ने बालि-वध के समय श्री राम का अतुल पराक्रम देखा था इसलिये उनके मुख से इस तरह की अतिशयोक्ति निकलना कोई बड़ी बात नहीं थी।

'रामचरित मानस' में श्रीराम के इस तरह असहाय की तरह विलाप करने का प्रसंग नहीं है। उन्होंने तो स्वयं उतावले होकर सुग्रीव से कहा :

अब विलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥

'अध्यात्म रामायण' में अति संक्षिप्त साररूप में 'वाल्मीकीय रामायण' का ही प्रसंग है लेकिन उसमें सुग्रीव के इस तरह के उपदेशात्मक कथन का उल्लेख नहीं है; उसमें सुग्रीव राजा राम को कायर बुद्धि रखने वाला, असहाय और असमर्थ की तरह संताप करने वाला नहीं कह पाये हैं।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में भी राम के समुद्र की विशालता देखकर शोक करने का उल्लेख नहीं है। वे तो केवल सुग्रीव से उस दुस्तर समुद्र को पार करने की तरकीब पूछते हैं।

यह स्पष्ट करता है कि 'वाल्मीकीय रामायण' की कथा को भी जो अपने मूल रूप से काफी विकृत और अलौकिक चमत्कारों से पूर्ण हो चुकी है, परवर्ती कथाकारों ने अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के अनुसार बदला, उसको खण्ड-भण्ड (distort) किया जिससे परवर्ती रामायणों में रामकथा अपना वास्तविक ऐतिहासिक स्वरूप खो कर पूरी तरह से भक्तियुक्त चमत्कार के स्वरूप में रह गई है।

सुग्रीव का कथन सुनकर श्रीराम के हृदय का सन्ताप नष्ट हो गया। उन्होंने हनुमान से लंका के बारे में तथा राक्षसी सेना के बारे में पूछा। हनुमान ने लंकापुरी का पूरा विवरण राम को सुनाया।

'रामचरित मानस' में भगवान् राम ने हनुमान से लंका का विवरण नहीं पूछा है, सम्भवतया भगवान् होने के नाते ही उन्होंने शत्रु के बारे में इतनी जाँच-पड़ताल नहीं की जो एक विपक्षी योद्धा को युद्ध की दृष्टि से आवश्यक होती है। मगर किसी कथा में इस प्रकार की कमी रह जाती है तो उसमें अवश्य ही अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है, और उससे चरित्रों का भी अपने मानवीय रूप में क्रमबद्ध विकास नहीं हो पाता। 'मानस' में इस तरह की अस्वाभाविकता को राम के अलौकिक रूप ने कई स्थानों पर ढक लिया है।

इसके बाद वानर-सेना का समुद्र-तट की ओर जाने का वर्णन है जो 'वाल्मीकीय-रामायण' में अन्य रामायणों से अधिक चित्रमयी और सजीव है। समुद्र का वर्णन भी केवल 'वाल्मीकीय रामायण' में ही सुन्दर चित्रमयी कल्पना के साथ चित्रित है।

'वाल्मीकीय रामायण' में उल्लेख है कि समुद्रतट पर आकर राम को सीता की फिर याद आई और वे वहीं विलाप करने लगे—हे लक्ष्मण ! देखो समय ज्यों-ज्यों बीतता है, वैसे-वैसे मनुष्य का शोक घटता जाता है; परन्तु सीता को न देखने से मेरा शोक तो दिन-दिन बढ़ता ही जाता है।

हे लक्ष्मण ! मुझे यह दुःख नहीं है कि मेरी प्रिया दूर है, और न यही दुःख है कि वह हर ली गई है; मैं तो यही सोचता हूँ कि उसकी उम्र बीती जाती है। हे पवन ! तुम उधर को ही बहो जिधर मेरी प्रिया है और उसके शरीर को छूकर मेरे शरीर का स्पर्श करो। मेरे शरीर में तुम्हारा स्पर्श ऐसा होगा जैसा गरमी से व्याकुल मनुष्य की दृष्टि से चन्द्रमा का समागम होता है।

हे लक्ष्मण ! हरण-काल में मेरी प्रिया ने, 'हा नाथ', कहा था; यह वचन मेरे शरीर को पिये हुए विष की तरह भस्म कर रहा है। उसके वियोगरूपी ईंधन से युक्त और उसकी चिन्तारूपी ज्वाला से प्रज्ज्वलित यह कामरूपी अग्नि रात-दिन मुझे जला रही है।

लक्ष्मण ! तुम यहीं रहो, मैं इस समुद्र में गोता मारकर सोऊँगा क्योंकि यह प्रज्ज्वलित काम मुझे जल में तो नहीं जलावेगा, भला मुझ कामी के लिये इतना ही बहुत है कि मैं और सीता एक ही पृथ्वी पर सोते हैं। जिस तरह पानी वाली क्यारी के पास की बिना पानी की क्यारी उसकी ठण्डक से अपने अन्न का पोषण करती है उसी प्रकार उसे जीती-जागती सुनकर मैं भी जीता हूँ।

लक्ष्मण ! मैं शत्रु को मारकर उस सुश्रोणी, कमलनयनी सीता को—समृद्ध राज्यलक्ष्मी के तुल्य—कब देखूँगा और मैं उसके बिम्बोष्ठ तथा कमल के समान मुँह को हाथ से ऊँचा करके ऐसे कब पीऊँगा जैसे रोगी रसायन को पीता है। उस हसती हुई के हिले-मिले और तालफल के तुल्य बड़े-बड़े स्तन काँपते हुए मेरे शरीर का स्पर्श कब करेंगे ? हा ! वह सुन्दर नेत्रों वाली राक्षसियों के बीच किस प्रकार रहती होगी तथा मेरे ऐसे नाथ के रहने पर भी अनाथ की तरह अपना कोई रक्षक नहीं पाती होगी। हा ! वह तो पहले से ही दुबली थी पर अब शोक तथा उपवास के कारण बिल्कुल दुबली हो गई होगी। क्या कहें यह काल की गति है।

हे लक्ष्मण ! रावण के हृदय को बाणों से विदीर्ण करके मैं अपने मन का शोक दूर कर सीता को कब ग्रहण करूँगा। वह देवकन्या के तुल्य पतिव्रता सीता उत्कण्ठापूर्वक मेरे गले में लिपट कर आँखों से आनन्दाश्रु कब बहावेगी ?

उपर्युक्त वर्णन एक योद्धा की अपनी प्रिया के प्रति पूर्ण विलासप्रवृत्ति को व्यक्त करता है। इसमें राम काम से पीड़ित होकर सीता के लिए रोते हैं। इसमें राम की अलौकिकता के स्थान पर उनकी रति-सम्बन्धी वासनामयी भावना मिलती है। अन्य रामायणकारों ने तो इस वर्णन को अपनी रामायणों में स्थान ही नहीं दिया है। यह उनके भक्तियुक्त हृदय की कल्पना से परे है। राम के प्रति उनके दृष्टिकोण के अनुसार तो यह वर्णन किसी क्षेपक जोड़ने वाले के कुत्सित संस्कारों का ही परिचायक हो सकता है जिसके अन्तर में काम की घुटन हो लेकिन हम इसे त्रेतायुग के एक सामन्त के चरित्र का स्वाभाविक पक्ष ही मानते हैं। जो राम के दैवी स्वरूप के सामने इस सत्य

बुद्धि, दुष्टात्मा, और अत्यन्त कुबुद्धि हो। भला कहो तो सही कि संग्राम में राम के हाथ से छूटे हुए बाणों को कौन सहेगा ? वे बाण ब्रह्मदण्ड के तुल्य प्रकाशमान हैं, मृत्यु के समान ज्वालाधारी हैं और यमदण्ड के तुल्य हैं।

राजन् ! धन, रत्न, अच्छे-अच्छे आभूषण, अच्छे-अच्छे कपड़े और चित्र-विचित्र मणि आदि चीजों के साथ सीता देवी को राम के अधीन कर दो जिससे हम लोग शोकरहित होकर सुखपूर्वक लंका में रह सकें।

उपर्युक्त कथन के बारे में गम्भीरता से विचार करने पर मालूम होता है कि प्रत्यक्षरूप से विभीषण ने राम के अलौकिक रूप को नहीं माना है लेकिन फिर भी उनके पराक्रम के बारे में जो भी विभीषण ने कहा है क्या वह परोक्षरूप में राम की अलौकिक शक्ति की ही व्याख्या मानी जा सकती है ? उक्त कथन में विभीषण राम के साथ संघर्ष लेने में बहुत भयभीत मालूम होते हैं यद्यपि कभी भी सम्मुख होकर उन्होंने रामचन्द्र का पराक्रम नहीं देखा था। राम द्वारा खरदूषण की सेना के विनष्ट होने की बात वे सुन चुके थे और वे यह भी जानते थे कि वानर-साम्राज्य की बलशाली शक्ति उनके साथ है, उन्होंने वानर हनुमान का पराक्रम और अद्भुत साहस सामने देखा था, सम्भवतया इसीलिए वे राम के अतुल पराक्रम का अन्दाज लगाकर लंका तक राक्षसों के विनाश के बारे में भयभीत थे। दूसरे, उनकी प्रवृत्ति सदा से धार्मिक रही थी, वे राम को धर्मात्मा समझते रहे थे। वे मानते थे कि रावण ने उनके प्रति अन्याय किया है इसीलिए धर्म द्वारा अधर्म का अवश्यम्भावी विनाश जानकर भी वे अत्यधिक भयभीत थे। तीसरा तर्क है कि राम को अलौकिक शक्ति जानकर वे भयभीत थे कि तुच्छ मानव दैवीशक्ति पर कब विजय पा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाय तो पहले दोनों तर्क ही उचित जान पड़ते हैं और उनकी ही विशेष झलक उपर्युक्त कथन में मिलती है, कुछ लोग इसमें राम की अलौकिता को घटाने का प्रयत्न करते हैं जैसे राम के प्रति विभीषण ने कहा था कि महाबली और हजारों मस्तक वाले राम के वैर-रूप भयानक साँप से लिपटे हुए इस राजा को किसी तरह बचाओ।"'श्री रामचन्द्र के संग्राम में देवता लोग भी दाव पेंच भूल जाते हैं इत्यादि। वे कहते हैं कि भगवान् के लिये वेद में यही आया है— सहस्र शीर्षा पुरुषः"'। भगवान् के इसी रूप का प्रतिपादन विभीषण के मुख से हुआ है। हम इस सबको न मानकर इस कथन को लौकिक रूप में, राम के पराक्रम के प्रति की गई कवि की कल्पना का एक तुलनात्मक रूपकमयी स्वरूप मानते हैं जिसमें रावण के स्वरूप की तुलना में ही राम के वृहत् स्वरूप का वर्णन है। जहाँ रावण के पराक्रम के बारे में यह कल्पना है कि उसके दस सिर थे, उसी के समकक्ष राम के हजार मस्तकों तक की कल्पना की गई है। लेकिन यह राम के पराक्रम का रूपक ही है। इसके भी सारी बात इसी दृष्टिकोण के अर्न्तगत स्वयं स्पष्ट है।

'रामचरित मानस' में विभीषण का उक्त कथन स्पष्ट रूप में राम के अलौकिक रूप को लिये हुए है।

विभीषण रावण से कहते हैं :

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। ब्यापक अजित अनादि अनंता॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपा सिन्धु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। बेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता।

इसीलिए विभीषण रावण को सलाह देते हैं :

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥

प्रभु राम का क्या गुण है ?

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥

अन्त में उन्हीं परब्रह्म स्वरूप राम की भक्ति का उपदेश रावण को देते हुए विभीषण कहते हैं :

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥

'अध्यात्म रामायण' में भी कथाकार ने पहले तो 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार विभीषण के कथन को लिखा है लेकिन इसमें उसे यह सन्देह रह गया कि शायद रावण राम के अलौकिक रूप के बारे में स्पष्ट तौर से समझा है या नहीं तभी आगे विभीषण ने रावण से कहा—हे रावण ! राजा दशरथ के गृह में तुम्हारा काल उत्पन्न हुआ है और सीता ने हार करने वाली परमात्मा की शक्ति काली जनक की पुत्री हुई है। दोनों राम और सीता पृथ्वी का भार दूर करने के लिए पैदा हुए हैं। श्री राम सर्वदा साक्षात् प्रकृति से परे हैं। सब भूतों के बाहर और भीतर सब जगह समका रहो कर राम स्थिर हैं। नाम-रूप के भेद से तीनों रूप भी राम के ही हैं। जैसे नाना प्रकार के वृक्षों में एक ही अग्नि छोटे-बड़े काष्ठ के भेद से अलग-अलग प्रकार की अग्नियों को दिखाई पड़ती है वैसे ही परमात्मा राम भी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पंचकोषों के भेद से अलग-अलग दिखाई देता है। राम नित्य-युक्त हैं परन्तु माया के गुणों में प्रतिबिम्बित होकर काल, प्रधान, पुरुष और अव्यक्त इन भेदों से चार प्रकार के जाने जाते हैं।

उक्त कथन में वेदान्त दर्शन के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप की विवेचना की गई है और उसे श्री रामचन्द्र के साथ जोड़ा गया है। 'रामचरित मानस' की तरह

भक्ति का प्रचार इसमें नहीं मिलता बल्कि ज्ञानमार्गियों के लिए रामायण के बारे में एक आध्यात्मिक चेतना देना ही इसका उद्देश्य रहा है।

'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में रावण-विभीषण संवाद नहीं है और न कहीं इस तरह का आभास मिलता है कि विभीषण ने राम को दैवी शक्ति समझकर उनकी शरण ली थी।

'सूरसागर' की रामकथा में विभीषण ने राम के अलौकिक रूप का प्रतिपादन किया है। वे राम के बारे में रावण से कहते हैं :

ईस को ईस, करतार संसार को, तासु पद-कमल पर सीस दीजै।

'जैन पद्मपुराण' के अनुसार उपर्युक्त कथा में थोड़ा भेद है। इसमें राम के साथ विद्याधरों को रावण से अति भयभीत दिखाया गया है और उन्हें राम की अलौकिक शक्ति का भी परिचय जैन-कथा में नहीं है।

जब राम ने कहा कि सीता के भाई भामंडल को शीघ्र बुलाओ, हमको रावण की नगरी अवश्य जाना है, या तो जहाजों से समुद्र पार कर लेंगे या हाथों के बल पर तैर कर समुद्र को पार कर लेंगे। यह बात सुनकर सिंहनाद नामक विद्याधर बोला— हे राम ! आप चतुर महाप्रवीण होकर ऐसी बात मत कहो। हम तो आपके संग हैं परन्तु ऐसा काम करना जिससे सबका हित हो ! हनुमान ने जाकर लंका के वन उजाड़ डाले हैं और लंका में उपद्रव किया है इसीलिए रावण क्रुद्ध है। इसमें हमारी मृत्यु अवश्य है।

उसी समय जामवंत ने उसे इस कायरता पर फटकारा। अब सब लोग समुद्र-तीर पर आ गये। चारों तरफ शुभ-शकुन होने लगे। रास्ते में वेलंधर के समुद्रनामा राजा ने श्रीराम के एक उपकार के बदले अपनी सुशील गुणवती कन्या का पाणिग्रहण लक्ष्मण के साथ कर दिया। फिर सुवेल, हंसपुर के राजाओं को भी राम ने जीता था।

लंका में राम के समुद्र-तट पर सेना के सहित आने का समाचार पहुँच चुका था। लंकापति युद्ध के लिये तैयार करने लगा। उसी समय विभीषण वहाँ पहुँचे और रावण से कहने लगे—हे प्रभो ! तुम्हारी कीर्ति कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल, महाविस्तीर्ण, महाश्रेष्ठ इन्द्र के समान पृथ्वी पर फैल रही है उस परस्त्री के लिए क्यों क्षणमात्र में नष्ट करना चाहते हो।

इसलिये हे स्वामी ! हे परमेश्वर। हम पर प्रसन्न होकर सीता को राम के पास भेज दो। इसमें दोष नहीं है बल्कि गुण ही है। आप सुख से रहेंगे।

हे विचक्षण ! जो रत्नाकर-रूप महारत्न हैं वे सब तुम्हारे स्वाधीन हैं और जो मन यहाँ आते हैं, वे महापुरुष हैं, तुम्हारे ही समान हैं। अब तुम आपको उन्हें ... । सब प्रकार से अपनी वस्तु ही प्रशंसा के योग्य होती है, परवस्तु नहीं।

यह सुनकर रावण का पुत्र इन्द्रजीत विभीषण को कायर और मूढ़ कहकर कुछ कठोर वचन कहने लगा। उसे फटकारते हुए विभीषण बोले—रे पापी ! तू अन्यायमार्गी पुत्र-रूप में शत्रु है। यह स्वर्णमयी लंका लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से चूर्ण न हो जाय इससे पहले ही पतिव्रता सीता को राम के पास भेज देना चाहिये। राम के साथ बड़े-बड़े विद्याधरों के अधिपति सहायक के रूप में हैं। राक्षसरूपी सर्पों का बिल जो यह लंका है उसमें सीता विषनाशक जड़ी के समान है।

इस सबके अलावा सभी रामायणों में यह भी उल्लेख है कि रावण ने अपने सब मन्त्रियों से सलाह की कि वर्तमान परिस्थिति में क्या करना चाहिये। 'रामचरित-मानस' में मन्दोदरी द्वारा रावण को समझाने का भी उल्लेख है।

वह अपने पति से कहती है :

कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥

इसके अतिरिक्त उसने राम के अतुल पराक्रम का भी वर्णन किया परन्तु रावण उसकी वाणी सुनकर खूब हंसा और बोला :

सभय सुभाउ नारि कर साचा। मंगल महुँ भय मन अति काचा॥

'वाल्मीकीय रामायण' में वर्णन आता है कि कुम्भकर्ण ने भी रावण के परस्त्री-हरण के कृत्य को बुरा कहा था परन्तु बाद में वह राक्षस अपने भाई से सहयोग करने को तैयार हो गया था, विभीषण अन्त तक धर्म की मर्यादा पर अटल रहे। उसके असह्य वचनों से क्रुद्ध होकर रावण ने उससे अनेक कठोर वचन कहे। विभीषण आकाश-मार्ग से अपने चार सेवकों के साथ श्री रामचन्द्र के निकट आये। सभी रामायणों में वर्णन है कि पहले वानर, भालू आदि सभी उसे रावण की माया ही समझे। उनमें परस्पर इस बात पर विचार हुआ परन्तु फिर राम ने शरणागत की सहायता के अपने आदर्श को सामने रखते हुए विभीषण को बुलाने की आज्ञा दे दी।

जिस समय विभीषण राम से मिले हैं और उन्होंने जो शब्द कहे हैं उनमें कथाकारों के दृष्टिकोणों का वही भेद मिलता है जो विभीषण के उपर्युक्त कथन में मिला है। 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार विभीषण अपने अन्यायी और अधार्मिक भाई के शासन में पीड़ित होकर न्याययुक्त महाराज राम की शरण में आये थे। 'मानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' व अन्य रामकथाओं में विभीषण भगवान् राम की शरण में आये थे। मानस में विभीषण के इस कार्य को इसी प्रकार चित्रित किया गया है जैसे भक्त भगवान् के चरणों में जाते हैं। राम भी इस प्रसंग में भजन और भक्ति की महिमा का बखान करते हैं।

वानरों की विभीषण के बारे में शंका को दूर करते हुए राम कहते हैं :

कोटि बिप्र, बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

विभीषण पापी या कपटी नहीं है क्योंकि :

पापवंत कर सहज सुभाऊ । भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥

× × ×

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

विभीषण आकर श्री राम से कहते हैं :

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥

इसके बाद भी विभीषण ने भक्ति-भाव से श्री राम की महिमा गाई है ।

'अध्यात्म रामायण' में विभीषण ने सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान, परब्रह्म परमात्मा के रूप में ही श्री राम की महिमा गाई है । इसमें राम को साकार तथा निराकार-ईश्वर कहके वेदान्त दर्शन का पूरा सार उपस्थित किया गया है । अन्त में विभीषण ने राम के चरणों की भक्ति का वरदान-स्वरूप माँगी है ।

इसके बाद श्री राम ने विभीषण को उसी समय लंका का राजा घोषित कर दिया और इसे अपना अंग बना लिया । 'वाल्मीकीय रामायण' में विभीषण के शरण आने के बाद ही राम ने उससे लंका के बलाबल का ठीक-ठीक ब्योरा पूछा । हनुमान, सुग्रीव आदि ने समुद्र के पार जाने का उपाय पूछा । 'अध्यात्म रामायण' में भी भक्ति पर होते हुए विभीषण से किये गये इस प्रकार के प्रश्न का उल्लेख है लेकिन 'मानस' ने सर्वव्यापी परमात्मा राम ने यह प्रश्न विभीषण से नहीं पूछा बल्कि उन्होंने तो अन्त तक सगुण भक्ति का उपदेश दिया :

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ॥

तुलसीदास की कथा में श्री राम कभी भी राक्षसों की शक्ति की बाल-भर भी परवाह करते नहीं मिलते हैं और न उन्होंने कहीं उनके बलाबल को मालूम करने के लिए उत्सुकता दिखाई है ।

जैन-स्रोत के अनुसार वर्णन मिलता है कि विभीषण के कठोर वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर उसे मारने को अपनी तलवार निकाली, तब विभीषण भी वज्र के समान स्तम्भ उखाड़ कर रावण से युद्ध करने को खड़ा हो गया । यह देखकर मंत्रियों ने समझा-बुझा कर विभीषण को घर भेज दिया ।

रावण कहने लगे—यह विभीषण मेरे अहित में तत्पर है और दुरात्मा है, इसे मेरी नगरी से निकाल दो । मुझसे प्रतिकूल होकर यहाँ रहेगा या तो मैं इसे मार दूँगा या स्वयं मर जाऊँगा ।

विभीषण इस पर यह कह कर कि मैं भी रत्नश्रवा का पुत्र नहीं ...लंका से निकल गया । उसके साथ महा सामन्त और तीस अक्षौहिणी सेना थी जिसमें ६५६१००

हाथी, इतने ही रथ और १६६८३०० तुरंग, ३२८०५०० प्यादे थे। सभी नाना प्रकार के शस्त्रों और वाहनों से युक्त होकर श्री राम के पास चले।

विभीषण ने पहले विचक्षण नामक द्वारपाल को राम के पास सारा हाल कहने को भेजा। विचक्षण ने आकर विभीषण और रावण के सारे विरोध की बात राम से कह दी। श्री राम ने विभीषण को बुलाने की आज्ञा दी। विभीषण ने अति आदर-पूर्वक राम से विनती की—हे देव ! हे प्रभु ! निश्चय से इस जन्म मे आप ही मेरे प्रभु हो। श्री जिननाथ तो इस जन्म परभव के स्वामी और रघुनाथ इस लोक के स्वामी।

यह सुनकर श्री राम ने कहा—मैं तुझे अवश्य लंका का स्वामी बनाऊँगा।

उपर्युक्त जैन-कथा मे सबसे अलग एक बात मिलती है कि विभीषण के साथ मन्त्री तथा एक विशाल सेना भी गई थी। हमारा भी यही अनुमान है कि विभीषण केवल अपने चार रक्षको के साथ ही राम के पास नही गया होगा, बल्कि उसके साथ राक्षसो का वह वर्ग अवश्य साथ गया होगा जो धर्म में प्रवृति रखता था और रावण की निरंकुशता से पीड़ित था। विभीषण का शत्रु पक्ष मे जाना प्रत्यक्ष रूप में राक्षसों के एक समुदाय का रावण की शासन-नीति के विरुद्ध विद्रोह था, उस विद्रोह को लेकर कितने राक्षस उठे थे यह नही कहा जा सकता परन्तु जैनों का इस तरह कथा रचने का प्रयास औचित्यीकरण (Rationalisation) के आधार पर ही माना जा सकता है। सम्भव है उनमें परम्परा के रूप में कोई राम के बारे मे कथा इस रूप में शताब्दियों से प्रचलित हो रही हो। परवर्ती कथाकारों ने इसे भक्त और भगवान् के मिलन के स्वरूप में स्वीकार किया है।

× × ×

इसके पश्चात् सेतु बाँधने की कथा आती है। कथा प्रायः सभी जगह एक-सी ही है। केवल अन्तर यही है कि 'वाल्मीकीय रामायण' मे लक्ष्मण को अधिक धैर्यवान और गम्भीर बताया गया है। जब राम समुद्र पर कोप करते हैं तो लक्ष्मण उन्हें किसी तरह शान्त करने का प्रयत्न करता है। वे कहते हैं—हे महाराज ! इसके बिना भी आपका काम चल सकता है। देखिये, आप जैसे महापुरुष क्रोध के वश में नहीं होते। आप अच्छे व्यवहार की ओर दृष्टि दीजिये। 'रामचरित मानस' में इस तरह का संवाद नहीं मिलता। वहाँ तो तुलसीदास जी ने भगवान् राम की गरिमा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण को उतावला और स्वाभाविक रूप से क्रोधी स्वभाव का ही मानकर वर्णन किया है। वहाँ लक्ष्मण भी अपनी मर्यादा तोड़ कर यह कहने का साहस नहीं करता कि हे राम ! आप अच्छे व्यवहार की ओर दृष्टि दीजिये। इससे यही स्पष्ट होता है कि 'वाल्मीकीय रामायण' में कथाकार ने अलौकिक के भ्रम में न रहकर स्वाभाविक मानवोचित सम्बन्ध की ओर ही अधिक ध्यान रखा है।

जब राम के बाणों से त्राहिमाम् करता हुआ समुद्र आता है तो वह कहता है —हे राम ! आपने मुझ नीच के साथ उचित ही व्यवहार किया। क्यों ? इसके लिये तुलसीदास जी लिखते हैं :

प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥
ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी ॥

यहाँ तुलसीदास जी अपने सामन्ती-युग तथा अपने वर्ग के बन्धनों में रहकर शूद्र और नारी को ताड़ना के अधिकारी के रूप में लेते हैं। इस तरह के संकुचित बन्धनों में 'वाल्मीकीय रामायण' का कथाकार नहीं है।

इसके पश्चात् सेतु बाँधने के बारे में राम समुद्र से पूछते हैं तो समुद्र नल और नील के बारे में कहता है कि इन्हें ऋषि का वरदान है कि जो भी पत्थर वे पानी पर डालेंगे वह तैरने लगेगा। इस तरह वे मेरे ऊपर पुल बना सकेंगे। इस तरह की चमत्कारिक शक्ति का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' मे नहीं मिलता। वहाँ तो नल और नील को दो कुशल इन्जीनियर, (Engineers) के रूप में ही लिया गया है। यह बात उनकी पुल बाँधने की क्रिया से और भी स्पष्ट हो जाती है। वानरों के गण बड़े-बड़े वृक्षों की शाखायें व तने ले आ रहे थे। उन्हें नल और नील ने पहले पानी पर बिछा दिया और फिर उन पर पत्थर डालकर पुल का निर्माण किया। लकड़ी के ऊपर पत्थर रहने से डूब नहीं सकता। इससे स्पष्ट होता है कि 'रामचरित मानस' में केवल भगवान् राम के साथ ही इतने चमत्कार नहीं जुड़े हुए हैं, कथा को अलौकिक बनाने के लिये अन्य पात्रों का भी इस तरह का वर्णन हुआ है जो तुलसीदास जी की चमत्कारमयी वृत्ति को स्पष्ट करता है।

फिर सेतुबन्ध रामेश्वर अर्थात् शिव की स्थापना की कथा भी 'वाल्मीकीय-रामायण' में नहीं मिलती है। यह स्थल तुलसीदास ने स्वयं निर्माण किया है। इसके पीछे सबसे बड़ा रहस्य है कि तुलसीदास जी ने शिव के वेदसम्मत रूप को अधिक महत्ता देकर उन सभी समुदायों का विरोध किया है जो शिव को मानते थे लेकिन वेद और ब्राह्मण को स्वीकार नहीं करते थे। तुलसी कहते हैं :

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी ॥

इस चौपाई में श्री राम उनका मन्तव्य स्पष्ट कर देते हैं। यहाँ शिवद्रोही से उसका ही मतलब है जो शिव के वेदसम्मत रूप को नहीं मानता। इससे तुलसी ने उस मर्यादा की रक्षा करना चाहा जो ब्राह्मण द्वारा समाज में चली गई। जन-समुदाय को आग्रह किया कि यदि राम से प्रीत चाहते हों और अपनी मुक्ति का उपाय ढूँढना चाहते हों तो नाथयोगी, अघोरी, कापालिकों आदि पर से विश्वास हटाना

होगा और ब्राह्मण के उपास्य वेदसम्मत शिव की शरण आना होगा। और इसके फल-स्वरूप ब्राह्मण के वर्णाश्रम विधान को स्वीकार करना होगा। इस तरह तुलसी ने एक तरफ तो अपनी मर्यादा की स्थापना की और दूसरी ओर उन सभी आन्दोलनों को क्षति पहुँचाई जो विभिन्न संतों के नेतृत्व में निम्न वर्गों को लेकर उठे थे और एक ार तो उन्होंने युगों से चली आई ब्राह्मणों की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध आवाज उठा ो थी।

'वाल्मीकीय रामायण' में इस कथा के न होने का कारण यह भी हो सकता कि उस समय समाज में इस तरह की उथल-पुथल नहीं थी जो तुलसी के समय ी। वेद और ब्राह्मण के विरुद्ध इस तरह की आवाजें नहीं उठी थी। अब जब ये ांव इस तरह घोर अनर्थ फैलाने लगे तो तुलसी ने इसका उपाय निकाल लिया। स तरह समन्वय-मार्ग से समस्या का हल हुआ।

जब राम अपनी सेना-सहित लंका में पहुँच जाते हैं तो रावण अपने जासूस ेज कर उनकी सेना के बारे में पता लगवाता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में सेना का र्णन बड़े विस्तार से किया गया है। शंख, महौघ तथा समुन्द्रों में उसकी गिनती ोती है और अनेक पराक्रमी वानरों का सेनापतियों के रूप में वर्णन आता है। उनके ीच हनुमान का भी वर्णन आता है। वहीं उसके केशरीपुत्र की उदयाचल पर गिरकर ोड़ी दबने की कथा आती है जिससे उसका नाम हनुमान प्रचलित हुआ। 'रामचरित-ानस' में भी राम की विशाल सेना का वर्णन आता है, पर कथाकार ने इतने विस्तार ं जाने की आवश्यकता नहीं समझी है। क्योंकि भगवान् राम का गौरव तो स्वयं ड़ा था। साक्षात् परमेश्वर की शक्ति का सेना के आधार पर अंदाजा लगाना तो चित नहीं हो सकता है न?

'वाल्मीकीय रामायण' में एक और विचित्र घटना मिलती है। जब रावण को ाम की विशाल वाहिनी का पता चलता है तो एक बार तो वह मन में शंका करने गता है और सोचता है कि कहीं सीता वैसे ही हाथ से न निकल जाय, इसलिये वह मायावी द्वारा राम का कटा हुआ सिर और उनका ही धनुष लाकर सीता के ामने रखता है, जिन्हें देखकर सीता विलाप करने लग जाती हैं। रावण कहता है— े सीते! अब तो तुम्हारा पति युद्धभूमि में मारा गया। अब उसकी आशा छोड़कर ेरी पत्नी बन जाओ। इस पर सीता उस राक्षसराज को बुरा-भला कहती है और रोती जाती है। थोड़ी देर बाद यह सारी माया नष्ट हो जाती है। ज्योंही रावण अशोक वाटिका से जाता है उसी क्षण राम का कटा सिर और धनुष जाने कहाँ लोप हो जाते हैं। इसके बाद विभीषण की पत्नी सरमा जो अत्यधिक धर्मपरायणा थी सीता को सांत्वना देती है और उसे सब तरह के भय और कष्ट से मुक्त करती है।

इस घटना को तुलसीदास जी बिल्कुल ही छोड़ गये हैं। जहाँ तक हम समझते

हैं इसका कारण उनका भक्ति-भाव ही हो सकता है। पर वैसे इस कहानी से हमें यह आभास होता है कि राक्षसों में और असुरों में जादू-टोने तथा 'मैस्मरेजम' की-सी क्रियाएँ अवश्य प्रचलित रही होंगी क्योंकि इन सब चमत्कारों का औचित्यीकरण उसी आधार पर हो सकता है। आज तक भी इस तरह की मैस्मरेजम की क्रियाएँ कभी-कभी देखने में आती हैं। खैर।

इसके बाद 'रामचरित मानस' में मन्दोदरी-रावण-संवाद काफ़ी महत्वपूर्ण है जहाँ मन्दोदरी अपने पति के सामने राम के परमेश्वर-रूप का वर्णन करती है और सदा उनसे भय करने के लिये आगाह करती है। वह उन्हें हर तरह से समझाती है और यही सलाह देती है कि वे सीता को लौटा कर राम से मित्रता कर लें। 'वाल्मीकीय रामायण' में राम के इस परमेश्वर-रूप का इस विस्तार के साथ वर्णन नहीं है। रावण के पत्नी के स्थान पर उसकी माँ के बारे में आता है कि उसने उसे समझाने का यत्न किया था लेकिन सत्ता के मद में चूर रावण पर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ। 'वाल्मीकीय रामायण' में माल्यवान आदि भी रावण को समझाते हैं और यहाँ तक कहते हैं कि जिन राम ने समुद्र का पुल बाँध लिया, जिनके एक दूत ने आकर लंका को भस्म कर दिया। वे राम मनुष्य नहीं हो सकते। वे अवश्य विष्णु के रूप हैं। इससे यही मालूम होता है कि राम के इस तरह के आश्चर्यजनक कार्य देखकर ही माल्यवान के हृदय में यह बात आई। भक्त-रूप में उसने यह कभी नहीं सोचा था। पर 'रामचरित मानस' में जो भी रावण को सलाह देते हैं वे सभी भक्ति-रूप में सलाह देते हैं और जब वे अपनी इच्छा के प्रतिकूल रणभूमि में जाते हैं तो इसी उद्देश्य से जाते हैं कि चलो, भगवान् के हाथों मरकर स्वर्ग तो मिलेगा। दोनों रामायणों में इस अन्तर से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि राम-रावण-युद्ध 'वाल्मीकीय रामायण' में अधिक स्वाभाविक रूप से चला है। उसमें राम और रावण दो सैनिकों के रूप में युद्धस्थल में अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर उतरते हैं। रावण जो भी जासूसी तरीके, और अन्य तरीके काम में लाता है वे सब स्वाभाविक मालूम होते हैं। इस तरह कथा में एक गति बनी रहती है परन्तु तुलसीदास जी इस गति के बीच पाठक को बार-बार राम के अलौकिक रूप की झाँकी कराते रहते हैं इससे राम-रावण-युद्ध एक खिलवाड़ या भगवान् की लीला-मात्र रह जाता है। इससे भक्त का हृदय मोहित अवश्य हो जाता है पर साधारण पाठक को स्वाभाविक घटनाओं के उतार-चढ़ाव के अनुसार आनन्द नहीं मिलता।

इसके बाद हम अंगद के प्रसंग को लेते हैं। 'वाल्मीकीय रामायण' में थोड़े से में अंगद का वर्णन आता है और वह भी बहुत पीछे। जब सारी सेना युद्ध के लिये चल पड़ती है और उधर राक्षसों के समुदाय लंका के द्वारों पर जमे हुए हैं तब राम रावण के भयङ्करभावी विनाश की कल्पना करके अंगद को रावण के पास

भेजते हैं। वह जाकर उसे राम का संदेश कह सुनाता है और कोई और तर्क नहीं करता। जब वह सदेश सुना चुकता है तो रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहता है—पकड़ लो इस वानर को और इसे जीवित न जाने दो। जब राक्षस अंगद की ओर दौड़ते हैं तो वह कूदकर वहाँ से निकल जाता है। 'रामचरित मानस' में जो अंगद के पैर गड़ा करने की घटना है वह यहाँ नहीं आती है। इसके अलावा वहाँ तो रावण और अंगद के बीच अनेक तर्क-वितर्क चलते हैं। अंगद हर तरह रावण को भगवान राम की अलौकिक गरिमा का ज्ञान कराना चाहता है पर मदान्ध रावण उस पर औरभी क्रुद्ध होता है। वह अनेक तरह के बुरे वाक्य रामचन्द्र जी के लिये कहता है जिसे भक्त अंगद सुनना भी पाप समझते हैं। तुलसी कहते हैं :

हरि हर निन्दा सुनहिं जो काना। होइ पाप गोघात समाना।।

यहाँ अंगद के इस वचन में उनका भक्त-भाव तो प्रकट होता ही है, इसके साथ-साथ तुलसीदास जी का निर्गुणिये सन्तों के प्रति एक विपरीत दृष्टिकोण का भी आभास होता है। यह दूसरी चौपाई में और भी स्पष्ट होता है। अंगद नीति की बात कहते हैं :

सदा रोगवस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी।।
तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी।।

"श्रुति संत विरोधी" 'हरिहर का निन्दक" ये सब बातें उस युग-युगों से चली आई ब्राह्मणवादी परम्परा की द्योतक हैं जो अनेक रूप बदलकर एक ही बात की कामना करती हैं। वह है ब्राह्मण की तथा उनकी मान्यताओं की प्रकारहित स्वीकृति जिसे तुलसीदास जी ने भक्त के कर्तव्य के रूप में ही प्रत्येक स्थान पर लिया है।

'रामचरित मानस' का रावण-अंगद संवाद काफी रोचक है। रावण के मुकुटों को राम तक फेंकना, पृथ्वी का हिलना ये सभी चमत्कार से भरे हुए वर्णन हैं।

जब अंगद राम के पास आते हैं तो राम रावण के चार मुकुटों के बारे में पूछते हैं। उस पर अंगद नीति से भरे हुए वचन बोलते हैं :

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी।।
साम दान, अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा।।
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आये।।

इस तरह तुलसी ने अंगद को अत्यंत चतुर और नीतिपूर्ण भक्त के रूप में ही चित्रित किया है।

इसके पश्चात् युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। पूरा लंकाकाण्ड यहाँ युद्ध के वर्णनों से भरा हुआ है। घटनाओं में कहीं-कहीं अन्तर अवश्य मिलता है। 'रामचरित-मानस' में मेघनाद और लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन मिलता है जिसमें मेघनाद द्वारा

छोड़ी हुई अमोघ शक्ति द्वारा लक्ष्मण का मूर्च्छित होकर गिरने का वर्णन है। इस पर राम फूट-फूट कर विलाप करते हैं। इसके बाद वानर लंका से सुषेण नामक राक्षस-वैद्य को पकड़ कर लाते हैं और वह हिमालय पर्वत पर संजीवनी बूटी के बारे में बताता है। हनुमान उस बूटी को लेने जाते हैं। रास्ते में उन्हें कालनेमि की बाधा आती है। उस राक्षस को मारकर वे आगे चलते हैं। बूटी लाते हुए वापस आ रहे हैं तब भरत उन्हें कोई राक्षस समझकर बाण मारकर गिरा लेते हैं। हनुमान वहाँ अपना परिचय देकर और स्वस्थ होकर किसी तरह वापस आ जाते हैं और लक्ष्मण उस बूटी से जीवित हो उठते हैं। दोनों भाई गले मिलकर अत्यंत हर्षित होते हैं।

'वाल्मीकीय रामायण' में यह कथा बिलकुल भिन्न है। मेघनाद माया द्वारा छुप कर युद्ध करता है और राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लेता है। इसके पश्चात् असंख्यों बाणों से उनके शरीरों को छेद देता है जिससे वे मृत प्राणियों की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। यह देखकर वानर और ऋक्ष अत्यन्त व्याकुल होते हैं। मेघनाद गर्व से फूलकर यह शुभ समाचार जाकर रावण को सुनाता है। रावण हर्षित होकर राक्षसियों को आज्ञा देता है कि वे सीता को विमान पर बिठा कर यह सब दृश्य दिखा दें जिससे अब वह यह विश्वास करके कि अब उसके पति राम मर चुके हैं, उनकी आशा छोड़ दे। राक्षसियाँ सीता को ले जाती हैं। सीता यह देखकर कि राम और लक्ष्मण बाणों से घिरे हुए मृततुल्य रणभूमि में पड़े हुए हैं, एक साथ फूट-फूट कर विलाप करने लगती हैं। इस पर त्रिजटा नामक राक्षसी उन्हें समझाती है और यह विश्वास दिलाती है कि राम-लक्ष्मण मरे नहीं हैं बल्कि मूर्छित हैं; कुछ समय पश्चात् स्वस्थ हो जायेंगे। सीता इस आशा में शान्त हो जाती है। वह अशोक वाटिका वापस चली जाती है। थोड़ी देर बाद राम मुर्च्छा से जाग पड़ते हैं और अपने भाई लक्ष्मण को मूर्च्छित पड़ा हुआ देखते हैं तो विलाप करने लगते हैं। इतने में सुग्रीव का श्वसुर सुषेण नामक वानर कहता है—हे सुग्रीव! जब देवासुर संग्राम होता था तब उस युद्ध में भी शस्त्रज्ञ और लक्ष्य-भेद में चतुर दैत्य लोग छिपकर इसी तरह देवताओं को बार-बार मारते थे। जब देवता पीड़ित-अचेत और प्राणहीन हो जाते थे तब बृहस्पति मन्त्रयुक्त विद्याओं और ओषधियों से उनको भला-चंगा कर देते थे। हे राजन! उन ओषधियों के लिये सम्पाती और आदि वानर क्षीर सागर के किनारे जल्दी जायें। ओषधियाँ दो हैं। एक सञ्जीवनी और दूसरी विशल्या। इन दोनों को वे वानर जानते-पहचानते हैं। उस समुद्र में जहाँ अमृत मथा गया था वहाँ चन्द्र और द्रोण दो पर्वत हैं। उन्हीं पर ये बूटियाँ मिलती हैं। हे वानरराज! यह काम किसी दूसरे से न होगा। ये वायुपुत्र हनुमान वहाँ जल्दी चले जाय तो ठीक है?"

सुषेण यह कह ही रहे थे कि महावायु चली। बिजली के साथ मेघ भी समुद्र

के जल को हिलोड़ते और पर्वतों को कँपाते हुए प्रकट हुए। गरुड़ आये और नागपाश का खंडन कर दिया जिससे लक्ष्मण भी अपनी मूर्च्छा त्याग कर उठ खड़े हुए। इस तरह दोनों भाई मिले और चारों तरफ सेना में फिर से हर्ष छा गया।

इन दोनों घटनाओं मे बहुत अन्तर है। तुलसीदास जी ने राम के मूच्छित होकर गिरने के स्थल को बिलकुल ही उड़ा दिया है। इसके अलावा गरुड का वहाँ कहीं वर्णन नही है। फिर हनुमान के हिमालय पर जाने का वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में नहीं है। इस अन्तर का कारण हम ठीक-ठीक नहीं कह सकते, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि तुलसी ने भगवान् राम के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये उन्हे रणभूमि मे पड़ा हुआ नहीं दिखाया है और उस दृश्य को भगवान् विष्णु की नरलीला के रूप मे ही लिया है। युद्ध का यथार्थ हमे 'वाल्मीकीय रामायण' में ही अधिक स्पष्ट मिलता है।

इसके पश्चात् 'वाल्मीकीय रामायण' मे रावण के बन्धु-बान्धवों तथा सेनापतियों का राम के साथ युद्ध करने का वर्णन है। पहले धूम्राक्ष के साथ राम का युद्ध होता है, फिर जब वह मारा जाता है तो वज्रदंष्ट्र आता है वह भी मारा जाता है। उसके पश्चात् अकम्पन लड़ता है और धराशायी होता है। इस तरह प्रहस्त भी मारा जाता है। 'रामचरित मानस' में इस तरह ब्योरेवार वर्णन नहीं आता और न ही युद्ध का इतना भयानक वर्णन ही मिलता है। इसके पश्चात् रावण स्वयं युद्ध करने आता है जिसका 'रामचरित मानस' मे इतनी जल्दी वर्णन नहीं है। इसके अलावा रामायण मे यह भी मिलता है कि रावण ने घमासान युद्ध करके लक्ष्मण पर अमोघ-शक्ति चला दी जिससे लक्ष्मण मूच्छित हो गये। रावण उन्हें चुराकर ले जाना चाहता था परन्तु हनुमान ने लक्ष्मण को छुड़ा लिया। थोड़ी देर बाद ही इस शक्ति का प्रभाव लक्ष्मण के ऊपर से हट गया। 'रामचरित मानस' में यह वर्णन नहीं है।

जब रावण युद्धस्थल से हार कर आ गया तो उसने अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाया। 'रामचरित मानस' में कुम्भकर्ण रावण से भगवान् राम की महिमा का बखान करता है। वह कहता है कि हे भाई! परमेश्वर-स्वरूप राम से शत्रुता करना आपको उचित नहीं है। वे तीनों लोकों के स्वामी हैं। इस तरह तुलसी ने इसमें कुम्भकर्ण का कुछ क्षणों के लिये भक्ति-भाव दिखाया है परन्तु रामायण में यह भक्ति-भाव नहीं मिलता है। वहाँ तो कुम्भकर्ण कूटनीति की बातें ही अपने भाई रावण से करता है और जल्दीबाजी की उसकी निन्दा करता है। वह कभी नहीं कहता है कि राम भगवान हैं इसलिये उनसे युद्ध करना नाशनी है। उनमे तो राजनीति-सम्बन्धी बातें ही होती हैं। इसके बाद रावण अपने भाई से सहायता की प्रार्थना करता है तो कुम्भकर्ण गर्जना करता हुआ खड़ा हो जाता है और राम को बुरे वचन कहकर युद्धभूमि की ओर चल देता है। युद्धभूमि में वह विभीषण से मिलकर उसे धन्य-धन्य

नहीं कहता। यह प्रसंग तो तुलसीदास जी ने स्वयं निर्माण किया है। यह सब-कुछ भगवान् की लीला को भक्तों के लिये हृदयग्राह्य बनाने के लिये ही तुलसीदास जी ने किया है।

कुम्भकर्ण के साथ युद्ध का वर्णन दोनों रामकथाओं में अत्यन्त भयानक है। कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण विलाप करने लगा। इसके पश्चात् उसने त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नारान्तक आदि वीरों को युद्ध के लिये भेजा। वे सब भी मारे गये।

इसके पश्चात् इन्द्रजित के साथ युद्ध का वर्णन आता है। यह वर्णन 'वाल्मीकीय रामायण' में अधिक रोचक है। इसमें इन्द्रजित छिप-छिपकर युद्ध करता है। वह अनेक तरह की चालाकियों से काम लेता है। बनावटी सीता बनाकर उसे मारता है और चारों तरफ यह अफवाह फैला देता है कि सीता मर गई, इससे राम तथा उसके साथी बहुत दुःखी होते हैं। जब राम विलाप करने लगते हैं तो लक्ष्मण उन्हें हर तरह धर्म-अधर्म की बातें करके समझाते हैं। वे कभी विधाता के विधान को को कोसते हैं और कभी अगाध सहानुभूति दिखाकर अपने बड़े भाई को समझाते हैं। फिर इन्द्रजित को मारने का प्रण ठानते हैं। इस तरह की विचित्र घटनायें तुलसीदास जी ने छोड़ दी हैं। 'रामचरित मानस' में सीता का इस तरह माया के आवरण में भी वध नहीं होता और न राम अनाथों की तरह विलाप करते हैं।

फिर इन्द्रजीत के पूरी वानर-सेना को मार गिराने का वर्णन है। जब चारों तरफ असंख्य वानर-वीर युद्धस्थल में मरे पड़े थे तब हनुमान औषधि-पर्वत लाते हैं और अपनी सारी सेना को जीवित करते हैं। जहाँ 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण के मूर्छित होने के समय हनुमान के पर्वत लाने का प्रसंग है वहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' में यह प्रसंग इस समय आता है।

इसके बाद युद्ध का वर्णन साधारणतया दोनों रामकथाओं में एक-सा ही है। घमासान युद्ध करके लक्ष्मण मेघनाद को मार गिराता है। मेघनाद के वध की बात सुनकर रावण को बहुत धक्का लगता है। वह क्रोध में सीता को मारने के लिये झपटता है पर अपने मन्त्रियों के समझाने पर मान जाता है और स्वयं राम से युद्ध करने का निश्चय करता है। पहले तो वह अनेक राक्षसों को भेजता है जिनकी मृत्यु का समाचार सुनकर राक्षसियाँ अपने भवनों में विलाप करती हैं फिर विरूपाक्ष, महोदर, तथा महापार्श्व आदि भी मारे जाते हैं।

जब सभी राक्षस सेनापति युद्ध में काम आ जाते हैं तो रावण स्वयं युद्ध करने उतर आता है।

राम-रावण-युद्ध के इस प्रसंग में दोनों रामकथाओं में घटनाओं का कुछ अन्तर है। सबसे पहले रावण का लक्ष्मण के ऊपर शक्ति चलाने का वर्णन है। कथा सारी

है कि राक्षसराज ने शक्ति लक्ष्मण के ऊपर फेंकी। उसमें आठ घंटे घनघना रहे थे और मय नामक दैत्य ने अपनी माया से उसे बनाया था। वह बड़े वेग से लक्ष्मण पर आ गिरी। उसे गिरते देख रामचन्द्र बोले—लक्ष्मण के लिए कुशल हो। यह शक्ति निष्फल और कामहीन हो जाय। वह शक्ति लक्ष्मण के हृदय में सर्पराज की जीभ की तरह गड़ गई। लक्ष्मण विदीर्ण हृदय होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इससे राम को बहुत दुःख हुआ। उनकी आँखों में आँसू आ गये। सभी वीरों ने उस शक्ति को निकालने का प्रयत्न किया, पर वे न निकल सके, फिर अन्त में राम ने अपने बल से उसे लक्ष्मण की छाती में से निकाला। जब वे निकाल रहे थे इतने बीच में ही रावण ने अपने बाणों से उनके शरीर को चारों ओर से छेद दिया। इधर जब राम अपने मूर्च्छित भाई के लिए जब अधिक विलाप करने लगे तो फिर हनुमान वही औषधि-पर्वत लाये और तभी लक्ष्मण की मूर्च्छा खुली।

इस तरह कई स्थलों पर लक्ष्मण के मूर्च्छित होने का तथा राम के अनाथ की की तरह विलाप करने का प्रसंग 'वाल्मीकीय रामायण' में आता है जो तुलसीदास जी ने केवल एक ही स्थान पर दिखाया है। इसके अलावा राम भी यहाँ उस भगवान् के रूप में नहीं आते जिनके लिये यह सब युद्ध केवल क्रीडा-मात्र हो। राम यहाँ असाधारण योद्धा है, लेकिन शत्रु रावण भी कम वीर नहीं है। वह अपने पराक्रम से राम को बार-बार विचलित कर देता है। यह युद्ध में अति स्वाभाविक है। भक्ति-भाव से रामकथा का वर्णन करने वाले खुले रूप में इस पक्ष को नहीं लाते क्योंकि वे राम के मानव-रूप को स्वीकार न करके उनके अलौकिक व दैवी रूप को ही प्रमुखता देते हैं। मैं पहले ही कह आया हूँ कि युद्धस्थल तथा अन्य स्थलों पर कथा का यथार्थ जितना 'वाल्मीकीय रामायण' से हमें मिल सकता है उतना 'रामचरित मानस' या 'अध्यात्म रामायण' आदि से नहीं मिल सकता। जहाँ 'वाल्मीकीय रामायण' कुछ हद तक ऐतिहासिक आधार के रूप में ली जा सकती है, विशुद्ध कथा के रूप में ली जा सकती है वहाँ अन्य रामायणों में केवल भक्तों के पाठ करने की ही सामग्री है। और फिर उसके पीछे कथाकार की मान्यताएँ अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। कथा तो केवल उनको समाज के सामने रखने की माध्यम-मात्र बन कर रह जाती है।

इन्द्र द्वारा राम को रथ भेजने की भी कथा 'वाल्मीकीय रामायण' में आती है। यह कोरा चमत्कार है और सम्भव है बाद में चलकर जुड़ गया हो क्योंकि 'वाल्मीकीय-रामायण' में भी तो कई स्थलों पर राम का वही रूप मिलता है जो परवर्ती कथाकारों ने मुख्य रूप से अपनाया है।

फिर एक विचित्र बात और होती है। अगस्त्य मुनि आकर रणभूमि में राम को हृदय स्तोत्र का उपदेश देते हैं। यह 'आदित्य हृदय' पवित्र, सर्व शत्रुनाशक, जय का दाता और नित्य रहने वाला है। अगस्त्य मुनि राम से कहते हैं—हे राघव! तुम

सब भुवनों के ईश्वर सूर्य की आराधना करो, जो किरणों वाले हैं, जिनका हृदय उदय हो चुका है। उनको देवता और असुर सभी नमस्कार करते हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द और प्रजापति हैं। वे ही इन्द्र, कुबेर, काल, यम चन्द्र और वरुण हैं। वे पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, प्रजाओं के प्राण, ऋतु कर्ता और प्रभाकर हैं। इसके पश्चात् अनेक नामों से ऋषि शिव को पुकारते हैं और राम से उसकी उपासना करने को कहते हैं।

सूर्य के उपासना वाली बात 'रामचरित मानस' में कहीं नहीं आती और न अगस्त्य मुनि रणस्थल पर राम से मिलने आते हैं। यह सूर्य की पूजा बहुत पुरानी है। आर्यों से पहले भी लोग सूर्य्य को ही देवता मानते थे। सूर्य्य के ही साथ अग्नि-देवता का सम्बन्ध था। आर्य ऋषियों के बीच सूर्य्य की उपासना उन्हीं आर्येतर जातियों के प्रभावस्वरूप आई। उसी का प्रसंग हमें यहाँ मिलता है। हो सकता है 'वाल्मीकीय रामायण' के रचना-काल तक सूर्य आदि की उपासना समाज में काफ़ी प्रचलित रही हो जो बाद में आकर अपना इतना महत्व न रख सकी।

इसके अलावा 'वाल्मीकीय रामायण' में ऋषियों के सम्बन्ध में भिन्न बातें मिलती हैं। यहाँ ऋषि हर समय राम की सहायता करते हैं और सदैव आर्य साम्राज्य के विस्तार में सहायक होते हैं। वे कभी ऐसा विचार नहीं करते कि भगवान् राम तो सर्वज्ञानी हैं, उनको हम क्या सहायता कर सकते हैं। वे तो घर-घर की बात जानते हैं। यह सब तो उनकी लीला है। 'रामचरित मानस' में ऋषि केवल एक भक्त के रूप में ही रह गया है, जबकि 'वाल्मीकीय रामायण' में ऋषि का वह पक्ष स्पष्ट होता है जो वास्तव में रहा होगा। हम पहले ही अपने विश्लेषण में कह आये हैं कि इन ऋषियों का काम प्रमुखतया आर्य्य सत्ता को बल देना तथा उसका विस्तार करना था। उसके विधान को हर जगह लागू करना था। तभी ये सदैव उन शक्तियों के साथ रहे हैं जो अनार्यों के विरुद्ध उठी हैं और जिन्होंने आर्य्य विधान को अनार्य्य देशों में लागू किया है। राम इस कार्य्य में सबसे प्रमुख व्यक्ति थे, जो दक्षिण तक आर्य्यों के प्रभाव तथा मैत्री को ले गये और जिन्होंने आर्य का रास्ता साफ़ कर दिया।

फिर 'रामचरित मानस' में रावण द्वारा किये गये कई चमत्कारों का वर्णन आता है जैसे एक बार सहस्रों राम और लक्ष्मण दिखाकर वानरों को भ्रम में डालना, फिर सहस्रों रावण दिखाकर सबको घबराना इत्यादि, जो 'वाल्मीकीय रामायण' में नहीं मिलते। इसी तरह मृत्यु के बारे में दोनों रामकथाओं की धारणायें भिन्न हैं। 'रामचरित मानस' में आता है कि जब-जब राम अपने पैने बाणों से रावण की भुजाएँ और सिर काटते थे तब ही वे जीवित होकर उसके शरीर में फिर लग जाते थे। राम मारते-मारते थक गये पर रावण न मरा। तब विभीषण ने राम से इसका रहस्य कहा कि रावण के पेट में अमृत का कुण्ड है, इसी कारण उसकी मृत्यु असम्भव है। विभीषण

ने राम से अग्निवाण छोड़कर इस अमृत-कुण्ड को सुखाने की सलाह दी। राम ने ऐसा ही किया। तब रावण की मृत्यु हुई।

'वाल्मीकीय रामायण' में इस अमृत-कुण्ड की बात नहीं आई है और न बार-बार भुजाओं के कटकर जीवित हो जाने का वर्णन है। यहाँ तो अगस्त्य द्वारा दिये गये ब्रह्मास्त्र को राम छोड़ते हैं और उससे रावण की मृत्यु होती है।

इस तरह *'रामचरित मानस' की कथा निश्चित ही चमत्कारों को अधिक* स्थान देती है। रावण के वध के बाद शिव-उमा, तथा देवताओं का राम के पास आकर विनती करने का प्रसंग है। स्वयं दशरथ स्वर्ग लोक से आते हैं। इस तरह सभी आकर भगवान् राम की वन्दना करते हैं। *यह प्रसंग 'वाल्मीकीय रामायण' में बाद* में आता है।

इसके पश्चात् अन्य राक्षसियों तथा मन्दोदरी के विलाप का प्रसंग है जो 'वाल्मीकीय रामायण' मे अधिक हृदयद्रावक तथा यथार्थमय है। यहाँ लगता है जैसे मानो एक पत्नी वास्तव में अपने पति की मृत्यु के शोक में रो रही है, जबकि 'राम-चरित मानस' में *कथाकार रामभक्ति की स्थापना मे स्वाभाविक मानवोचित भावनाओं* को भी छुपा गया है। मन्दोदरी वहाँ केवल यही कहती है कि हे कन्त! तुमने विश्व के स्वामी, परमेश्वर राम को नहीं पहचाना और सदा अपने मद में डूबे रहे, इसीलिये *आज यह महान् शोक का अवसर आया।* इस तरह तुलसी ने सदा ही मन्दोदरी को भक्त-रूप मे दिखाया है। 'वाल्मीकीय रामायण' में यह रूप कहीं नहीं है। यहाँ मन्दोदरी रावण की एक कुशल, बुद्धिमान, उचित-अनुचित समझने वाली दूरदर्शी स्त्री है।

इस तरह हमने देखा कि *मानव-जीवन की स्वाभाविक भावनाओं का जो* यथार्थ चित्रण हमें 'वाल्मीकीय रामायण' में मिलता है वह तुलसीकृत 'रामचरित मानस' मे नहीं मिलता। तुलसीदास जी ने बहुत कुछ दिया है परन्तु वह सब एक भक्त के *लिये ही हृदयग्राह्य हो सकता है, एक साधारण पाठक के लिये नहीं।* चमत्कार दोनों कथाओं में हैं पर 'रामचरित मानस' में इनका आधिक्य है। इसके अलावा तुलसी-दास जी समय-समय पर कथा के बीच विषय पर दार्शनिक टिप्पणी भी देने लग जाते हैं। वे टिप्पणियाँ उपदेशप्रद होती हैं और उन्हीं के कारण यह 'मानस' आज तक काफ़ी हद तक पूजा-पाठ की सामग्री बना हुआ है। मैं इसका छोटा सा उदाहरण दूँगा।

विभीषण अधीर होकर राम से पूछते हैं :

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥

राम कहते हैं :

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर॥

इस तरह के दार्शनिक प्रवचन 'रामचरित मानस' में प्रायः आते हैं और यही तुलसी की सामाजिक तथा दार्शनिक विचारधारा को स्पष्ट करते हैं।

अब इन दोनों रामकथाओं के अलावा 'अध्यात्म रामायण' को लें तो उसमें घटनाओं का 'रामचरित मानस' से विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता है लेकिन स्तुतियों की जगह-जगह भर मार है। विभीषण शरण में आते हैं तो भगवान राम की स्तुति गाते हैं, फिर समुद्र राम के क्रोध से डरता हुआ आता है और स्तुति गाता है। इन स्तुतियों में पर-ब्रह्म परमेश्वर रूप में भगवान् राम की महिमा का गुणगान है। इसलिये सच पूछा जाय तो कथा-पक्ष इतना अधिक यहाँ न होकर अध्यात्म पक्ष अर्थात् पाठ-पूजा-सम्बन्ध अधिक है।

सेतुबन्ध रामेश्वर की स्थापना का वर्णन यहाँ भी मिलता है, लेकिन तुलसी की तरह शिव के रूप का निरूपण नहीं मिलता और न राम द्वारा शिवोपासना की मर्यादा की स्थापना ही यहाँ मिलती है। कारण यही है कि यह तुलसी की अपने युग की समस्या थी।

'अध्यात्म रामायण' में भी हनुमान के द्रोण पर्वत से औषधि लाने का वर्णन है। इसी औषधि से मरी हुई वानर-सेना फिर से जीवित हो उठी।

राम के भक्ति-पक्ष को यहाँ अधिक प्रधानता दी गई है। इसीलिये 'रामचरित-मानस' की तरह रावण का प्रत्येक बन्धु, बाधक यही उससे कहता है—हे रावण! तुम वैर-भाव त्याग करके और भक्तियुक्त हो सदा हृदय में ध्यान किए हुए नाम-रूप परिपूर्ण पुराण पुरुष भगवान् राम की भक्ति करो। तभी तुम्हारी मुक्ति हो सकती है।

बार-बार इस तरह के कथन राक्षसों के मुँह से कहे हुए मिलते हैं। 'अध्यात्म-रामायण' के पूरे युद्धकाण्ड को पढ़ने पर भी हमें वह राम-रावण-युद्ध के भीषण दृश्य के दर्शन नहीं होते। प्रसंग आता है पर बार-बार कथाकार भगवान् राम की महिमा गाने लग जाता है इससे इसमें जो महाकाव्य (Epic) की गरिमा होनी चाहिये वह नहीं मिलती। राम कहीं चिन्तित नहीं दिखाई देते। उसके लिये कथाकार पहले ही स्पष्ट कह देता है कि दैहिक शोक तथा चिन्ता भगवान् राम को किस तरह छू सकती [illegible] रामायण में प्रारम्भ से अन्त तक घटनाओं के आवरण में एक क्रीड़ा का-[illegible] दर्शन होता है। वैसे घटनाओं में बहुत कम अन्तर है।

उपसंहार

रावण-वध के पश्चात् विभीषण का लंका की राजगद्दी पर अभिषेक होता है। यह घटना प्रायः सभी रामकथाओं में एक-सी ही मिलती है। इसके पश्चात् सीता का राम के पास आने का वर्णन है। प्रसंग सब जगह एक-सा ही है। अन्तर इतना ही है कि 'रामचरितमानस' में सीता का अग्नि-प्रवेश राम द्वारा उनकी छाया लेना व असली जगदम्बा को सीता के प्रत्यक्ष पाते हैं, वहीं 'अध्यात्म रामायण' होता है लेकिन 'वाल्मीकीय रामायण' में राम एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में ही प्रकट होते हैं। वे सीता का परित्याग इसलिए करते हैं कि बाद में किसी प्रकार से उनकी निन्दा न हो। जब अग्नि-परीक्षा हो चुकी तो यह भय जाता रहा और उन्होंने निश्चिंत होकर सीता को स्वीकार कर लिया। इसके अलावा राम और सीता के बीच यह भी मानव-स्वभाव के अनुकूल है। सीता अपने को इस तरह तिरस्कृत, अपमानित होकर राम को यहाँ तक कहती हैं—हे राजसिंह! आपने तो निकृष्ट कोटि के जन में रहकर ओछे मनुष्य की तरह केवल सामान्य स्त्री-जाति-धर्म मान लिया है। दूसरी स्त्रियों की चाल और व्यवहार देखकर आप जो स्त्री-जाति पर शंका करते हैं तो ठीक नहीं। इस विचार को आप अपने दिल से निकाल दें। यदि आप कभी मेरी परीक्षा ले चुके हैं तो ऐसा गन्दा सन्देह आपको जरूर दूर कर देना चाहिये।

लक्ष्मण के साथ सीता अपने पति राम से कटु-कटु इस तरह कह जाती है पर 'रामचरितमानस' में सीता कुछ नहीं कहती। तुलसीदास जी वर्णन करते हैं :

> प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
> लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बेगी॥
> सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
> लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥

इसके पश्चात् सीता ने अपनी अग्नि-परीक्षा दी। यह अन्तर राम के अलौकिक तथा लौकिक स्वरूपों का ही है।

तत्पश्चात् फिर 'वाल्मीकीय रामायण' में राम के अलौकिक रूप का दर्शन आ जाता है। सभी देवता, शिव आदि राम के पास आते हैं और कहते हैं—

हे देव ! आपने इतने बड़े सामर्थ्यवान होकर भी सीता को अग्नि में क्यों जलने दिया ? हे देवताओं में श्रेष्ठ ! क्या आप अपने को नहीं जानते ? आप आठों वसुओं के प्रजापति ऋतुधामा नाम वसु हैं। आप तीनों लोकों के आदि-कर्त्ता, स्वयं प्रभु, रुद्रों में आठवें रुद्र और साध्यों में पाँचवें हैं। महाराज ! अश्विनी-कुमार आपके कान और चन्द्र तथा सूर्य आपके नेत्र हैं। प्राणियों के आदि और अन्त में आप ही देख सकते हैं। संसारी मनुष्य की तरह आप वैदेही का त्याग क्यों करते हैं ?

यह सब सुनकर राम बोले—मैं तो अपने को राजा दशरथ का पुत्र मनुष्य ही मानता हूँ। परन्तु जो मैं हूँ और जहाँ से हूँ वह मुझे आप ही बताइये ?

उनके यह कहने पर ब्रह्मा ने कहा—हे सत्यपराक्रमी ! आप नारायण देव चक्रधारी प्रभु हैं। आप अक्षय सत्य ब्रह्म हैं। आप सब लोकों के परम धर्म रूप विश्वक्सेन चतुर्भुज, शार्ङ्गधन्वा और हृषीकेश हैं।

इस तरह के रूप का वर्णन आगे भी उत्तरकाण्ड में होता है। हमें ऐसा लगता कि अधिकतर उत्तरकाण्ड परवर्ती रूप है। तभी इसमें ऐसा रूप मिलता है। कथा में अधिकतर विशुद्ध मानव-रूप में ही रामकथा का उल्लेख हुआ है। वह मानव-रूप कोई लीला के रूप में भी यहाँ नहीं आया है जैसा तुलसी तथा 'अध्यात्म रामायण' के कथाकार में बार-बार कहा है।

रावण-वध के पश्चात् कथा में काफ़ी चमत्कार आते हैं जैसे रामचन्द्र के कहने से मरे और घायल वानरों को इन्द्र का जिलाना एवम् आरोग्य करना।

इसके पश्चात् पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण-सीता तथा अन्य वानर-ऋक्ष आदि अयोध्या की तरफ जाते हैं। अयोध्या पहुँचने से पहले ही संगम पर उतरकर राम हनुमान को अयोध्या यह कहकर भेजते हैं कि वहाँ के सब समाचारों पर लक्ष्य करना और भरत की चेष्टाओं पर खूब दृष्टि रखना। उनके मुँह की रंगत, दृष्टि और वाणी को खूब पहचानना। क्योंकि इष्ट पदार्थों से अच्छी तरह भरा-पूरा तथा हाथी-घोड़ों और रथों से सम्पन्न राज्य किस मनुष्य के मन को नहीं फेर सकता ? बहुत दिनों तक राज्य करने से शायद खुद भरत ही राज्य के लोभी हो जायें।'

इस तरह राम मानव-स्वभाव की शिथिलताओं को सामने रखकर यह जाँच करवाते हैं। राज्य-परिवारों में इस तरह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है परन्तु 'रामचरित मानस' का आदर्श इस तरह के सन्देह को स्थान नहीं देता। वहाँ राम हनुमान को केवल सूचना देने भेजते हैं।

एक और विचित्र बात 'वाल्मीकीय रामायण' में है कि जब हनुमान ने भरत को राम के आने का शुभ समाचार सुनाया तो भरत ने अत्यधिक प्रसन्न होकर हनुमान को एक लाख गाय, सौ गाँव और सोलह कन्याएँ दीं जो, स्त्रियों के आदान-प्रदान

में ऊपर प्रकाश डालता है। इस भेंट की कृपा 'रामचरित मानस' तथा 'अध्यात्म रामायण' में कहीं नहीं है। वहाँ तो हनुमान को एक ब्रह्मचारी सेवक के रूप में ही लिया गया है। कन्याओं का वर्णन भरत इस तरह करते हैं—वे कलाएं कुण्डलों से भूषित, अच्छे आचरणों वाली और सोने के रंग वाली हैं। उनकी नाक अच्छी है, वे मनोहर जंघाओं से सुशोभित, चन्द्रमुखी, सम्पूर्ण भूषणों से भूषित तथा सम्पन्न और अच्छे कुल की हैं।

राजतिलक के पश्चात् 'रामचरित मानस' में रामकथा प्रायः समाप्त हो जाती है। तुलसीदास जी रामराज्य का भव्य चित्र उपस्थित करते हैं। यह चित्र निश्चित ही एक आदर्श राज्य का चित्र है। ऐसा आदर्श राज्य जहाँ के प्राणियों को भौतिक विकार छू तक नहीं जाते हैं, जहाँ सभी वैदिक धर्म का पालन करते हैं, और मर्यादा के अनुकूल आचरण करते हैं। यह चित्र (utopia) समाज पर अपना एक गहरा प्रभाव छोड़ गया था। अकबर के वैभवशाली साम्राज्य को यह एक चुनौती के रूप में आया था और इसे विभिन्न समुदायों ने स्वीकार भी किया जिसके फलस्वरूप भारत में बाद में मुस्लिम-साम्राज्य के विरुद्ध बल्वे उठ खड़े हुए। यह तुलसी के समाज पक्ष की बात है।

इस तरह का चित्र 'वाल्मीकीय रामायण' में भी हमें मिलता है लेकिन उस गौरव के साथ नहीं मिलता जैसे तुलसी ने बनाया है।

इसके बाद 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड में रामभक्ति-सम्बन्धी बातें ही अधिक हैं। तुलसीदास जी भक्ति की महिमा का बखान करते हैं और साथ-साथ उसका एक निश्चित पथ भी निर्धारित करते हैं। इस विषय पर काकभुशुण्ड तथा गरुड़ जी का संवाद काफी प्रकाश डालता है। समन्वय के आधार भी हमें बहुत कुछ इससे स्पष्ट होते हैं। देखा जाय तो उत्तरकाण्ड एक तरह कथा का निष्कर्ष-सा है। इससे कवि का मन्तव्य स्पष्टतया पाठक के सामने आ जाता है। कथा के पश्चात् कथा का माहात्म्य इसमें हमें मिलता है। 'वाल्मीकीय रामायण' में इस विस्तार के साथ भक्ति की महिमा का वर्णन नहीं मिलता। राम के अलौकिक रूप की बात यत्र-तत्र अवश्य मिलती है परन्तु कथाकार उसका माहात्म्य गाने के फेर में नहीं पड़ा है बल्कि उसने कितनी ही दन्त-कथाओं का उल्लेख किया है। पूरा उत्तरकाण्ड रावण के बारे में तथा राम के बारे में इन दन्त-कथाओं से भरा पड़ा है।

अगस्त्य ऋषि रावण आदि की उत्पत्ति का वर्णन करने के लिये पहले विश्रवा मुनि की उत्पत्ति बतलाते हैं, इसके पश्चात् कुबेर की कथा आती है। राक्षसों के मूल की कथा भी इसमें आती है। कथा इस प्रकार है। अगस्त्य मुनि ने राम से कहा—हे राम! ब्रह्मा जब कमल से पैदा हुए तब सबसे पहले उन्होंने जल रचा। जल की

रक्षा के लिये अनेक प्राणियों को उत्पन्न किया। वे सब जीव बड़ी नम्रता से ब्रह्मा के पास खड़े होकर बोले कि हम क्या करें ? उस समय वे सब भूख और प्यास के मारे बड़े दुखी हो रहे थे। ब्रह्मा ने हँसकर उनसे कहा—तुम सब इसकी रक्षा करो। ब्रह्मा की यह आज्ञा सुनकर उन भूखों और बिना भूखों में से कुछ ने तो कहा कि 'रक्षामः'—हम रक्षा करते हैं और बहुत-से बोल उठे कि 'यक्षामः'—हम उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं। उनका इस तरह कहना सुनकर ब्रह्मा बोले, जिन्होंने रक्षामः कहा है वे राक्षस होवें और जिन्होंने यक्षामः कहा है वे यक्ष हों।

यह कथा 'रामचरित मानस' में या 'अध्यात्म रामायण' में कहीं नहीं है।

इसके पश्चात् विभिन्न राक्षसों की कथायें आती हैं जैसे सुकेश के वंश का विस्तार तथा उसके वंशजों का देवताओं के साथ संघर्ष आदि। माल्यवान के पराजित होकर लंका में भाग जाने और वहाँ से भी भागकर पाताल मे रहने की कथा आती है। इसके पश्चात् रावण के सम्बन्ध में कथाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। उनमे मुख्यतया निम्न हैं :

(१) रावण आदि का जन्म।

(२) रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण तीनों भाइयों की तपस्या और ब्रह्मा से वर-प्राप्ति।

(३) लंका से कुबेर को निकालकर तीनों भाइयों का वहाँ रहना।

(४) रावण आदि का विवाह।

(५) रावण के पास कुबेर का दूत भेजना और दूत का मारा जाना।

(६) रावण का कुबेर को जीतना तथा यक्षों का रावण के डर से भाग जाना।

(७) कुबेर को जीतकर रावण का पुष्पक विमान छीनना।

(८) रावण का कैलाश आना और "रावण" नाम पाना।

(९) वेदवती का शाप।

(१०) राजा मरुत् को जीतना।

(११) अनरण्य का रावण को शाप देना।

(१२) यमराज से युद्ध करने के लिये रावण को नारद का उपदेश देना।

(१३) रावण और यम का युद्ध और ब्रह्मा के वचन से अन्तर्धान होना।

(१४) रावण का रसातल में जाकर नाग और वरुण को जीतना।

(१५) रावण का बलि के यहाँ जाना और द्वार पर भगवान् के दर्शन पाना।

(१६) रावण का सूर्यलोक में जाना।

(१७) रावण का चन्द्रलोक में जाना और वहाँ मान्धाता से युद्ध करना।

(१८) रावण का श्री कपिलदेव का दर्शन होना।

(१६) रावण का बहुत सी परस्त्रियों को हरण करना।
(२०) स्वर्ग-विजय के लिये रावण की तय्यारी।
(२१) रावण को नलकूबर का शाप।
(२२) देवताओं और राक्षसों का युद्ध।

रावण की यह विस्तृत कथा समाप्त होते ही मेघनाद के सम्बन्ध में कथाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं वे निम्न हैं :

(१) मेघनाद और जयन्त आदि महावीरों का युद्ध।
(२) मेघनाद का इन्द्र को पकड़ कर लंका में ले जाना।
(३) ब्रह्मा का इन्द्र को छुड़वा देना।

इसके साथ ही अहल्या की कथा भी आती है।

इसके पश्चात् फिर रावण के सम्बन्ध में कथाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं जैसे :

(१) सहस्रार्जुन के नगर में रावण का जाना।
(२) सहस्रार्जुन के हाथ से रावण का बाँधा जाना।
(३) पुलस्त्य मुनि का आकर रावण को छुड़ाना।
(४) रावण का बालि से अपमानित होना।

रावण की कथा के पश्चात् हनुमान, सुग्रीव आदि की कथाएँ चलती हैं। वे इस तरह हैं :

(१) हनुमान की जन्म-कथा।
(२) हनुमान को देवताओं का वर देना।
(३) बाली और सुग्रीव की उत्पत्ति की कथा।

इसके पश्चात् सनत्कुमार और रावण का संवाद आता है। ऋषि रावण को राम-जन्म का समय बतलाते हैं। यहाँ वही तुलसी के समतुल्य दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं। ऋषि कहते हैं—सत्युग के बीत जाने पर त्रेतायुग में देवताओं और मनुष्यों की भलाई के लिये वे राजा के रूप में अवतार लेंगे। इसके पश्चात् ऋषि राम-कथा का माहात्म्य बताते हैं कि यह बड़े-बड़े पापों का नाश करती है।

फिर रावण के श्वेत द्वीप मे जाने का उल्लेख है। इसके पश्चात् रामचन्द्रजी की सभा का भव्य वर्णन आता है। यह वर्णन पूरे वैभव और ऐश्वर्य्य का वर्णन है। फिर राजा राम अन्य राजाओं को जो उनके राज्याभिषेक के समय आये थे, विदा करते हैं। वानरों और राक्षसों को भी राम अनेक कीमती भेंट देकर विदा कर देते हैं।

पुष्पक विमान का रामचन्द्र जी के पास आने का और वर्णन आता है। यह चमत्कारमयी कथा है।

इन सबके पश्चात् सीता के सम्बन्ध में कथा आती है। सबसे पहले राम सीता के विषय में लोकापवाद का समाचार पाते हैं और सीता का परित्याग करते हैं। लक्ष्मण सीता को निर्जन वन में छोड़कर चले आते हैं। जब सीता अकेली रह जाती है तो किसी तरह वाल्मीकि ऋषि उसे मिलते हैं और वे अपने आश्रम में उस दुःखिया को ले आते हैं। लक्ष्मण सीता के साथ हुए अन्याय पर बहुत खेद प्रकट करते हैं तो सुमन्त उन्हें समझाते हैं और दुर्वासा ऋषि की कही हुई बात का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। इसके बाद इसी प्रसंग में राम लक्ष्मण को राजा नृग की कथा सुनाते हैं और फिर राजा निमि की कथा कहते हैं। इसके पश्चात् राजा निमि और वसिष्ठ की कथा साथ-साथ आती है। फिर ययाति की कथा आती है।

इन सबके बाद एक कुत्ते की बड़ी दिलचस्प कथा मिलती है, जो अपने सिर फोड़े जाने पर सर्वार्थसिद्ध नामक भिक्षुक की राजा राम के दरबार में शिकायत करता है और न्याय पाता है। कुत्ता पहले तो सारी नीति की बातें कहता है। यह सब आदर्श रामराज्य की कल्पना के अन्तर्गत तुलसीदास ने भी दूसरे रूप में लिया है। इसके पश्चात् गीध और उल्लू की राम के दरबार में नालिश करने का प्रसंग आता है, जो अत्यन्त ही रोचक और हास्यप्रद है। ये भी नीति से भरी हुई बातें करते हैं और न्याय की याचना करते हैं।

फिर लवणासुर का पूरा वृत्तान्त है। इसके पश्चात् शत्रुघ्न की यात्रा का वर्णन आता है। शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में आकर टिकता है और वहीं लव-कुश के बारे में वाल्मीकि से जानता है।

आदर्श रामराज्य की कल्पना के अन्तर्गत ही कथाकार ने एक कथा का सृजन और किया है। वह है मृतक पुत्र को लेकर किसी ब्राह्मण का राजद्वार पर आना। वह ब्राह्मण कहता है—हे देव! जब राजा विधिपूर्वक प्रजा का पालन नहीं करता, जब राजा दुराचारी होता है तब लोग कुसमय में मरते हैं या चाकरों और सेना से जब लोग ठीक आचरण नहीं करते और राजा उनको ठीक रास्ते पर नहीं लाता तब प्रजा की रक्षा नहीं होती, किन्तु का[illegible] भय उत्पन्न हो जाता है।

उस लड़के की मृत्यु पर ऋषियों के साथ राजा राम विचार करते हैं। यहीं शम्बूक की कथा आती है। वह शूद्र वन में तपस्या कर रहा था, जो वैदिक विधान के प्रतिकूल था, या यों कहें ब्राह्मण की मर्यादा के विरुद्ध था, इसी पाप के फल-स्वरूप ब्राह्मण के पुत्र की मृत्यु हुई। ऋषि राम को उस शूद्र शम्बूक को मारने के लिए कहते हैं। राम जाकर उसे मार देते हैं। यह प्रसंग वर्ण-धर्म की एक लम्बी कड़ी की एक बुरा पड़ता है। किस तरह ब्राह्मण समाज में कानून को व्यवस्था करता था, और अपने स्वार्थों की रक्षा राजा से [illegible] कराता था। जब भी [illegible]

मता के विरुद्ध आवाज उठाते तो वह उन्हें अपने स्वामी राजा से उनको कुचलवा देता। इस घटना को हम राम के मानवस्वरूप में ही अच्छी तरह खपा सकते है, दैवीस्वरूप में यह घटना उपहासास्पद-सी लगती है।

इस तरह उत्तरकाण्ड मे अनेक कथाएँ हैं। राजा दण्ड की कथा भी आती है। राजा दण्ड को भार्गव ने जो शाप दिया था उसका भी वर्णन मिलता है। इसके साथ अश्वमेध यज्ञ के लिये विचार होता है, फिर वृत्रासुर के वध और इन्द्र को ब्रह्महत्या लगने की बात आती है। इन्द्र यज्ञ करते हैं। पुरुरवा के जन्म की कथा, कि पुरुषों की उत्पत्ति, इला की कथा इत्यादि कितनी ही छोटी-मोटी कथायें हैं।

इन सबके पश्चात् अश्वमेध यज्ञ की कथा है। उसी अवसर पर लव-कुश वाल्मीकि के साथ राम के दरबार में आते हैं और यह रामायण मे वर्णित रामकथा गाकर सुनाते हैं। राजा राम अपने पुत्रों को पहचान लेते हैं। उनका प्रेम उमड़ता है, फिर सीता भी आती है परन्तु सीता आकर पृथ्वी में समा जाती है और राम विरह में विलाप करने लगते हैं। उन्हें ब्रह्मा समझाते हैं। फिर भविष्य कथा आती है। युधाजित के गुरु राम के पास आते हैं, उसी के साथ गन्धर्वों के मारे जाने की कथा है। लक्ष्मण को भी वैराग्य हो आता है और वे अपने पुत्रों की सारी व्यवस्था करके सब-कुछ छोड़ देते हैं। मुनि वेष में काल स्वयं आता है और अन्त में राम के महा प्रस्थान का वर्णन है।

इस तरह उत्तरकाण्ड का अन्त होता है।

'अध्यात्म रामायण' का उत्तरकाण्ड 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड से बिलकुल भिन्न है, केवल भक्ति की महिमा के गुणगान करने में कुछ नहीं मिलता, अपितु कथाओं के दृष्टिकोण से अधिकतर 'वाल्मीकीय रामायण' के ऋणी है। यहाँ भी अगस्त्य मुनि रावणों तथा वानरों के बारे में राजा राम को विस्तार के साथ कथा सुनाते है। वानरों की उत्पत्ति बताते हैं। इसके पश्चात् राम तथा लक्ष्मण-संवाद पूरी तरह दर्शन मे भरा पड़ा है। उसमें आत्मा, परमात्मा तत्व के ऊपर गम्भीर चिन्तन है। राम लक्ष्मण को यह ज्ञान देते हैं फिर बीच-बीच मे लवणासुर, तथा गन्धर्वों आदि की कथाएँ आ जाती हैं। अन्त मे अश्वमेध यज्ञ के बारे में भी कथा आती है। लव-कुश रामकथा गाते हैं और राम उन्हें पहचान कर स्वीकार कर लेते हैं। सीता के परित्याग की कथा भी है। सबके अन्त मे महाप्रस्थान की कथा भी उसी तरह है।

'वाल्मीकीय रामायण' मे और इसमें अन्तर केवल दृष्टिकोण है। इसमे अध्यात्म पक्ष अधिक प्रसार होकर घटनाओं पर चढ़ गया है जबकि 'वाल्मीकीय रामायण' में वे घटनाएँ और कथाएँ केवल कथाओं के रूप में ही रही हैं। 'अध्यात्म रामायण' में कथाकार ने ज्ञान और भक्ति दोनों रूपों से उपासना की व्याख्या की है और उत्तर-

आकर तो यह बात बार-बार आती है। तुलसीदास जी ने इस सबसे अलग
र को अपने समाज-दर्शन का क्षेत्र बनाया है और वे इन कथाओं के उल्लेख
र में नहीं पड़े हैं।

र तरह विभिन्न रामकथाओं में अन्तर मिलते हैं और वे अपने-अपने युगों की
तथा दृष्टिकोणों को व्यक्त करते चलते हैं। इससे हमें मालूम होता है कि
जा राम की कथा परवर्ती कथाकारों के हाथों में एक अलौकिक रूप धारण
तर्क का स्थान उसमें न होने के कारण कितने ही चमत्कार उसमें जुड़
स्थिति से पूरी तरह परिचित रहना चाहिये और कथा के मूल में जाना
राम के सच्चे आदर्श को हम देख सकें और नये समाज में उससे स्फूर्ति